# गजेन्द्र व्याख्यान माला

[illegible] भाग

प्रवचनकार

जैनाचार्य श्रीहस्तीमलजी महाराज साहब

सम्पादक

श्रीशशिकान्त झा "शास्त्री"


प्रकाशक

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

बापू बाजार, जयपुर-३

प्रकाशक
सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
बापू बाजार, जयपुर-३०२००३

०

प्रथम संस्करण १०००
वीर २५०४
विक्रम २०३४
ईस्वी १९७७

०

मूल्य छ रुपये

०

०

मुद्रक इण्डिया प्रिण्टर्स,
कचहरी रोड,
अजमेर

# प्रकाशकीय

आध्यात्मिक-क्षेत्र का सदा से अग्रणी यह भारत, आज भौतिकता का पुजारी वनता जा रहा है। हर वात मे, पाश्चात्य-आदर्श के प्रति, इसकी अभिरुचि इतनी सजग हो उठी है कि यह अपने पुरातन-लक्ष्य और आदर्शों से शनै -शनै पराङ्मुख होता नजर आता है। मानवता की उपासना और जन-कल्याण की भावना से विरहित-भारतीय-जन-मानस सम्प्रति विपरीत पथ का पथिक हो रहा है। जीवन-यात्रा की हर दिशा मे, भौतिक हाय-हाय के सिवा अभी उसे कुछ भी नही सूझ रहा है। अपना अतीत गौरव, देश-सम्मान तथा नैतिकमर्यादा का उसे अभी कोई भान नही है। वह तो येनकेनोपायेन अर्थसिद्धि को ही सर्वसिद्धि का मूल मानकर, उसी की साधना एव आराधना मे अनवरत निरत है—सलग्न है।

मानव समाज के लिए विशेपकर आर्यावर्तवासियो के लिए, यह एक परम चिन्तनीय समस्या है। जहा मूल मे ही भूल भरी हुई हो, वहा विशेप की तो वात ही व्यर्थ। अध्यात्मरस रसिक कवीर के शब्दो मे—"आए थे हरि भजन को, ओटन लगे कपास" वाली वात अक्षरश चरितार्थ समझनी चाहिये। जो मानव जीवन को उल्टी दिशा मे ले जाते हैं, मानवता के विपरीत आचरण करते हैं, उन्हे क्या कहे ?

आचार्य प्रवर श्री हस्तीमल जी म० साहब का प्रवचन, ऐसे सत्पथ भूले विसरे लोगो को एव लक्ष्यच्युत जन-मानस को, पथारुढ करने तथा लक्ष्य प्राप्त कराने के लिए एक दिशा-दर्शक प्रकाश पु ज है। इसे, दोष-दूपित-दृष्टि को सम्यग्दर्शन कराने की दिशा मे एक दिव्याजन भी कहे तो कुछ अनुचित नही होगा। यह देहात्मवादी को यथार्थस्थिति का बोध कराने के लिए, परमौपध या रामवाण है। आचार्यश्री सरल भाषा एव सुगम शैली मे अध्यात्म जैसे गूढ विषय को हृदयस्पर्शी बनाने मे समर्थ और किस रूप मे सक्षम है, यह प्रवचन पढने से स्वत ज्ञात होगा। "हाथ कगन को आरसी क्या।"

"गजेन्द्र व्याख्यान माला" के नाम से प्रकाशित होने वाले, उनके चातुर्मासिक प्रवचनो का यह चतुर्थ भाग, प्रकाशित करते हुए, सम्यग्ज्ञान प्रचारक मडल को, अतीव प्रसन्नता तथा प्रमोद का अनुभव हो रहा है। ऐसे आध्यात्मिक सत के, आध्यात्मिक प्रवचन को अध्यात्म प्रेमी पाठको की सेवा मे प्रस्तुत करते हुए, मडल परिवार अपने को कृतकृत्य मानता तथा महावीर निर्वाण के प्रसग पर इसके प्रकाशन से कर्म निर्जरा का भागीदार भी समझता है।

मडल को इससे भी परमप्रसन्नता है कि इसके प्रकाशन मे होने वाले व्यय भार को, "श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक सघ (रजिस्टर्ड) अजमेर" ने अपने उपर उठाकर, मडल को जो अर्थ सहायता प्रदान की है, उसके लिए मडल सघ का आभारी है। और आशा करता है कि समाज के दूसरे-दूसरे सघ वाले भी, ऐसी ही उदारता का अनुकरण कर समाज को सद्‌बोध दिलाने मे समय-समय पर पहल कर अपनी सहृदयता एव दानशीलता का परिचय देते रहेगे।

इस पुस्तक के अतिशीघ्रता से प्रकाशन मे इण्डिया प्रिण्टर्स के प्रबन्धक और कर्मचारियो ने जिस आत्मीयता और तत्परता का परिचय दिया, तदर्थ मण्डल उन सबका आभारी है।

भवदीय

**श्री सोहननाथ मोदी** — अध्यक्ष

**श्री चन्द्रराज सिंघवी** — मन्त्री

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर

प्रकाशन द्रव्य सहायक

श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ

अजमेर (राजस्थान)

# सम्पादकीय

ससार का प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है, कल्याण चाहता है और अपने जीवन को अधिक से अधिक समृद्ध तथा समुन्नत देखना चाहता है। ज्ञान, विवेक, प्रतिभा, साहस और अद्भुत सूझ-बूझ के कारण मानव, जीव-जगत का सिरमौर है एव उसकी सुख कामना भी सबसे बढी चढी है। उसके वामनतन और क्षणभगुर जीवन मे, सागर के उत्ताल तरगो की तरह, विविध विराट् आकाक्षाए तरगित हो रही है, ठाठे मार रही है। वह त्रिभुवन का वैभव, अपने मे समाहित करने के प्रयास मे, न जाने क्या से क्या कर रहा और करना चाहता है। मानव के इस कर्तृत्व का न कोई ओर है न छोर।

किन्तु जब हम गहराई से इस पर विचार करते है तो ज्ञात होता है कि मनुष्य का यह सारा प्रयास, समस्त उद्योग, मात्र भौतिक सुख सुविधा, मान प्रतिष्ठा एव पद-परितोष के लिए ही है। वह शरीर से शरीर और इन्द्रियो से इन्द्रियो की सतुष्टि के लिए ही सतत कार्य एव विचाररत बना रहता है। उसने अपने सुख का मापदण्ड आध्यात्मिक नही, भौतिक मान रखा है। आज उसे सच्चरित्रता, क्षमाशीलता, करुणापरायणता परोपकारिता एव सहिष्णुता आदि मानवीय उच्च गुणो के स्थान मे कोठी-बगले, कार, टेलीवीजन, फ्रीज, फोन, सेण्ट, इत्र, साबुन, भडकीले वस्त्र तथा देह-गेह के विविध साधन, प्राणो से भी बढकर प्रिय तथा अपेक्षित दीखते है। इनकी उपलब्धि के लिए वह चाहे जैसा करने को तैयार रहता है। ससार के बडे-बडे लोमहर्षक युद्ध, बडे-बडे भीमकाय उद्योगो का सचालन एव अनेक जीवट और जवामर्दी के कार्य भी, इसी भौतिक सुख प्राप्ति के लिए मानव करता रहा तथा करना चाहता है।

वह भूलकर भी कभी यह नही सोचता कि—

"इन्द्रियाणि पराण्याहु, इन्द्रियेभ्य परंमन ।
मनसस्तु पराबुद्धि, यो बुद्धे· परतस्तु स· ॥"

यानी इस शरीर से इन्द्रिया अलग है, इन्द्रियो से मन अलग है, मन से बुद्धि अलग है और जो बुद्धि से भी अलग है, वह हमारी आत्मा है—जिसे हम, मैं शब्दो से अभिव्यक्त करते है।

मानव जीवन की सार्थकता काया के पिंजरे मे पडे आत्म विहग को बन्धन मुक्त करने मे है। जैसे गेह मे देह वैसे देह मे भी आत्मा वास करता है। यह उसका विभाव है, स्वभाव नही जो प्राक्तन कर्मों का फल है। घर की साफ-सफाई, रग-रोगन की शोभा और सार्थकता उसके भीतर बसने वाले की खुशियाली पर निर्भर करता है। बन्धनमय जीवन से मुक्त होकर कैसे आत्मा को पूर्व स्वरूप मे, सच्चिदानन्द की श्रेणी मे पहुचाया जा सकता है ? मानव जीवन का यही परम चिन्त्य है, कर्त्तव्य है और अन्तिम साध्य है।

वस्तुत आत्म-कल्याण ही मानव जीवन का सबसे बडा लक्ष्य है, प्रश्न है, जो क्षण-क्षण, पल-पल समुचित समाधान की आकाक्षा रखता है। जगत् के सभी साधु-महात्मा इसी के समाधान की दिशा मे, आदिकाल से आज तक अपना प्रयास करते आ रहे है। वे अपनी कथनी और करनी की एकरूपता के सग, जीवन-यात्रा के पथ पर अग्रसर भी हो रहे तथा पीछे वालो के लिए पथ चिन्ह भी छोडते जा रहे है।

प्रात स्मरणीय परम श्रद्धेय विलक्षण विचक्षण आचार्यप्रवर श्रीहस्तीमल जी महाराज सा० उन्ही विश्वोपकारी विभूतियो मे एक है, जिनका मानस परोपकार परायणता तथा स्वपर की कल्याण भावना से सतत प्रमुदित रहता है। आप अपने साधको के बीच प्राय प्रवचन देते ही रहते है। आपके प्रवचन का साक्षात् सम्बन्ध आत्म

कल्याण, आत्म-जागरण एव आत्मोत्थान से होता है। प्रवचन का मुख्य विषय आत्महित विषयक होता है। इसमे रोचकता एव मनोरजकता जितनी अपेक्षित नही, उससे वढकर आत्मोत्थान का भाव अपेक्षित रहता है।

आपकी प्रवचनशैली अनुभूति से अनुस्यूत तथा यथार्थता से ओत-प्रोत रहती है। हम पूर्व कर्मबन्ध के कारण उस प्रवचन-मन्दाकिनी मे अवगाहन करके भी शान्ति, शीतलता आदि सद्गुणो से रहित, कोरे के कोरे रह जाय, यह वात अलग है। परन्तु यह मानने मे कुछ भी सकोच नही किया जा सकता कि आचार्यप्रवर का प्रवचन हृदय को छूने मे, मन को जगाने मे, भावो को आन्दोलित करने मे सर्वथा सक्षम और समर्थ है।

आपके प्रवचनो का सग्रह, आज से वहुत पहले "गजेन्द्र मुक्तावली" भाग प्रथम और द्वितीय तथा "आध्यात्मिक साधना एव आध्यात्मिकआलोक" के नाम से भी प्रकाशित हो चुके है। उसके वाद "प्रार्थना प्रवचन" और "गजेन्द्रव्याख्यान माला" के नाम से तीन भाग प्रकाशित हुए। अव यह चतुर्थ भाग अजमेर से जहा इस वर्प आचार्य श्री का चातुर्मास है, उसकी स्मृति को अमर वनाये रखने के लिए, प्रकाशित किया जा रहा है।

परम सौभाग्य से इस चतुर्थ भाग का सम्पादन—दायित्व मेरे जिम्मे आया। मैंने भरसक प्रयत्न भी किया कि इस महामहिम प्रवचन के सम्पादन में कोई त्रुटि न रहे। मगर कार्य की वहुलता, छद्मस्थता तथा प्रमादादि दोप के कारण सशोधन एव सम्पादन म त्रुटियो का होना असभव नही कहा जा सकता। मैं न तो अपनी इस कमजोरी से अनजान हूँ और न पाठको की सहज सुलभ क्षमाशीलता से ही। परम विश्वास है कि पाठक मेरी त्रुटियो के लिए मुझे क्षमा करेंगे तथा प्रवचन के सदाशय को हृदयगम कर इस प्रयास को सफल वना इससे लाभ उठायेंगे।

इस प्रवचन के सक्षिप्त-आलेखन मे श्री धर्मपाल मेहता तथा मेरे एव प्रेस के बीच सम्पर्क बनाये रखने मे श्रीआनन्दमल जी चोरडिया अजमेर का सहयोग भी सराहनीय रहा। एतदर्थ मै आप दोनो का आभारी हूँ।

इस प्रवचन-प्रकाशन मे जोर लगाने वाले श्रीमान् उमरावमल जी ढढ्ढा, श्रीलाल जी कावडिया, अमरचन्द जी दुधेडिया, सरदार-मल जी वोहरा तथा भवरलाल जी कोठारी आदि सज्जनो का यदि हार्दिक सहयोग प्राप्त न हुआ होता तो सभव इसका लेखन एव प्रकाशन सर्वथा असभव ही था। अतएव आप सबको इस कार्य की समाप्ति पर साधुवाद न कहना, मेरे लिए उचित नही होगा।

सुज्ञेषु किं वहुना—

विनयावनत
**शशिकान्त झा**

महावीर भवन
अजमेर
दीपावली
१०-११-७७

# गजेन्द्र व्याख्यान माला

## (भाग ४)

## धर्म-साधना

वीर सर्व सुरासुरेन्द्र महितो, वीरंबुधा संश्रिताः।
वीरेणाभिहत स्वकर्मनिचयो, वीराय नित्यं नमः॥
वीरात्तीर्थमिद प्रवृत्तमतुलं, वीरस्य घोरं तपो।
वीरे श्रीधृति काति कीर्तिरतुला, श्रीवीर भद्र दिश॥

### सुबाहुकुमार की धर्म साधना

वन्धुओ! अभी आप सबके समक्ष हीरामुनिजी के द्वारा श्रीमद् विपाक सूत्र के प्रथम अध्याय मे सुबाहुकुमार की भगवद्भक्ति का एक नमूना प्रस्तुत किया गया है, यह उसकी धर्म-साधना है।

वीतराग के चरणो मे पहुच कर और उनकी वाणी सुनकर एक सच्चा साधक क्या ग्रहण करता है? वह केवल सत महात्माओ की विद्यमानता मे ही नही, परोक्ष मे भी गुरुसाक्षिक ग्रहण किए हुए वीतराग भगवान् के मार्ग पर किस तरह बढता चलता है, यह सुवाहुकुमार के जीवन से अच्छी तरह समझ मे आ सकता है।

सुबाहुकुमार के धर्म चिन्तन का रूप अभी आप शास्त्र मे सुन चुके है। वह पौपधशाला मे बैठा हुआ ध्यान मे सोच रहा है कि यदि श्रमण भ महावीर ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए इस हस्तिशीर्ष नगर मे पधार जावे तो मैं उनके पवित्र चरणो मे दीक्षित हो जाऊ!

ससार के इन समस्त प्रपचो से सदा-सदा के लिए अपने को अलग कर लू । भोगो से कितनी उपरति और कितना वर्धमान परिणाम ! उसने ये विचार भगवान् के सामने रहते हुए नही किये, और प्रभु की प्रेरणा से भी नही किये । परन्तु ये विचार किए प्रभु के परोक्ष मे जबकि भ महावीर हस्तिशीर्ष नगर मे विद्यमान नही थे ।

इससे यह बात स्पष्ट झलकती है कि एक सच्चा साधक, साधु एव गुरुजनो से उपदेश सुनकर धर्म मार्ग पर जो गति करता है, वह उसकी गति बिना रुकावट के और बिना किसी के कहे सुने तथा बिना भय एव लालच के निरन्तर अबाध गति से चलती रहती है । आपको और हमको भी इसी प्रकार की गति का रूप लाना है । धर्म के प्रति तन्मयता और उत्साह दिखाना है । सच्ची निष्ठा से ही साधना आगे बढ पाती है ।

**प्रभु नहीं, प्रभुवाणी का अवलम्ब !!**

यह सच है कि आज आपके सामने भगवान् के साक्षात् समागम का लाभ नही है । आखो के सामने प्रभु का दिव्यरूप विराजित नही है, परन्तु इससे क्या ? आप भी भगवान् की वाणी सुन रहे है, और हम भी भगवान् की वाणी को पढ रहे है । यद्यपि शरीर से तो साक्षात्कार नही है, परन्तु भगवान् की वाणी का साक्षात्कार तो आज भी हम लोगो को हो रहा है । मेघ की स्वच्छ जल धारा के अभाव मे नहर और बाधो से भी खेत की सिचाई एव फसले तैयार की जाती हैं ।

यह क्या है ? सुख विपाक या कोई अन्य-सूत्र । उसकी शब्दावली वह क्या है ? भगवान् की वाणी ही तो है । हाँ, भगवान् की वाणी को कहने वाला, व्यक्त करने वाला माध्यम दूसरा है । परन्तु वाणी तो वही है, दूसरी नही है । तो हमको वाणी के साक्षात्कार का सौभाग्य पाकर, सोचना है कि हमारी साधना कैसी हो ? हमारा धार्मिक-आचरण किस प्रकार का हो !

भावना की तेजस्विता ! !

साधना छोटी हे या वडी इसका विचार नही करना है। परन्तु उसमे भावना की तेजस्विता कितनी है, भावो का ऊर्जस्व कितना है इसका विचार करना हे। यदि तेजस्विता नही तो वडी से वडी साधना भी छोटी है। भावना की तेजस्विता शरीर मे प्राणो के समान है। शरीर मे प्राण होगे, आत्मा होगी, तब तो छोटा या बडा जैसा भी शरीर होगा, वह टिक सकेगा, गति और प्रगति कर सकेगा, भावो को ऊँचा उठा सकेगा। और यदि उसमे से आत्मा निकल जाये तो वह टिक नही सकेगा, गति भी नही कर सकेगा। जो झाड भयकर आँधी और ववण्डरो मे टक्कर खाकर भी नही गिरता, वही वृक्ष अपनी चेतनता-सजीवपन के जाने से बिना हवा के भी धराशायी हो जाता है, गिर जाता है। जव तक वृक्ष मे जीवत्व है, तब तक हवा के कितने ही बडे-वडे झोके आए या नदियो की वाढे आवे, उसका कुछ भी नही बिगडेगा। परन्तु जव मूल मे-जड मे से जीव खत्म हो गया—निकल गया तो निश्चय वह वृक्ष गिर पडेगा।

प्राणि मात्र की एकसी दशा होती है। वह प्राणो की मौजूदगी मे ही सवल वना रहता है, प्राण निकलने के वाद नही। एक वल-शाली वडा हाथी, घोडा, वैल आदि, धक्का देने पर भी तव तक नही गिरता, जब तक उसमे प्राण रहता है। प्राण निकल जाये तो क्या वह खडा रह सकेगा ? नही, वह स्वय गिर जायेगा। एक पहलवान चलते-चलते हृदय की गति रुकी नही कि गिर गया। आँधी मे, पानी मे अपने पिण्ड को लेकर चलनेवाला गिरा नही। परन्तु वही आदमी शरीर मे से आत्मदेव के निकल जाने पर, विना झोके के भी गिर जायेगा। ऐसा क्यो ? उत्तर स्पष्ट है कि उसमे आत्मदेव का तेज नही है। उसके विना पिण्ड का कोई मोल नही है।

इसी प्रकार तप की भी दो स्थितिया हैं—वाह्य और अन्तर। वाहरी शरीर साधना हे और अन्तर मे भावना है। यदि अन्तर मे तेजस्वी भावना होगी तो साधना का मूर्तिमान पिण्ड खडा रहेगा,

गति करेगा, आगे बढेगा और लक्ष्य पर पहुँचेगा। परन्तु यदि उसमे भावना की तेजस्विता निकल गयी तो वह आगे गति नही कर सकेगा, बढ नही पायेगा और वही ठप्प-स्थिर हो जायेगा। सुबाहु मे तेजस्विता थी तो उसकी साधना आगे बढती गयी। ससार की, परिवार की और कुटुम्ब की, विविध विघ्न बाधाओ के बावजूद भी उसकी साधना समाप्त नही हुई, गिरी नही और वे साधना से च्युत नही हुए। क्योकि भीतर मे भावना का तेज था, दिव्य बल था, सुदृढ आत्मा थी। जिस उत्साह और उमग से भौतिक-भोगो का त्यागकर, साधना-पथ का अवलम्बन लिया था, उसमे क्रमश वृद्धि ही होती रही। बाल सूर्य की तरह क्षण-क्षण पल-पल मे तपस्तेज उग्र ही होता गया।

अभी मुनिजी कह गये कि लोग धर्म-स्थानक और धर्म क्रिया मे बैठकर भी कुछ और ही सोचने लगते है। पता नही कि घर-गृहस्थी की बात सोचते है या धर्म पर ही प्रकारान्तर से चिन्तन करते है। इसका कारण है कि भीतर मे आत्मा जब कमजोर हो जाती है तो सारा शरीर ही जडवत् हो जाता है। शरीर स्वय गति नही करता, गति करती है आत्मा। आत्मा मे जब भावना का तेज नही हो तो, उसके द्वारा होनेवाली किसी भी क्रिया मे जडता ही झलकेगी। उसमे आगे बढने की ताकत नही होगी। गति और प्रगति के लिए भावना की तेजस्विता चाहिये।

भ० महावीर का हम जीवन देखते है, उपदेश देखते हैं और अनेकानेक जन्मो की साधना देखते हें, तो स्पष्ट मालूम होता है कि साधक को साधना मे, तेजस्विता के रूप मे आत्मा है, तब तो वह आगे बढती जायेगी। यदि तेजस्विता नही है तो दिनो की क्या ? वर्षों की साधना भी काम नही देगी। वह बलवती नही होगी और उसका तेज जगत् के सामने नही चमकेगा। इसलिए हर साधक को, चाहे वह ज्ञान की, दर्शन की, चरित्र या तप की साधना क्यो न करे, उसमे तेजस्विता लाने की अपेक्षा है। तेजस्विता से ही साधना प्राणमयी बनती है।

## साधना और उसके अग

जिनके द्वारा हम अपने आपको साफ कर पावे, तैयार कर पावे, आन्तरिक कमजोरियो को दूर कर सके, अभीष्ट की मजिल याने सिद्धि तक पहुँच पावे, ऐसी क्रिया को साधना कहते है। साधना विविध प्रकार की होती है। साधना की प्रवृत्ति मे जो सहायक होते हैं, उसको साधन कहते है। साध्य, साधन और साधना ये तीनो बराबर होते है तो सिद्धि मिलती है। इसके लिए आपको किसी से कुछ मागने की जरूरत नही पडेगी।

किसी किसान के यहाँ जाने का अवसर मिले तो आप देखेंगे कि यदि किसान अनुभवी-तजुर्बेकार है, सावधान है, भूमि बराबर है, बीज बराबर है और सिंचाई भी बराबर है, तो फसल के लिए उसे किसी से कुछ मागना नही पडता। वह अपना कर्त्तव्य करते हुए, चुपचाप, लेटा-लेटा देख रहा है कि मेरा स्वप्न सफल हो रहा है, धरती की छाती पर धान धीरे-धीरे ऊँचा आ रहा है, फल लग गये हैं, छोटी-छोटी बेलो मे मतीरे और काचरे लग गये है। हवा की लहरो मे धानो की वालिया लहरा रही है, जिन्हे देखकर उसका हृदय भी लहरा रहा है।

उसने क्या किया ? किसी से कुछ मागनी की या अपना कर्तव्य ? जो इस फसल के लिए अपेक्षित थे, तन मन से जुडकर, उसे पूरा किया। ऐसे ही साधना मे मागनेवाले, परकी अपेक्षा रखने-वाले, सही रूप मे साधना के महत्व को भूल रहे है। ऐसे ही लोगो को भोला और अनजान कहा जाता है।

## जैन की साधना

आप अपनी साधना को व्यावहारिक वस्तु न समझें। आपको ख्याल होना चाहिए कि आप भगवान् महावीर के भक्त और साधक कहलाते है। आपका दर्जा इतना ऊँचा है, जो देवो को भी दुर्लभ है। परन्तु आप जिस पद पर पहुँचे हैं, उसके अनुरूप अपनी भावना का

निर्माण नही कर रहे है। आप पर पर तो बैठे है जैन के—जैन के पद पर बैठनेवाले को, अपने विकारो को, मानसिक दुर्बलताओ को जीतने का यत्न करना चाहिये। क्योकि काम, क्रोध, मद, लोभ और राग, द्वेष को जीते वही जैन होता है। जैसा कि कहा है—एकप्पा अजिहसत्तू कसायाइदियाणिअ, ते जिणित्तू जहानाय, विहरामि जहासुह। दोष मुक्त होने से वह सदा सर्वत्र निर्भय रहता है। परन्तु जिस व्यक्ति को उल्टे क्रोध और काम आदि जीतले, वह क्या कहलायेगा ? हम आज अपने भक्तो को इस रूप मे देखते है कि क्रोध ने उनको जीत लिया, लोभ ने जीत लिया है।

चतुर्मास के इस धर्मकाल मे कुछ बहने तपस्या कर रही है, परन्तु उनमे भी ऐसी बहुत थोडी बहिने होगी जो लालच के प्रसग आने पर उससे मुख मोड ले, उसे जीत ले। भोजन से मुख मोडनेवाली बहन से तपस्या के प्रसग मे बन्धुजनो से मिलनेवाली भेट से मुँह मोडने को कहा जाय तो थोडी ही बहिने होगी जो भेट को स्वीकार न करे। वे अपने सगे सम्बन्धियो के आने के प्रसग से पौषध के लाभ को छोड सकती है, परन्तु धन के लाभ को नही। वे पौषध की महिमा को स्वीकार तो करती हैं, किन्तु लाभवाले दिन मे नही। कारण उन्होने अन्तरग दोषो पर विजय नही पायी।

मेरा मन चाहता है कि आज यहाँ कुछ ऐसी नमूनेदार बाई मिले जो धर्म के इस प्रसग मे भेट देनेवाले भाई को साफ-साफ कहे कि इस समय मुझको कुछ नही चाहिये। मैं तो हमेशा आपसे लेती रहूगी और आप देते रहेगे। परन्तु इस समय हमने तप किया है। इस समय कुछ भी लेना लोभ के आगे, लालच के आगे, अपनी हार और हँसाई मानने जैसी बात होगी। ऐसी साफ-साफ बोलनेवाली तपस्विनी को धन्यवाद है।

लोक व्यवहार मे कभी ऐसा भी मौका आता है कि व्याही लोगो के यहाँ जाकर भी आप नही खाते है। घर मे शोक आदि होने से भी आप अपने सगे-सम्बन्धी के यहा खाने से इन्कार कर देते हैं।

मगर इससे आपसी प्रेम मे कोई बाधा नही आती। मैं आपके सभी रीति-रिवाजो से परिचित नही हूँ मगर इतना जानता हूँ कि कारण विशेष मे आप सबन्धी के यहाँ नही खाते ह और उसको बुरा नही माना जाता है। क्या तप के समय मे भी हाथ जोडकर यदि यह कह दिया जाये कि अगर आपको देना है तो दान दीजिए, व्रत नियम कीजिए, परन्तु तप के निमित्त से दे रहे है, यह हम नही लेगे। इस तरह की स्पष्टवादिता से समाज का सारा ढाचा ही बदलकर सही रूप मे आ जायेगा।

### तप और प्रभावना

तप भी प्रभावना का अग माना गया है। सम्यक्त्व के विचार मे एक प्रभावना का भी बोल रखा गया है। आठ कारणो से धर्म की प्रभावना होती है। परन्तु आज तो आप प्रभावना की एक ही बात समझते है कि बोरी भर पताशे लाए और मुट्ठी भर हरेक को दे दिए, बस प्रभावना हो गयी। नही तो नारियल बाँट दिए और प्रभावना हो गयी। परन्तु प्रभावना के वास्तविक मर्म को बहुत थोडे लोग जानते हैं। प्रभावना का स्वरूप बताते हुए कहा है कि—'प्रकर्षेण भाव्यते दीप्यते शासन यया सा प्रभावना' जिस प्रवृत्ति से, आचरण से, धर्म-शासन का तेज बढे, शोभा बढे, उसका नाम है प्रभावना। प्रभावना शब्द मे 'प्र' और भावना है तो 'प्र' का मतलब अधिकता से और भावना का मतलब है शोभित करना।

आज कोई तपस्विनी बाई तप करके कुछ देने आदि की प्रभावना नही की तो लोग कहने लग जाते है कि रोटियाँ बचानी थी, पैसा बचाना था तो इतने दिनो तक भूखी रही। बिना दान के, खर्च के भी क्या कोई तपस्या होती है? इस प्रकार तप के प्रति हीन भावना दिखाने का, व्यग्य या चुटकी लेने का मौका नही आवे इसलिए गृहस्थ भाई-बहनें तप के साथ मे कुछ-कुछ देने आदि की प्रवृत्ति करते है। दस दिन के खाने मे जो खर्च होता उससे कुछ अधिक खर्च करके, आलोचको का मुँह बद कर देते है, और खर्च बचाने के

लिए तप नही किया इसकी भी सफाई दे देते है। इस तरह अनेक शकाओ के समाधान रूप से यह प्रभावना प्रचलित रही है।

वस्तु स्थिति यह है कि आत्मा की विशुद्धि और धर्म को दिपाने के लिए तप किया जाता है। धर्म को उजागर करने के लिए मुनिजन भी तप करते है। परन्तु उनकी प्रभावना का रूप दूसरा है ? क्योकि उनके पास खरचने को पाई भी नही है। ज्ञान, दर्शन, चरित्र व तप की आराधना के लिए वे अपनी विद्वत्ता से स्वसमाज एव परसमाज को आकर्षित करते हैं। त्याग से प्रभावित करते है। उन लोगो के जो मतान्तर को मानने वाले है, विवाद करने वाले है, अपने सिद्धान्त का सही और कारगर ढग से प्रतिपादन करके, दिल और दिमाग को हिला देते है, सिर झुकवा देते है। यह पर समाज मे उन मुनियो की धर्म प्रभावना है। जैन साधु के जीवन मे, त्याग तप के सग विद्वत्ता का, धर्म प्रभावना के क्षेत्र मे अच्छा प्रभाव पडता है। लोग कहने लग जाते है कि हमने वहुत विद्वान् देखे है, परन्तु ये सन्त विद्वान् और अच्छे वक्ता हैं, साथ ही इनके जीवन मे तप भी है। इनकी कितनी कठोर साधना है और कितनी सादी वेषभूषा है ? ये इतने त्यागी और इतने विद्वान् है। ओहो ! इनके जैसे थोडे ही सत होगे ? इस तरह दर्शको के मन पर पडने वाला प्रभाव हमारी सच्ची धार्मिक प्रभावना है।

**धर्म को नही लजायें**

साधक दो प्रकार के होते है, एक धर्म को दिपाने वाला और एक लजाने वाला। भ महावीर ने कहा—ऐ मानव ! याद रख कि ऐसा कोई काम नही करना जिससे धर्म की, सिद्धान्त की प्रभावना मे कमी आवे, शासन लजाये। किसी को यह कहने को मौका नही मिले कि यह धर्म को लजाने वाला है, छलने वाला है। हाँ, यदि शासन के दिपाने को वात कर सको तो वहुत अच्छी वात है।

आज लोग आपसी लेन-देन मे, खाने-पीने मे, व्यावहारिक वातो मे, परस्पर सरे आम वाजार मे लडने लग जाते है, हाथापाई

करने पर उतारू हो उठते है। और छोटी-छोटी बातो को लेकर न्यायालय तक पहुँच जाते है। जिसको आपस मे घर बैठे निपट सकते थे, पचायत मे सुलभा सकते थे, उसके लिए बाजार मे खडे होकर एक-दूसरे से लडने लगे, माँ-बाप को गालियाँ देने लगे यह कितना बुरा है। इस प्रकार समाज एव सम्प्रदाय के विवाद मे लड झगडकर कलह कोलाहल कर यदि कोई द्वेप बढावे, तो यह धर्म को लजाने की बात है, आत्मा को नीचा दिखाने की बात है।

शास्त्र का आदेश है कि धर्म को दिपा नही सको तो कम से कम इतना हर एक को ध्यान रखना ही चाहिये कि यदि हम ससार मे, मानव कुल मे तथा जैन घर मे जन्मे है तो ऐसी प्रवृत्ति नही करे कि जिससे धर्म की शान मे कोई फर्क आवे, बट्टा लगे। यदि ज्ञानवान् है तो ज्ञान से धर्म को दिपाइए, श्रद्धावान् है तो श्रद्धा से और व्रत नियम करने की क्षमता है तो व्रत से धर्म को जगावे और अवश्य दीपावे।

धर्म दीपाने के अनेक रूप हो सकते है, जैसे कभी किसी भाई की असमय मे पत्नी चल बसी या कि किसी बहन का पति चल बसा, तब वह अपने उच्च घराने की मर्यादा का विचार कर शील धर्म का आजीवन पालन करे तो धर्म की शोभा होगी। विजय कवर ने घर मे रहकर वर्षो पति वियोग मे धर्म का पालन किया—जिससे शासन की बडी शोभा हुई।

हर आदमी धर्म की प्रभावना अर्थ के द्वारा नही कर सकता, वह तो व्रत नियम की साधना से ही कर सकता है। श्रीमन्त गृहस्थ धर्म की प्रभावना प्रचुर अर्थ के त्याग से करता है। तो किसी के भरी जवानी मे, शील व्रत के स्वीकार करने से भी प्रभावना होती है। स्वस्थ शरीर और भरी जवानी मे आदमी यह सोचे कि खाते-पाते, मौज शौक से अभी तक जीवन बीता है अब इसी स्वस्थता मे भोग से निवृत्ति ले लू। कारण रोग ग्रस्त होने पर शरीर की लाचारी से शील व्रत का नियम लेना तो मजबूरी का नियम होगा। एक नौजवान

जिसको कि एक बच्चा और बच्ची है, उसके द्वारा दृढतापूर्वक लिया हुआ शील व्रत का नियम, धर्म की एक अच्छी प्रभावना कही जायेगी।

### तप की महिमा

शरीरधारी को कभी एक दिन भी अन्न के बिना रहना पडता है, तो उसकी कैसी दशा हो जाती है ? यह किसी से छिपी नही है। मगर सुकुमार शरीर वाली इन बहिनो ने तीस-तीस दिन के उपवास कर लिए और आज उसकी पूर्ति भी हो गयी। कितने बडे साहस की बात है कि इन्होने भूख के दु ख को—क्षुधा की ज्वाला को सहर्ष झेल लिया। तन-मन पर कुछ दूसरा असर नही हुआ।

यदि आप दिन भर किसी अफसर के पास जाते रहे और कहे कि आज कसाईखाना बन्द कर दे तो भी वह बन्द नही हो सकता है। परन्तु तप का यह सात्विक प्रभाव है कि जहाँ इस नगर मे कम से कम पाच सौ जानवर नित्य कत्ल होते, वह एक दिन के प्रयास से बन्द हो गया और जिलाधीश अनायास बिना ननुनच किये, हिंसा बदी को मजूर कर गये और कसाईखाना बन्द करवा दिया। जबकि आपके हजारो खर्च करने पर भी यह नही हो सकता, वह तप के प्रभाव से अनायास हो गया। इसे तप की ही महिमा माननी चाहिये।

भाई ललवाणी का भी अहिंसा प्रचार मे बहुत बडा रस है। ऐसे मौके पर ये भी दौडधूप करने को तैयार रहते हैं। सतो द्वारा प्रकट की गई अहिंसक भावना को, सफल और सबल बनाने मे ये कभी पीछे नही रहते। इस सबके अन्तर्गत तप का ही माहात्म्य छिपा है। पहले की बहिनो ने भी तपस्या की थी, मगर वे घर मे रहकर। परन्तु इन बहिनो ने मन को बटोर कर रखा और धर्म स्थान मे ही पूरे व्रत तक जमी रही। यदि ये तपस्या के समय मे घर पर रहती तो नित्य कपडे बदलने मे, मेहदी लगाने और गाने-बजाने की बात बहुत बढ जाती। श्रद्धाभाव से इन्होने प्रमाद घटाकर धर्म ध्यान मे वृद्धि की। अत मैं इस साहस के लिए प्रमोद व्यक्त करता हू। दूसरी

बहने भी इसका अनुसरण करे और तप के दिनो मे अधिक समय सवर करनी मे बिताने का लक्ष्य रक्खे तो बडा लाभ होगा।

तप करा देना सरल है किन्तु करना वस्तुत कठिन है। इन बहिनो के परिवारवाले भाई उत्तमचन्द जी मुणोत और रूपचन्द जी कोठारी, जिन्होने पहले के अठाई तप मे वरघोडे निकाले, जीमन किये, इस बार हमारे कहने से, इसमे आरम्भ घटाना स्वीकार कर लिया और बैण्ड-बाजा सहित आडम्बर के सारे कार्य बन्द कर दिये। यह अनुकरणीय रूप है। इस तरह से तप के नाम पर होनेवाला आपका यह आरम्भ परिग्रह घटेगा। समाज मे सात्विक प्रभावना का नया रूप सामने आयेगा। आडम्बर के नाम पर खर्च होनेवाला पैसा, समाज हित मे लगकर, समाज के आवश्यक क्षेत्रो को पुष्ट कर तप की स्थायी स्मृति खडी कर सकेगा।

**परिग्रह छोड़ अपरिग्रह को अपनायें**

आज हर तरफ से आपके ऊपर परिग्रह हावी हो रहा है। आपकी अधिकाश क्रियाओ मे परिग्रह की प्रधानता दिखाई देती है। जीवन का प्रत्येक कोना परिग्रह से व्यक्त है। भ० महावीर ने अपरिग्रहवाद को हम सबके सामने रखते हुए कहा—जैनो! समय के साथ अपनी साधना मे तेजस्विता लाओ, ऊर्जस्विता बढाओ। परिग्रह का दामन छोड दो और आत्मा को निर्मल एव उज्ज्वल बनानेवाले अपरिग्रह का सात्विक प्रभाव बढाओ। ऐसा करके जमाने की ठोकरो से बचोगे, बेइज्जतियो से अपने को सुरक्षित रख सकोगे। यदि प्रदर्शन भी करना चाहो तो अपरिग्रह का ही प्रदर्शन करो, परिग्रह का प्रदर्शन भी मत करो। त्याग का, दान का, बन्धुत्व और भाई-चारे का प्रदर्शन हितकर और अनुकरणीय होगा, इससे जन-मन को प्रभावित कर सकोगे।

यदि तप के इस प्रसग पर प्रदर्शन करना आवश्यक प्रतीत हो, तो इन तपस्विनियो के सग आप सब भी अपने-अपने दुर्व्यसनो का, दुर्भावो और दुर्विचारो का खुले मन से त्याग करो, आडम्बर और

दिखावे का त्याग करो, भाई-भाई से लडने-झगडने और कलह से दूर रहने का त्याग करो। क्या यह धर्म की प्रभावना नही है ? थोडी सख्या मे भी लोग ऐसे अवसर पर कुशील त्यागने का व्रत ले तो क्या यह धर्म की प्रभावना नही होगी ? आचरण को निर्मल बनानेवाली सारी क्रिया की गणना, धर्म प्रभावना के अन्तर्गत मानी जाती है, यह ध्यान मे रहे। मगर अभी लोगो ने ऐसी प्रभावना करनी नही सीखी है ।

दोनो तपस्विनियो के परिवारवाले भी आये है और कई आनेवाले भी है। साथ ही यहाँ उपस्थित आप सब भी साथ देनेवाले है। परन्तु मैं नही समझता कि इनमे से कितने त्याग करने के लिए खडे होनेवाले है। यहाँ पचासो बीडी पीनेवाले भी होगे, पान जर्दा खानेवाले भी होगे किन्तु अपने मन से कोई कुछ छोडने की तैयारी करे तो तप का सहयोग सही समझा जा सकता है। बडी-बडी अवस्थावाले भी शीलव्रत का खध करने से घबराते है, औरो की तो बात ही क्या ? हाँ, विवशता से कुछ करना पडे तो बात और है। यो तो विवशता से भी किया गया अच्छा काम लाभप्रद ही होता है किन्तु स्वेच्छापूर्वक किये गये कार्य का आनन्द इसमे नही होता। ज्ञानपूर्वक स्वेच्छा से यदि इस रूप मे त्याग, नियम करेगे तो आपका व्यक्तित्व भी चमकेगा, साथ ही शासन भी चमक उठेगा। ऐसे ज्ञान, दर्शन चरित्र की, तप की प्रभावना के आप कुछ व्रत नियम धारण करेंगे, तो जीवन मे बडी शक्ति आयेगी ।

तप मे बडी शक्ति है, यह इन्द्र के आसन को भी हिला देता है। इन बहिनो की तरह आप भी तन, मन से तेजस्विता के साथ, विना बाहरी प्रदर्शन के तप साधना का प्रदर्शन कीजिए और अपरिग्रही भाव से, मन के तेज को जगाकर साध्य की ओर दृढता से कदम उठाइए तो इस लोक व परलोक मे शान्ति और कल्याण होगा ।

●●

# साधना से सिद्धि

## सुबाहुकुमार की साधना

बन्धुओ ! जीवन मे साधना का प्रसग कैसे जागृत होता और उसकी साधना कदम-कदम आगे बढती हुई सिद्धि को किस प्रकार प्राप्त कर पाती है, इसकी एक छोटी-सी झाकी सुबाहुकुमार के चरित्र के द्वारा आप सबको सुनाई जा रही है ।

सुबाहुकुमार अपनी राजकीय भोग साधना से विमुख हो अब योग साधना मे लगा है । वह कर्म से धर्म मे और राग से विराग मे तत्परतापूर्वक बढ रहा है, और भौतिकता से आध्यात्मिकता के क्षेत्र मे आकर अपने साधक जीवन मे अपेक्षित जोर लगा रहा है । वह केवल साधना मे जुडकर ही नही रहा, बल्कि अपनी साधना मे आराधना का भी लक्ष्य रखकर चलता है । क्योकि बहुत बार साधना मे लगकर भी व्यक्ति, विषय कषायवश साधना को निर्दोष नही रख पाता, विराधना कर लेता है, उलझनो मे उलझकर पथभ्रष्ट हो जाता है । तलवार की धार पर चलनेवाला तो आसानी से पार चला जाता है, परन्तु साधना पथ पर चलकर, पूरी तरह उस पथ को पार कर जावे, सफल हो जावे, यह जन साधारण के वश की बात नही है ।

अध्यात्मयोगी आनन्दघन ने चौदहवे भगवान् की स्तुति करते हुए ठीक ही कहा है कि—"धार तरवारनी सोहली, दोहली, चवदवा जिनतणी चरणसेवा" उन्होने कहा कि वीतराग के चरणो की सेवा सचमुच मे तलवार की धार पर चलने से भी अधिक कठिन है । इस प्रसग मे चौदहवे जिनकी चरण सेवा के उल्लेख से यह नही समझे कि महावीर और अनन्तनाथ मे भेद है । जिन शासन मे वीतराग भाव की पूजा है और उस दृष्टि से आदिनाथ, अनन्तनाथ या महावीर मे

कोई भेद नही है। चौवीसो तीर्थंकर समान मानवाले है। जैन धर्म व्यक्ति पूजक, नाम पूजक या वेष पूजक नही, पर वह गुण पूजक है। जो गुण के वदले नाम और वेप का पूजक हो तो समझना चाहिये कि उसकी धार्मिक दृष्टि सही नही है। अनुभवी सतो ने कहा है— एकमाहि अनेकराजे, अनेक माहिएकक याने प्रभो ? आप एक मे अनेक और अनेक मे एक है। आप मे शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, महावीर आदि का कोई भेद नही है। शान्तिनाथ को नमन किया तो महावीर को हो गया और महावीर का किया तो शान्तिनाथ को।

आप भूलकर भी इस भ्रान्ति मे नही पडेगे कि आनन्दघन ने चौदहवे जिनकी बात कही और आप शान्तिनाथ की बात कैसे कह रहे है ? तो यहाँ एक अनेक के सख्या की बात नही और न नाम पूजा की ही बात है। हमने पहले ही कहा कि हम गुणो के पुजारी है। जो वीतरागता , अनन्तनाथ मे है, वही महावीर मे भी है। वीत-रागता का गुण दोनो मे है।

हाँ ! तो कहा जा रहा था कि भगवान् महावीर के साधना-मार्ग मे बढनेवाला साधक तलवार की धार पर चल रहा है। तलवार की धार पर चलना आसान है। बाजीगर तलवार की धार पर चलने का खेल दिखाते रहते हैं। ऐसे साधना के पथ पर कदम रखना तो आसान है, परन्तु कदम रखकर पार पहुँचना मुश्किल है। मार्ग पकडने मात्र से तारीफ नही है, तारीफ पकडे मार्ग को पार करने मे है। राजकुमार सुबाहु ने श्रावक और साधु का मार्ग पकडकर ही सतोप नही किया। परन्तु जो मार्ग पकडा उसको साहस के साथ पार भी किया।

**तन्मयता नहीं तो सब व्यर्थ**

अरे ! साधना का मार्ग तो आप सब भी पकडे हुए हैं, परन्तु आँखे खोलकर शान्तभाव से देखिये और जिसको पकडा है, उसे मर्दाने ढग से पार कीजिये। रोते-झीकते चलने मे कोई मजादारी

नही है। फूलो जैसे हँस-हँसकर वातावरण को सुरभित बनाइये एव जीवन को सफल कीजिये। काम तो एक नौकर को भी करना पडता है, परन्तु नौकर रोते-धोते सेवा करता एव भार उठाता तथा आवश्यक दूसरा काम भी करता है। परन्तु जो कुछ भी करता है, रीझते-खीजते करता है, मन से नही, रस और तन्मयता से नही। वह प्रत्येक काम को परेशानी का कारण मानता है।

दूसरी ओर परिवार मे एक माँ भी काम करती है। माँ और नौकर के काम मे कितना अतर है? प्राय जमीन और आसमान से बढकर। मा घर के आवश्यक काम करते हुए बच्चे की टट्टी-पेशाब भी साफ करती, कपडे बदलाती एव उन्हे साफ करती है। कार्य मे उलझ कर कभी दिन भर भूखी भी रह जाती, परन्तु इससे वह दु खी नही होती बल्कि आनन्दित होती है, प्रसन्न होती है।

कदाचित् किसी माता को व्यग्य मे भी कह दे कि माँ बनने मे बडी परेशानी है, उलझन और दु ख है, अत सौगन्ध कर जा, नियम ले ले कि आगे ऐसा नही करूगी। परन्तु वह हर्गिज इसे स्वीकार नही करेगी। हर स्त्री माता बनने को तरसती, ललचाती और आकुल बनी रहती है। माँ बनने मे थोडी सी देर हो जाने पर ही मनौतियाँ मनाने लग जाती हैं। वे अच्छी तरह जानती है कि मा बनने मे टट्टी-पेशाव धोना पडेगा, शिशु की देखभाल मे सुखचैन से हाथ धोना पडेगा, सवर, सामायिक नही होगी। फिर भी वह कहती है कि जो होगा—देखा जायेगा, किन्तु एकबार शिशु का मु ह तो देख लू, मा का पद पा जाऊ फिर कोई चिन्ता नही।

मा बनने मे क्या मजा है, क्या हर्ष और आनन्द है, यह आप को मालूम नही होगा। फिर भी अपने बच्चे के प्रति आपके मन मे भी कम वात्सल्य नही है। कभी बच्चे ने आपके कपडो पर टट्टी-पेशाव कर दी तो आपको कैसा लगा? रज मे भर कर बच्चे को थप्पड क्यो नही मारी? मतलब इतना ही है कि मा बाप को बच्चे की सेवा करते हुए, तकलीफ मे भी खुशी होती है। वे उस सेवा को

मन से अपना समझ कर करते है। जब कि एक नौकर कर्तव्य क वेगार और भार समझता है। उसको अपने मालिक के काम मे मज नही होता। वेगार समझकर करने से उल्टे उसे दु ख होता है, परे शानी वढती है। काम का वास्तविक आनन्द अभिरुचिपूर्वक करने मे ही आता है।

**अन्त साधना सिद्धि का मूल**

आप भी यदि सिद्धि चाहते है तो साधना को आन्तरिक रससे कीजिये। सामायिक, स्वाध्याय आदि जो भी क्रिया करे उसे अदरूनी भाव से, तन्मयता से मा की तरह करे, परन्तु नौकर की तरह नही। साधना वेगार के रूप मे नौकर की भावना से नही परन्तु आत्मीयता से होगी तभी उसमे आनन्द है। सासारिक साधना का फल द्रव्य, इज्जत और नामवरी मिला लेना भर है। आगे उससे कुछ लाभ नही होता। किन्तु आध्यात्मिक साधना यहा भी और आगे भी उभय लोक मे सुख शान्ति दिलाने वाली है। अत वीतराग प्रभु ने कहा—मानव ! इसके लिए तू दिल से तैयार हो, वाहर से नही। दिल से तैयार होकर चलने वाला अपने आप मे सुबाहु कुमार की तरह जिधर भी कदम वढाता है, पीछे मुडकर नही देखता। ऐसा नही कि चल तो रहा है आगे और मुडमुड कर पीछे देख रहा है। इस तरह का शकित या दुर्वल मन से किया हुआ त्याग कारगर सिद्ध नही हो सकता।

धर्म साधना के दो रूप है, एक अन्तरग और दूसरा वहिरग। अन्तरग रूप सवका अपना क्षयोपशम है जो अपने तक ही सीमित रहता है। किन्तु वहिरगरूप वह है जो अपने से भी सम्बन्ध रखता है और समाज तथा परिवार से भी। साधना के इन दो रूपो मे भ० महावीर ने कहा कि अन्तरग मूल कारण है। अन्तरग साधना से ही साधक सिद्धि को प्राप्त करता है। अन्तरग साधना ही भवप्रपच की जड काटती तथा मुक्ति के पद पर साधक को सुखासीन करती है।

**सिद्धि के तीन अग**

सिद्धि के लिए तीन अग आवश्यक है, साध्य, साधन और साधना। जब तक साधक को इन तीनो अगो को वरावर साधने का

मौका नही मिलेगा तब तक हर्गिज सिद्धि नही मिलेगी। यदि ये तीन साध्य साधन और साधना अनुकुल है और साधक उससे अलग है तब भी सिद्धि नही मिलेगी। तो साधक को सिद्धि पाने के लिए तीनो बातें चाहियें। तीनो बराबर होने पर ही सिद्धि रूप फल मिलेगा।

मान लीजिए कि आपको चलना है, किन्तु कहा जाना है यह पता नही है। बिना लक्ष्य के चल रहे है। इस तरह आपका चलना थककर गिरने तक कही समाप्त नही होगा। क्योकि जयपुर जोधपुर आदि गन्तव्य लक्ष्य निश्चित नही होने से गति का क्या परिणाम निकलेगा ? लक्ष्य निर्धारित नही किया और चलते रहे, साधन भी ले लिए, वे दुरूस्त भी है और पूरे भी किन्तु साध्य स्थिर नही हैं। किसी ने पूछा कहाँ जाना है ? यह तो पता नही है, जहा भी पहुँच जाये। ऐसी स्थिति मे सोचना है कि ऐसा लक्ष्यहीन यात्री कब कहा पहुँचेगा।

ऐसे ही प्रभु ने कहा कि अध्यात्म-साधना करने वालो को पहले साध्य स्थिर करना पडेगा। अध्यात्मवादियो का साध्य-लक्ष्य निश्चित है। उन्हे कर्म बन्धन को काटना है, अपने शुद्ध स्वरूप को पाना है और वीतरागता की प्राप्ति करनी है।

**धर्म साधना का लक्ष्य भौतिकता नहीं**

व्यक्ति का लक्ष्य उच्च और महान् होना चाहिये। लक्ष्य के अनुरूप ही गति और प्रगति की जाती है। धर्म प्रेमी मुमुक्षु का लक्ष्य होना चाहिये वीतरागता की प्राप्ति। धर्म साधना का लक्ष्य, धन मिलाना, कीर्ति मिलानी और परिवारादि मिलाने जैसा निम्न स्तर का नही होना चाहिये। धर्म का लक्ष्य यथेष्ट बाल-बच्चे पाना और सासारिक सुख भोगना भी नही है। इसका लक्ष्य तो विकारो का मूलोच्छेद कर शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करना है। जन्म, जरा एव मरण के बन्धन को काटना है। हम जो आज तक चौरासी के चक्कर मे भटक रहे हैं, यह भवभ्रमण मिटाना ही लक्ष्य है।

तो साध्य के अनुरूप ही साधना और साधन भी होने च
पूर्व मे जाना हो और गति पश्चिम की ओर करे तो क्या
हम उल्टी गति से कभी भी अभीष्ट स्थान नही पहुँच सकेगे।
जब चलना है वीतरागता की ओर, और काम करे राग बढ
रोष बढाने के, लोभ बढाने और चचलता बढाने के तो सा
विपरीत कार्य से सिद्धि नही मिल पायेगी ?

## आहार-विहार की शुद्धि आवश्यक

प्रश्न उठता है कि वीतरागता की प्राप्ति कैसे हो ? '
दर्शित लक्ष्य स्वीकृत होने पर भी क्रोध, लोभ, मान, माया एव
द्वेष का मूलोच्छेद कैसे करना ? यह एक समस्या है। इस पर
महावीर ने कहा कि—आहार शुद्धि, विहार शुद्धि, विचार शु
और आचार शुद्धि इन चार बातो का पूर्ण ध्यान रखना है। य
वीतराग पथ पर कदम बढाकर आगे बढना है तो इन चारो प
लक्ष्य देना है। कहा भी है—"आहार मिच्छेमियमेसणिज्ज, सहा
मिच्छेनिउणट्ठ बुद्धि। निकेयमिच्छेज्ज विवेकजाग, समाहिकामेसमरो
तवस्सी।"

इनमे पहली बात है, आहार शुद्धि, मानव के मन पर आहार—
खान-पान का बडा असर होता है। हजारो वर्ष पहले तीर्थंकरो ने
यह प्रमाणित कर दिया कि मन पौद्गलिक है। आज विज्ञान खोज
कर रहा है। अभी वैज्ञानिक भाषा की लहरो की जाच करने मे लगे
हैं। हम सब बोलते है और दूर-दूर से कोई वक्ता भाषण दे रहा है
तो उसकी शब्द लहरी यन्त्र के द्वारा पकडी जा सकती है। परन्तु मन
के भावो को, विचारो की तरगो को पकडने मे, अभी वैज्ञानिक पूरे
कामयाब नही हुए। मगर मनुष्य के विचारो की तरगो को पकडने
की बात भी वे मानते है।

गहराई से देखने पर आपको ज्ञात होगा कि आपके विचारो
का दूसरो पर असर होता है। आप कुछ भी नही बोलिये केवल कुर्सी

पर बैठकर किसी के प्रति बुरेभाव से देखते रहिये। फिर दूसरे दिन देखिये कि उसके मन पर कुछ असर हुआ या नही।

### परिग्रह को ढीला करना आवश्यक

आवश्यकता है आज धर्म साधना का प्रयोग जीवन पर करने की। यह तभी हो सकता है जब परिग्रह की पकड ढीली की जाय। कारण एक साथ धन और धर्म को पकडकर कोई नही चल सकता। यदि धन को पकडोगे तो धर्म ढीला पड जायेगा। और धर्म को पकडोगे तो धन का रस कम हो जायेगा। आप कई प्राचीन उदाहरण सुनते है—धर्मियो के हाथो धन ढीला हो गया। क्योकि वे धर्म मे इतने तल्लीन थे कि विनश्वर धन को पकड नही सके। तो उनका धन कम पड गया, घट गया। इसके लिए आपके सामने राजा हरिश्चन्द्र आदि कई उदाहरण है।

धन को पकडा तो धर्म ढीला हो गया। इसके लिए लम्बे जाने की जरूरत नही है। अपने जीवन को ही देखिये। धर्म को पकडनेवाला धन को मजबूत ममता से नही रखता है। सुबाहु की साधना एक ऐसी तेजस्वी साधना रही कि उसने भरपूर सपदा के साथ धर्म को पकडा था।

### साधना मे आहार का महत्व

कहा जा चुका है कि भगवान् महावीर ने वीतरागता के लक्ष्य तक पहुँचने के लिए आहारादि चतुष्टय को आवश्यक बतलाया है। उनमे आहार को क्यो जरूरी माना जाय, इस सन्दर्भ मे प्रभु ने कहा— आहार विचारो का निर्माण करता है। विचारो से लेश्या का गहरा सम्बन्ध है, अत लेश्या पर भी एक दृष्टि डालनी आवश्यक है। जैन शास्त्रो मे लेश्या शब्द एक चिन्तन के लायक है। लेश्या द्वारा मन का निर्माण होता है और आहार से लेश्या का निर्माण होता है। लेश्या मे अच्छा या बुरा रूप लाने के लिए आहार भी एक कारण है। यदि आहार-खाने के पदार्थ तमोगुणी है, मादक हैं व उत्तेजक हैं

तो उनके द्वारा आपकी लेश्या के परिणामो मे भी अशुभता आयेगी। लेश्या अशुभ हुई तो मन भी अशुभ होगा।

**लेश्या और मन के भेद**

मन क्या है—विचार। लेश्या के दो भेद हैं और मन के भी दो भेद है—द्रव्यमन और भावमन। आज के वैज्ञानिको ने भी मन के दो भेद किये है—अन्तर्मन और बाह्यमन। द्रव्यमन सक्रिय होकर चिन्तन मनन करता है, योजना बनाता है। द्रव्यमन रूपी और भावमन अरूपी है। इसी तरह द्रव्य लेश्या और भाव लेश्या है।

लेश्या का एक अर्थ होता है, शरीर को काति-प्रभा-वर्ण। नित्य जैसे पदार्थ खाये जायगे, पिये जायेंगे, उसके अनुसार उसकी काति होगी, वह द्रव्य लेश्या कहाती है। भाव लेश्या परिणाम रूप है। अशुभ द्रव्य अशुभ विचारो के निर्माण मे सहायक होता है और शुभ द्रव्य शुभ विचारो के निर्माण मे सहायक है। देखिये ! एक पत्ती ब्राह्मी की है और एक पत्ती भग की। दोनो ही देखने मे एक ही रग-रूप की हैं। दोनो मे हरापन है। परन्तु रग-रूप मे समता होते हुए भी दोनो के गुण मे महान् अन्तर है। यदि किसी ने भग की लुगदी ले ली, उसको खा गया और दूसरे ने ब्राह्मी की लुगदी ली तो क्या होगा ? दोनो के परमाणुओ मे अन्तर है। एक ज्ञानावरणीय कर्म के उदय का कारण बनता है तो दूसरा ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम मे निमित्त बनता है। भग को लुगदी—उसके परमाणु, आपकी समझ शक्ति, चिन्तन शक्ति और सोचने की शक्ति को मद कर देगी। सेवन के पश्चात् आपके विचारो मे एक जडता जम जायेगी और यदि दस-बीस वर्षों तक भग पीते रहे तो स्मरण शक्ति मे, दिमागी शक्ति मे, बडी कमजोरी आ जायेगी। आप भग के बिना सरलता से अपना समय भी नही काट सकेंगे और पीने पर आपकी होश ही जाती रहेगी।

दूसरी ओर यदि बीस वर्षों तक कोई ब्राह्मी की पत्तियाँ पीता रहा तो मद बुद्धिवाला व्यक्ति, एक श्लोक ठोक से याद नही करने-

वाला भी तीक्ष्ण और कुशाग्र बुद्धि बन जायेगा। ब्राह्मी के परमाणुओ के प्रभाव व निमित्त से, उसके विचारो मे, बुद्धि मे तेजस्विता आ जायेगी। तो प्रभु ने कहा कि आहार, विहार, आचार और विचार इन सबको ठीक बनाओगे तो साधना सरल होगी और तब सिद्धि भी आसान होगी।

### आहार शुद्धि और समाज व्यवस्था

आहारादि चारो को ठीक रखने के लिए आज सामाजिक सुव्यवस्था की जरूरत है। पहले के लोगो का अपने मन पर नियन्त्रण रहता था। वह वन मे और मासाहारियो के बीच मे भी अपने आहार, विहार व विचारो को शुद्ध बनाये रखता। कदाचित् देश से बाहर भी जाता तब भी सोचता कि मैं यहाँ आकर भी अपने आध्यात्मिक भावो पर आच नही आने दूँगा। कोई हमे देखे या न देखे परन्तु भगवान् तो सर्वत्र देखते हैं।

परन्तु आज के मनुष्य का चिन्तन कुछ और ही है। वह सोचता है कि घर मे माताजी हरी भी नही खाने देती। मगर अब तो बम्बई कलकत्ता मे स्वतन्त्रता से घूम रहा हूँ। यहाँ तो माता-पिता भी नही है फिर क्या खाना क्या नही खाना ? इसका विचार नही कर जो जी मे आता है, खा लेता है। जमीकद की तो बात ही क्या ? अखाद्य की भी सीमा पार कर जाता है।

आप मे से कितने ही जो अभी सामायिक के वेष मे बैठे है, घर तक आहारादि की मर्यादा पालेंगे, परन्तु होटलो मे जाने पर कुछ और ही विचार रखेगे। कदाचित् आप अपना ख्याल रख भी ले परन्तु बाल-बच्चो की ओर ध्यान नही होगा। आपने कभी अपने प्रवासी पुत्र से पूछा भी है कि—बेटा ! तुम देश-विदेश सभी जगह से घूम आये परन्तु तुम्हारे आहार-विहार मे कोई फर्क तो नही आया ? महात्मा गाँधी की माता ने उन्हे जैन मुनि रायचन्द स्वामी के पास ले जाकर उपदेश दिलाया और प्रतिज्ञा करवाई।

मगर आज की माँ तो सोचती है कि यहाँ की कमाई से पूरा नही पडता तो वेटा वम्वई, कलकत्ता मे जाकर कमाई करे तो अच्छा रहेगा। मारवाड के गाँवो को छोडकर मालवे मे जाने वाले किसान कितने और देशान्तर जाने वाले मारवाडी कितने ? आपको कौनसा गाँव और शहर ऐसा मिलेगा कि वहाँ के लोग कानपुर, वम्वई एव मद्रास मे नही घूम रहे हो ! मैं पूछूँ कि क्या आपको यहा रोटी बरावर नही मिल रही ? आपको शुद्ध रोटी से सतोष कहाँ ? और सादे कपडो से शान्ति कहाँ ? आप तो चाहते है कि मेरे घर मे भी अच्छी गाडी हो जो तीस-पैंतीस हजार से कम की नही हो। और लोग मुझे भी एक वडा उद्योगपति समझें, मान सन्मान करे।

आज मारवाड मे रोटी के लिए, आजीविका के लिए कोई कमी नही है। छोटे-छोटे गाँवो मे भी नल, विजली और यातायात की सुविधा हो गई है। वहाँ भी वे अपने छोटे-वडे कारोबार चला सकते है। और हजारो कमा सकते है। मगर हमारे जैन भाई विदेश मे दौडे बिना नही रहेगे। तो बाहर मे आहारादि की शुद्धता बराबर कैसे रह पायेगी ?

आज देश मे ऊँची मानी जाने वाली जातियो, अग्रवाल, ओसवाल, पोरवाल, महेश्वरी, ब्राह्मण वगैरह मे तो व्यवस्था ऐसी ढीली हो गयी है कि—बच्चे कहाँ रहते है ? कहाँ जाते हैं ? क्या खाते-पीते है, किनके पास बैठते है आदि आवश्यक जानकारी की वात भी कोई पूछने वाला नही है।

मैं सवाई माधोपुर क्षेत्र मे था तो वहा के बलाई भाइयो मे अहिंसा के प्रचार का काम चालू किया। उन लोगों से वात की तो उन लोगो ने कहा—बडी अच्छी बात है। उन्होने चालीस गाँव की पचायत इकट्ठी की और निर्णय किया कि हमको मद्य सेवन नही करना। एक हरिजन जैसी कौम—समाज व्यवस्था से सुधर सकती है, तब जैन समाज, महाजन समाज जो जन्म से अच्छे सस्कार वाला

है, उनको सुधारना या कुटेवो से बचाना क्या कठिन है ? आवश्यकता है समाज की सुव्यवस्था की ।

पहले समाज व्यवस्था थी। मृत्यु भोज, शादी पर नाच, आतिशबाजी, रात्रि भोज आदि कुरीतियाँ पचायत ने बन्द करदी। उस समय बाराती को मनुहार मे सुपारी, पान इलायची आदि दिए जाते। पर आज कन्द, मूल और मादक पदार्थों का प्रचार बढने लगा है। युवको को चाहिये कि समाज को व्यसन मुक्त कर लोकापवाद और पथ भ्रष्ट होने से बचाये। जिससे जनता को यह कहने का अवसर नही आवे कि इनमे व्यवस्था नही। ये लोग आस्था-हीन और निरकुश बन गए।

आज सच्चे समाज हितैषी और धर्म रक्षको की आवश्यकता है, जो भावी पीढी के बच्चो का ध्यान रखे और गलत मार्ग जाने वालो को मिलकर प्रेम से समझावे। कुसग से बचाकर सत्सग और सत्साहित्य की ओर लगावे। कदाचित् कोई प्रेम और भय से नही सुधरे तो समाज के अन्य बच्चे उसकी सगत से नही बिगडे, ऐसी तो व्यवस्था करे।

नगरो मे नागरिको के आवश्यक सहयोग और जीवन स्तर उठाने के लिए क्लबो से आशा की जाती—पर उनमें अच्छे पढे-लिखे उच्च स्तर के नागरिक और अधिकारी के सम्मिलित होते हुए भी, नैतिक सुधार का कोई काम नही दिख रहा। खेलकूद और आमोद-प्रमोद मे भी मादक द्रव्यो को प्रश्रय दिया जाने लगा और हार-जीत की बाजी भी होने लगी है। हाँ, कुछ सहायता कार्य समय-समय पर अवश्य प्रस्तुत किया जाता है। ऐसी अवस्था मे महाजन समाज और जैन समाज को यदि जिंदा रखना है तो समाज की व्यवस्था मे कुछ सुधार करना होगा। यदि समाज की व्यवस्था को सुदृढ नही बनाया गया तो कुछ दिनो के बाद आप अपनी भावी पीढी को धर्म क्रिया से विमुख पायेगे। सभव है बहुत से युवक आहार विहार मे

बिगड जायँ और इससे उनके विचारो मे दुर्बलता आ जाए। क्योकि आहार से ही विचार वनते हैं। आहार शुद्धि के लिये समाज व्यवस्था जरूरी है।

**ज्ञान और साधना**

भ० महावीर ने कहा कि आहार-विहार की साधना को छोटी मत समझो। ज्ञान की ज्योति है तो, छोटी भी साधना जीवन को चमका देगी और ज्ञान की ज्योति नही है तो जीवन आगे नहीं बढेगा। ज्ञान की ज्योति दो तरह से चमकती है। सामाजिक व्यवस्था से या सत्गुरु की कृपा से। ज्ञान बिना सत्सग के नही होता। सत्सग और स्वाध्याय दोनो ज्ञान वृद्धि मे सहायक है। पहले-पहल स्वाध्याय भी सद्गुरु की सेवा मे ही ठीक रहता है। क्योकि गुरु के चरणो मे और उनके निरीक्षण मे किया गया स्वाध्याय सम्यक् परिणाम वाल होता है। गुरु चरणो में किये गये स्वाध्याय को दिशा निर्देश मिलत है। जिससे मानव अपने जीवन को वना पाता है। साधक को आर मे ही यदि मार्ग दर्शन नही मिला तो वे जीवन नहीं वना सकें और जीवन नही वना तो सारी साधना फीकी रहेगी।

भगवान् महावीर ने कहा—मैंने बहुत वर्षो तक साधना की तप किया। तीर्थकर भव से पहले कई जन्म तक करनी करता रहा परन्तु मेरी करनी जब तक ज्ञान मे शून्य रही, तब तक मुझे भटकना पडा। मैंने मरीचि के भव मे बहुत जप-तप, साधना की, पर अन्त कुलमद कर आलोचना किये विना ही चल बसा। कुल-वश के घमण से नीच गोत्र का वध हुआ। आत्मा गिर गई, कई भवो मे भ्रम करना पडा। फिर ब्राह्मण कुल मे जन्म लेकर तापस दीक्षा से त करते रहा मगर साधना ज्ञानपूर्वक नही थी। जैसा कि कहा है—

> "ब्रह्म लोक से निकल, मध्य कई भव कर जाते हैं।
> पचम कौशिक द्विज भव से, फिर नर भव पाते हैं।"

शासन नायक

साधारण साधको की तो वात ही क्या ? भ० महावी कहते है कि मैंने अपने जीवन मे प्रयोग करके जाना

कि जो व्यक्ति ज्ञान शून्य होकर तप करता है उसके जन्म-मरण का बधन नही कटता, भव प्रपच नही टूटता। मरीचि ने पाचवें देव-लोक से आयु पूरा करके ब्राह्मण कुल मे जन्म लिया। उसका नाम था अग्निमित्र। घर अच्छा, भक्ति का वातावरण अच्छा। अत सत्सग पाकर के उसने परिव्राजक मत की दीक्षा ले ली। घर परिवार छोडा, सब कुछ छोडा, वर्षों तक भूखा रहा और साधना की। परन्तु उसमे ज्ञान नही आया। साधना का लक्ष्य क्या है ? आत्मा परमात्मा और बध मोक्ष क्या है ? इसकी कोई सही जानकारी उसे नही मिल पायी। एक परम्परा के रूप से उसने व्रती का बाना धारण कर लिया। वर्षों तक साधना करके भी वह पहले देवलोक मे गया। छठे भव मे फिर स्वर्ग से निकला और ब्राह्मण कुल मे जन्मा। वहाँ भी पूर्ववत् ही किया, मगर कोई नतीजा नही निकला।

### गुण और वन्दन

स्मरण रहे कि ज्ञानपूर्वक थोडी देर भी किसी त्यागी, विरागी या अरिहत, सत को नमस्कार कर ले तो उससे उसके कर्म बन्धन कट सकते है। तीनबार झुकना तो बडी बात है ? यदि एकबार भी झुक कर वन्दनीय के ज्ञानादि गुणो का साकार रूप मे चिन्तन किया जाय तो बडे आनन्द का कारण हो सकता है।

आज आप आते है मुनियो के वन्दन करने को और—"करेमि वदामि" अक्षरो का उच्चारण भी करते हैं। अक्षरो का दिमाग मे चक्कर चलता रहता है, परन्तु कभी यह नही सोचते कि—"कल्लाण देवय चेइय" क्या है ? इन सतो मे क्या गुण हैं ? इस तरफ लक्ष्य नही दिया तो हम पिण्ड की पूजा कर रहे हैं, गुणो की नही। याद रक्खे आपको किसी के पिण्ड की पूजा नही करनी है, बल्कि गुणो की करनी है। आप मेरे पैरो से रगड खाओ या नही खाओ, परन्तु गुणो से रगड खाओगे तो इसमे आपका कल्याण है।

साधु आपके घर से ही निकले हैं। उनके शरीर मे कोई अलग विशेषता नही है। आप मे से कई सतो की अपेक्षा शरीर से ज्यादा

लम्बे चौडे और तगडे निकल सकते है। फिर सतो को वन्दना क्यो करते ? पिण्ड की पूजा नही है—क्योकि पिण्ड की पूजा करनेवाला सम्यक्-दृष्टि नही होता। आपको साधुओ के गुणो का ध्यान करना चाहिये। देवमूर्ति के सामने प्रणाम करनेवाला जमे सिर टेक कर प्रार्थना व गुणो का चिन्तन करता है, ऐसे त्यागी सन्तो के वन्दन मे भी गुणो का चिन्तन होना चाहिये। अपने यहा वन्दना मे जोर जोर से बोलने का रिवाज है। वन्दना करनेवाला चाहता है कि महाराज को मालूम हो जाय और मेरी वन्दना मजूर करे। कभी कोई सत वन्दना नही झेली तो लोग नाराज होगे। वे यह नही सोचते कि मुझे तो वन्दना का पुण्य हो ही गया। साधुजी ने वन्दना नही झेली तो मेरा क्या जाता रहा ? यह तो सतो के सहूलियत की बात है, जो एक व्यवहार है।

आचार्यो ने कहा है—"ससार सागराओ, तारेई नर वा नारिं वा।" इस श्लोक मे बतलाया गया है कि मानव ! बडी साधना तो क्या ? एक बार भी यदि सच्चे मन से त्यागियो के चरणो मे या वीतराग वर्द्धमान् को नमस्कार कर ले, वीतराग भाव का चिन्तन कर ले कि—भगवन् ! आप वीतराग हैं, आपने ससार की भोग-भावना पर विजय प्राप्त की है, मेरा आपको शत शत वन्दन है। इस तरह आप भाव वन्दन करते है तो आपके जीवन मे गुणो का प्रकाश होगा, आत्म-ज्योति जगमगा उठेगी।

**साधना और स्वाध्याय**

मैं कह रहा था कि इस तरह धार्मिक साधना मे तेजस्विता लाने के लिए, साधना की शिखा को प्रद्योतित करने के लिए वह राजकुमार तप पथ पर बढ चला। परन्तु आज देखते हैं तो ज्ञात होता है कि लोगो की साधना मे चेतना नही है, रस और प्राण नही है। आपको भी उस राजकुमार की तरह अपनी साधना मे चेतना लानी होगी और समाज व्यवस्था मे सुधार लाना होगा।

स्वाध्याय व्यक्तिगत चेतना का प्रमुख साधन है। घर-घर, गाव-गाव और प्रान्त-प्रान्त मे स्वाध्याय के प्रकाश का प्रचार-प्रसार

हो। धर्मस्थान केवल बैठके, पूंजनी और जाजम फैलाकर बठने का ही साधन नही है। परन्तु यहाँ ज्ञान का घोष होना चाहिये, स्वाध्याय का घण्टा बजना चाहिये। स्वाध्याय के प्रदीप से मन का अन्धकार दूर होगा। समाज की टक्करबाजियाँ खत्म होगी, कुरीतियाँ खत्म होगी। इस तरह इन समस्त रोगो का एक इलाज है स्वाध्याय।

परन्तु आज तो आप सब पर का अध्याय कर रहे हैं—अमुक समाज ऐसा कर रहा है, अपने साथी ऐसा कर रहे है, वह ऐसा धधा-व्यापार कर रहा है, उसने खानदान का नाम डुबो दिया, इस प्रकार की बाते सब पर के अध्याय हैं, यह स्वाध्याय नही है। जब तक स्वाध्याय नही होगा, तब तक कुछ नही होगा। स्वाध्याय मे ही व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को आगे बढाने की क्षमता है, स्वपर के कल्याण का बल है।

आज मैं अजमेरवासियो से, मेवाड एव जयपुर, जोधपुर आदि-आदि स्थानो के बन्धु और माताओ से आशा रखता हूँ कि वे केवल मगल लेकर ही इस स्थानक से रवाना नही होगे, परन्तु अपने-अपने घरो मे, समाज मे, जन कल्याणकारी स्वाध्याय का पूरा प्रचार करने की भावना लेकर जायेगे। हरेक बच्चा, बूढा, जवान यह सकल्प करे कि स्वाध्याय हमारे समाज का धर्म है। एक तो होता है व्यक्ति धर्म और एक होता है समाज धर्म। सिक्ख समाज के पाँच निशान है। कोई भी सिक्ख का बच्चा बिना कडा, केश, कघी, कटार और कच्छे के आपको दृष्टिगोचर नही होगा। इन्ही से वह सरदार समझा जाता है। मैं जैनो से समझना चाहू तो आपके भी कोई निशान है क्या ? नही। न तो आपके वेष-भूषा मे ही ऐक्य है कि जिससे ज्ञात हो सके कि आप जैन है।

आप बाहरी नकल जरूर कर लेगे परन्तु सामायिक की नकल नही करेगे। भ० महावीर ने कहा—एक चेडा जैसा राजा और पूणिया जैसा श्रावक मगर सामायिक मे दोनो समान। गरीब और अमीर

सब की एक ही वेष-भूषा थी—श्वेत चद्दर और धोती। परन्तु आज सामायिक मे भी बहुरूपियापना आ गया है। आज का नौजवान सोचता है कि कौन कपडे धोती बदले। कचहरी जाएगे तो वहा के अनुरूप वेष बदल लेगे। वकील हुए तो न्यायालय का प्रचलित वेष लगायेगे। स्कूल के बच्चे वहा के वस्त्र पहनगे। डाक्टर हुए तो अस्पताल के नियमानुसार वस्त्र बदल लेगे। नौजवान अपने उद्योग शाला मे जाते हुए वेष बदलेगे। परन्तु हमारे धर्म स्थान का आदर और प्रेम ऐसा है कि सामायिक मे भी कोई वेष नही बदलेगा। पेंट और पायजामा पहिने हुए ही सामायिक करेगा।

आज सब मे पश्चिम का वेष घर कर गया है। धोती पहनने का रिवाज जो आपके बाप-दादा से पुश्तैनी रूप मे आ रहा है, उसे पहिनना भूल गए। और जो भारतीय सस्कृति की वेषभूषा नही है, उसे अपना लिया। सोचिए! प्रतिलेखन करना किसका सरल होगा, सिले हुए वस्त्र का या बिना सिले हुए का? मगर आज हमे इस सरलता और आसानी पर नजर नही है। नजर पश्चिम की नकल नवीसी पर है। सामायिक मे बिना सिला कपडा होना चाहिये—सामायिक मे साधुवृत्ति का अभ्यास है।

सामायिक साधना मे एक वेष होगा तो बहुत अशो मे सामाजिक भेद दूर हो सकेगा। हमारा सामायिक का समतावाद इतना जबर्दस्त है कि अर्थ का समतावाद, साम्यवाद सभव समाज मे शीघ्र नही आयेगा, और आये भी तो पूर्णरूप मे ऐक्य सभव नही हो। परन्तु सामायिक-समतावाद मे एक मजिल वाले और दस मजिल वाले भी एक साथ हो जाएगे, मिल लेगे। वेतन के तीन, चार और पाँच अको के अन्तर वाले भी एक स्थान पर मिल जायेगे। अमीरो और गरीबी दोनो एक जगह आकर जुड जायेगी और कुछ देर के लिए धारण की गई समानता आ जायेगी। साधना के बल से सदा-सदा के लिये भेद-भाव भुला देगी। इस प्रकार सामायिक मे समतावाद आया तो एक लखपती तथा गरीब मे कोई अन्तर नही दिखाई देगा। ऐसे समता

की सीढी पर धीरे-धीरे चलते हुए कभी अनन्त सुख का प्रासाद भी प्राप्त किया जा सकेगा।

आप जैन है, अत आपका यह दायित्व है कि आप स्वय सुधरे और दूसरो को भी सुधारे। इसके लिए स्वाध्याय की मशाल हाथ मे ले और जैन शासन को चमकाये। स्वाध्याय के द्वारा ज्ञान की ज्योति जगाई गई तो आपका लोक एव परलोक सुखदायी बन जाएगा। यदि आप मेरे कहे हुए विचार पर चिन्तन मनन करेंगे तो समाज का कल्याण होने मे देर नही लगेगी।

●●

## ३

# त्याग का महत्व

### सुबाहु राग से त्याग की ओर

बन्धुओ ! अभी विपाक सूत्र का वाचन चल रहा है। उसमे बताया गया है कि चरित्रनायक सुबाहुकुमार अपनी अपार ऋद्धि सम्पदा को त्याग कर साधना के क्षेत्र मे गति कर रहे है। सुखोपभोग की सारी सामग्री से मुँह मोड कर सयम की साधना मे, व्रत की आराधना मे, अपने को अर्पित कर गति कर रहे है। आप सोचेगे कि दुनिया का हर व्यक्ति सुख सामग्री को पाना चाहता है। कोई भी उसे छोडना नही चाहता। फिर यह तो उल्टी गगा वहने जैसी बात है। आपमे से अधिकाश भाई बहिन भक्ति करते, तप करते, जप करते और सत्सग करते अभिलाषा रखते है कि हमको तन का सुख मिले, धन का सुख मिले, गुरु की कृपा से सन्तति का सुख मिले, अच्छी प्रतिष्ठा और पद मिले। आप सब इनको मिलाना चाहते है। सभव स्वप्न मे भी इन्हे छोडने की इच्छा नही करेगे।

खूब गहराई से सोचे कि यदि आपके परिवार मे से एक पुत्र यदि सदा सदा के लिए आपसे अलग हो जाये तो क्या अच्छा लगेगा ? आप दस बीस वर्षो तक बडे सम्मान के साथ ऊँचे पद पर रह गए, बडे उद्योगपति बन गए, अब आपके स्थान मे यदि किसी दूसरे को उसका अधिकारी बना दे, तो कैसा लगेगा ? आप लखपति है, और कोई उनमे से दस हजार ले ले तो क्या पसन्द आयेगा ? आप किसी ट्रस्ट मे हैं, कारखाने-मिल के डायरेक्टर हैं, विधान सभा या धारा सभा के सदस्य हैं, इनसे आपको हटाकर, दूसरे को वह पद दे दिया जाये तो क्या आप पसन्द करोगे ?

सचाई तो यह है कि कौन भाई बहिन ऐसा होगा, जो प्राप्त पद, मान-प्रतिष्ठा, धन, कुटुम्ब, और कुर्सी को छोडकर दूर होना

चाहे ? प्राय· बहुत थोडे लोग होगे, जो इस वात को पसन्द करेगे। वास्तविकता तो यह है कि आप उन सभी वस्तुओ को लेना चाहेगे और चाहेगे कि मन के अनुकूल सफलता मिले। आप तो हम जैसे त्यागी सतो से भी सासारिक नफा उठाने की इच्छा रखेगे। साधु सतो की शुभ दृष्टि से बम्बई कलकत्ता आदि स्थानो मे आपके द्वारा खोले गए कारखानो मे, व्यापारिक प्रतिष्ठानो मे, अभीष्ट सफलता मिलने से आपको अत्यधिक खुशी होगी और आप सतो के गुण गाने लगेगे।

इस प्रकार दुनिया का साधारण प्राणी जहा इन भौतिक वस्तुओ के पाने मे, हर्ष एव आनन्द मनाता है, वहा धर्मशास्त्र और ज्ञानी इन नश्वर पदार्थों के छोडने मे हर्ष मनाने का सदेश देते है, शिक्षण देते है कि ज्ञान को प्राप्त करने मे खुशी मनानी चाहिये। शास्त्र कहता है मानव ! वस्तुत अन्तर मे ज्ञान ज्योति के उतरने से, भीतर और बाहर उजागर होगा एव अपने और पराये का सही ज्ञान होगा। तब बाह्य वस्तुओ के त्याग मे दु ख करना भूल जाओगे। मगर ज्ञान की यह ज्योति कठिनाई से भीतर उतरती है। जब आप अपने पुत्रो मे से किसी को त्याग मार्ग मे देकर, प्रभु के चरणो में चढाकर खुशी अनुभव करोगे, तिजोरी मे जमा लाखो मे से, हजार ही सही त्याग मार्ग मे—सवर निर्जरा के कार्यों मे लगाने का अवसर पा हर्ष मनाओगे तब जानो कि ज्ञान की ज्योति जगी।

प्राय लोग खान-पान मे ही प्रसन्नता का हर्ष एव आनन्द का अनुभव करते हैं। परन्तु ज्ञान के जगने पर खाने मे खुशी नही, उसके त्याग एव सदुपयोग मे खुशी होती है। ऐसे ही मनपसन्द भोगो को भोगने मे खुशी नही होगी, उन्हे छोडने मे मजा आयेगा। अन्तर की चेतना कहेगी कि ये भोग कर्म बन्धन के कारण है। जितनी इनमे प्रीति करूँगा, उतना ही अधिक उलझूँगा। ज्ञानियो ने ठीक कहा है—

"भोगा न भुक्ताः, वयमेव भुक्ता.'

याने हमने भोगो का भोग नही किया, किन्तु भोगो ने ही हमारा भोग कर हमे निस्सार बना दिया। इस प्रकार ज्ञानी आत्मा

भोग्य पदार्थों के पाने मे नही, उसके त्याग मे खुशी मानता है। किन्तु आपको यह त्याग की बात सहसा अभी गले नही उतरेगी।

इसी प्रसग मे आपसे पूछ लूँ कि कभी आपके शरीर पर सार-सभाल नही करने से, पसीना के सग धूल जम जाये तो आपको खुशी होगी क्या ? नही। अरे ! माल बढने पर यह ना कैसा ? आप कहेगे कि यह तो कचरा है--मैल है। यहाँ तीन दिन बैठे रहे और पौषध के कारण स्नान भी नही कर पाये तो शरीर भारी मालूम होगा। पर्यूषण के बाद तो छूटते ही घर जाकर स्नान करेंगे। कदाचित् सतो के द्वारा जल्दी का कारण पूछने पर, आप कह देते हैं कि मैल खा रहा है, स्नान करने को घर जाना है। शरीर पर मैल खाने का आपको अनुभव है, किन्तु तिजोरी की जमा पूँजी, घर के भीतर की दौलत आत्मबल को खा रही है यह कभी अनुभव नही हुआ ? इसको अभी तक मैल नही समझा है। यही कारण है कि धन-सपदा और विषय कषाय को, बढे हुए मैल की तरह अलग करने का कभी विचार नही होता। यह ज्ञान न होने का प्रत्यक्ष उदाहरण है। अपने शरीर पर सदा साथ रहनेवाला, पसीने मे चिपके हुए मैल को हटाने की तो जल्दी है किन्तु घर मे, तिजोरी मे, अपने से दूर रखे हुए धन मे जो मोह बढा हुआ है, उसको हटाने की कोई चिन्ता नही है।

राजकुमार सुबाहु को, उसकी सारी राज्य सम्पदाये, शरीर पर जमे मैल की तरह, दूर करने की धुन लग गयी। उसने देखा कि राजा महाराजा का पद मिला। पाँच सौ रानियाँ मिली तो इससे मेरी आत्मा पर कर्म का मैल बढ गया। मैं पहले की अपेक्षा अधिक भारी हो गया हूँ। इन पाँच-पाँच सौ रानियो और पाचो इन्द्रियो के भोगो को जी खोलकर भोगा। जीवन मे ये जवानी के दिन, जिनमे विद्युत-सी शक्ति और अटूट उत्साह प्रवाहित है, किसी सत्कार्य में न लगाकर, वासनाओ की अतृप्त-तृप्ति मे व्यर्थ गवा दिये। ऐसा चिन्तन कर वह अपने सासारिक राग को आज त्याग की ओर मोडने लगा।

### त्याग मे आनन्द

क्या आपने कभी पुराना साप देखा है ? नही तो किसी कालबेलिये की पिटारी मे जाकर देखे । पुराने साप के शरीर पर एक त्वचा का पर्त चढ जाता है, जिसे केंचुली कहते है । जब साप के बदन पर केंचुली छा जाती है तब वह उसे उतारने को छटपटाता है । कारण इससे उसका चलना-फिरना और देखना कठिन हो जाता है । वह केंचुली उतारते इधर-उधर रगड खाता है । जब केंचुली उतर जाती है तो साप बडा खुश होता है । आपके शरीर पर भी कभी पुरानी चमडी हटकर, भीतर से दूसरी नयी चमडी आती है तो पुरानी के हटाने मे खुशी होती है—आनन्द आता है । क्योंकि वह पुरानी बेकाम बन जाती है । जब तक आप उसको नही हटायेंगे, तब तक आपके शरीर पर एक तरह की खुजली चलती रहेगी ।

आत्मा के साथ भी एक कंचुली लगी है, वह है धन-सम्पदा के ममत्व की । आत्मा मे भिन्न होकर भी, यह उसके साथ एक रूप मे रहती है । सर्प का जैसे कंचुली के कारण चलना-फिरना एव देखना बन्द हो जाता है, वैसे आत्मा का भी, सही मार्ग मे जानना-देखना व चलना अवरुद्ध हो जाता है । सर्प की तरह आत्मा भी कर्म केचुली मे परेशानी का अनुभव करता है । समय पाकर वह सत्सग मे क्रिया की रगड से, ममता-वासना की चोली उतार फेंकता है । चोली उतारने पर वह हल्का एव प्रसन्न हो जाता है । इसलिए भ० महावीर ने कहा मानव ! भौतिक पदार्थों के पाने मे आनन्द नही, वास्तविक आनन्द उसके त्यागने मे है । तुमने जो समझ रखा है कि अच्छा तन पाया, कुटुम्ब पाया, अच्छी भोग सामग्री पायी, फिर इससे बढकर और आनन्द क्या है ? तुम्हारा यह सोचना ठीक नही । वास्तव मे इसमे आनन्द नही है ।

### आनन्द राग से नहीं

महावीर के पूर्व जन्म की एक बात जिसमे स्वय उन्होने अपने बारे मे बताया कि राग मे आनन्द नहीं है, त्याग मे है । दसवे भव की यह बात है, जैसे—

"दसवा भव द्विज कुल मे आये सुरतीजे जाते है।
द्वादश भारद्वाज विप्र, दिव चौथे आते है।
शासन नायक वीर जिनेश्वर की हम कथा सुनाते है॥

आगे भ० महावीर कहते है कि जव तक इन भौतिक पदार्थो से चिपके रहोगे, तव तक जन्म-मरण के चक्कर मे भटकते रहोगे। यदि तन से, धन से, बाल-बच्चो से चिपके रहे, कोठी-बगलो और बाग-बगीचो से चिपके रहे, तो मरण काल मे, जिनमे मन बसा रहेगा, उन्ही मे योनि धारण करनी पडेगी। अगर हवेली मे मन रक्खोगे तो उसी मे साप, बिच्छू, कुतिया अथवा चिडिया बनकर पैदा होग्रोगे। वहा से लाठी मार कर हटाने से भी जल्द नही हटोगे। जहा पहले सेठ बन कर थे, वहाँ मानसिक आसक्ति के कारण साँप बन गए और फन काढ बैठे है। न तो स्वय उस धन का उपयोग कर सकता, न दूसरे को करने देता। केवल धन पर रखवाला बनकर बैठा रहता है। अगली पीढी उस पुरानी हवेली मे पूर्वजो द्वारा गाडकर रखे हुए धन को निकालना चाहती है, मगर वहाँ साप जैसे विषैले जीवो की अधिकता से, निकाल नही पाती।

कोई लखपति घराने का था। परन्तु दुर्दैव से व्यापार धन्धा नही चलने से चिन्तित था। उसने परम्परा से सुन रक्खा कि हवेली मे धन गडा हुआ है। मन्त्रवादियो की सलाह ली और बोला कि हवेली के तहखाने को खोदना है। सलाह पाने पर उसने धन का पता लगाने के लिए सारे मकान खोद डाले। कमरे तोड दिए। मगर भाग्य से कुछ भी नही मिला। उसने मिलने पर कहा कि—महाराज! एक खोपडी मिली। किसी दूसरे ने बताया कि चन्दन की एक तख्ती मिली और मिट्टी का 'कुलडिया' मिला। जिसमे कँकर-पत्थर भरे थे, सोना नही था। ऐसे कई नमूने आप सबने देखे सुने होगे।

एक भाई ने कहा—महाराज! वहा माल तो बहुत था, परन्तु साप दिख रहा था। किसी पडित जी के साथ वहाँ गया तो साप को देखकर पडितजी डर के मारे भाग आए। उसने धन पाने के लिए

गाठ के हजारो खर्च किये, मगर फूटी कौडी भी नही पायी। यह परिग्रह की मूर्च्छा का ही परिणाम है।

मूर्च्छावश आपको साप तो नही बनना है? या घर की पहरेदार कुतिया तो नही बनना है? नही बनना है तो आप इन धन, माल, कोठी, बगले से मन को हटाकर भगवान् के चरणो मे आ जाओ। भगवान् के चरणो मे प्रीति करने से, जड पदार्थो के बन्धन से मुक्त हो जाओगे। ऐसी स्थिति मे निर्णय आपको ही करना है कि मुक्त बन कर अक्षय आनन्द प्राप्त करना है, या भवप्रपच मे उलझ कर बारम्बार निम्न योनियो मे जन्म ग्रहण करना है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है—'जेहि-जाहि पर सत्य सनेहू, सो तेहि मिलहि न कुछ सदेहू। याने जिस व्यक्ति का जिस वस्तु मे अत्यन्त स्नेह होता है, वह उसको अवश्य प्राप्त होती है। अत ज्ञानीजन कीडे-मकोडे की मौत मरना पसद नही करते। वे भोग त्यागकर भगवद् आज्ञा की आराधना मे ही पूर्ण आनन्द मानते हैं। सुबाहुने इस मर्म को समझा और सुख वैभव सहित पाच सौ रानियो को क्षण पल मे छोड दिया। अगर राजमहल मे रहना और रानियो के सग वैषयिक भोग ही उसे पसन्द होते तो वह उनको कभी नही छोड पाता।

**राग मे वास्तविक आनन्द नहीं**

आज के लोगो को राग मे ही आनन्द आ रहा है। वे त्याग के महत्व को नही जानते। वे कदाचित् सोचते होगे कि इतने परिश्रम और कष्टो को झेलकर जो धन-सम्पदा मिलायी, उसको योही क्षण-पल मे कैसे छोड दे? महाराज को तो कमाना नही पडता। उनको क्या मालूम कि इनके पीछे कितना कष्ट उठाना पडा है। इतना कष्ट उठाया तो कुछ इसका फायदा भी तो उठाले? योही कैसे छोड दे?

परन्तु जरा गहराई से सोचेगे तो मालूम पडेगा कि यह केवल भावी-सुख की कल्पना मे वर्तमान को भुलाना है। क्या सुबाहुकुमार

कोई पागल था जो पाच सौ विलखती रानियो सहित, सारे राजवैभव को छोडकर चला गया। आज लोग कुर्सियो के लिए कितनी लडाई करते है। चाहे पार्टी टूट जाये, सस्था विगड जाये परन्तु चाहते हैं कि मुझे मत्रिपद मिले, चेयरमेन का पद मिले। सुबाहुकुमार को तो आज की तरह कुछ मिलाना नही था। उसे तो भाग्य से सब कुछ मिला ही हुआ था। लोग जैसा सोचते है, वात वैसी नही थी। उसको ज्ञान हो गया कि राग दु ख का मूल है। कहा भी है—"न विसु ही, देवता देवलोए, न वि सुही पुढवीपतिराया।" देवलोक मे वडी ऋद्धिवाला देव, पट्खण्ड पृथ्वी का राजा चक्रवर्ती और बडे-वडे सेठ, सेनापति भी सुखी नही है। राग मुक्त वीतराग साधक ही एकान्त सुख की अनुभूति कर पाता है। अत भोग के त्यागने मे ही सच्चा आनन्द है।

**राग घटाने के उपाय**

भगवान् महावीर ने कहा कि यह भौतिक वस्तुओ का राग जन्म-मरण के दु ख को बढाने वाला है। औरो की तो बात क्या कहूँ—मैं मरीचि के भव से स्वय भटकता रहा। क्योकि मैने इन भौतिक पदार्थो से राग रक्खा। राग के साथ की गई तपस्या भी पुण्यबन्ध कर सकती है, परन्तु जन्म-मरण की बेडी नही काट सकती। प्रभु ने बताया कि हमने मरीचि के भव मे तप किया, पर कुलाभिमान नही छोडा। फलस्वरूप काल प्राप्त कर पचम कल्प मे, देवरूप से उत्पन्न हुआ। वहाँ से निकल कर ब्राह्मण कुल मे जन्म पाया और वहाँ भी पूर्व जन्म के सस्कार से, त्याग मार्ग स्वीकार किया—परिव्राजक बना। वहा काल करके मनुष्य आयु का बध किया, फिर ब्राह्मण कुल मे जन्म पाया। वहाँ त्रिदण्डी रूप से तप कर प्रथम स्वर्ग मे गया।

यो क्रमश एक जन्म ब्राह्मण का, एक जन्म देव का करते हुए चौदहवे भव मे पुन ब्राह्मण कुल मे जन्म लिया और स्थावर नाम पडा। जवानी मे तापसो का सत्सग पाकर जाना कि ये भोग, रोग और शोक वढाने वाले है। भोग के पीछे रोगो का डर है। जन्म-मरण का चक्कर तथा पदपद मे दारुण दु खो का टक्कर ह। त्याग

और वैराग्य के पीछे ऐसा कुछ नही, वहाँ, सर्वथा शान्ति और निर्भयता है।

**तप से लाभ**

समाज मे आठ, दस या महीनो की तपस्या चलती है। कोई-कोई इससे आगे दिनो तक भी बढ जाते है। तपस्वी भाई-बहिनो ने जब तक कुछ खाया नही, तब तक किसी तरह का खतरा नही होता। परन्तु पारणे मे जरा असावधानी हुई तो बीमारी आ गयी। परिवार वालो के मनुहार से, जरासी ज्यादा खिचडी या पटोलिया ले लिया, टट्टी बन्द हो गयी या ज्यादा लग गई तो खतरे का अनुभव करना पडता है। ये सारे खतरे भोग के है। तप मे जान लेवा कोई भी खतरा नही है। उसमे तो इतना ही है कि कभी गर्मी बढ गई तो पित्त हो जायेगा। पारणे मे तो खतरा ही खतरा बना रहता है। दिनो के बाद परिवार वाले कुछ न कुछ बनाकर लाते और प्रेमपूर्वक खाने का आग्रह करते है। वे यह नही सोचते कि अपथ्य होने से नुकसान होगा। परिणामत तपस्या के बाद तपस्वियो की स्थिति बिगड जाती है।

तपस्या की तरह यदि पारणे मे सयम से काम लिया जाय, और जननी जैसे धीरे-धीरे बच्चे को दूध बढाती है, वैसे बढाया जाय तो कुछ भी नही बिगडता। माता दूध पीने वाले बच्चे को कौर-कौर खिलाती तथा उसकी खुराक बढाती जाती है। वैसे ही तपस्विनी की खुराक भी बढनी चाहिये तो कोई खतरा नही होता। उल्टे पहले का रोग जैसे कफ का, पित्त का, वायु या अपच का है तो वह तप के द्वारा मिट जायेगा, दूर हो जायेगा। आवश्यकता है सयमपूर्वक चलने की।

मैं कह रहा था कि आनन्द भौतिक वस्तुओ के राग मे नही, त्याग मे है। यह बात जब घट मे उतर जायेगी, मन मे समा जायेगी, तब क्या कभी आपस मे किसी से झगडोगे ? फिर क्या बाप-बेटे मे कभी लडाई होगी ? पडोसी-पडोसी मे कभी कलह होगे ? यदि यह राग का विष दिल और दिमाग से उतर गया तो दुनियां भर के

सारे झगडे, कलह, अशान्ति और द्वेष न जाने कहा विलीन हो जायेगे ? जड मूल से कट जायेगे ?

### केंचुली की तरह माया त्यागें

साप केचुली को झाडी मे उलझाकर या दीवार मे टकराकर, जैसे-तैसे उतार फेंकता है। इससे उसको वेहद खुशी होती है। वह केचुली उतरने के वाद उसकी ओर मुडकर नही देखता। कहावत तो यहा तक है कि जिस घर मे साँप वार-बार आते हो, वहा केचुली या मोर पखी रखी हो तो साप नही आता। केचुली की तरह परिग्रह त्याग कर सम्पत्ति त्याग कर आप राजी हो जाग्रोगे ? साप की तरह त्यागी हुई वस्तु की ओर मुडकर नही देखोगे तो जाना जायेगा कि आपने राग त्याग के मर्म को समझा है।

मगर श्राप छोडते हैं—वस्तु का त्याग करते है श्रौर फिर मुड-मुडकर उसी की ओर देखते है। थोडा दान करके अधिक प्रशसा पाने को, दानवीर कहाने की, श्रभिलाषा मन मे सजोए रहते है। थोडे दिनो तक उपवास करने के बाद, आपकी रसना विविध रसो श्रौर हरी सब्जियो के लिए मचलने लगती है। इस तरह त्याग की बात हमने सही रूप मे समझी नही है। अत. राग मे ही राग बना रहता है।

महावीर ने आगे कहा कि—मै जब तक राग से राग करता रहा, तब तक जन्म-मरण की वेडी ढीली नही हुई और जन्म-मरण की वेडी-ढीली हुए बिना, श्रात्मा का कल्याण नही होता। तो सोलहवे भव मे एक राजकुल मे जन्म लिया। इस बीच जन्म-मरण का चक्कर चलता रहा। अभी तक तो ब्राह्मण कुलो मे जन्मे थे, श्रब राजकुल मे आए।

### धन कुटुम्ब आदि शरीर के मैल है

हमने एक छोटा सा उदाहरण दिया था कि शरीर पर दो दिन का भी मैल जम जाता है तो उसको दूर करने मे आपको नाराजी

नही होती है। और कदाचित् अधिक दिनो का हो तो उसे भी हटाने मे, आपको अप्रसन्नता नही होती। आप अपने शरीर पर के मैल को, बढे हुए बालो को और नाखूनो को, जितनी जल्दी अलग करेगे उसमे आपको खुशी होती है। आपका शरीर और मन हल्कापन का अनुभव करता है। जैसे ये मैल है वैसे धन, कुटुम्ब, परिवार का राग और मोह भी मैल है, भार है, तो ज्ञानी इनको हल्का करने मे खुशी मानते है, आनन्द मानते है। यह ज्ञान की बात है। ज्ञान-पूर्वक भोग सुख का त्याग करने मे खुशी होती है। जैसे साँप केचुली को दूर कर, प्रसन्न होता है और यह चिन्ता नही करता कि मेरी चमडी उतर गई। वैसे धन परिवार से, अन्यायोपार्जित वित्त से, मोटा होना यह सूजन का, वादी का मोटापा है। जैसे किसी के शरीर मे सूजन आने से, आँखे फूल गयी, हाथ-पैर फूल गए। मधुमक्खी या टाटिया के काटने से अग फूल गए तो उनको देखकर लोगो को शर्म और हँसी आती है। जैसे आपकी दृष्टि उस मुटापे को दूर करना पसद करती है, रखने मे आनन्द नही आता है। ऐसे ही हिंसा, झूठ, चोरी और अन्याय से उपार्जित धन के प्रति मन मे दु ख होना चाहिये, पछतावा होना चाहिये और उसके त्याग मे खुशी होनी चाहिये कि मेरा भार हल्का हो। यह ज्ञान के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है।

आप सब भी सत्सग मे, भगवान् की वाणी सुनने के लिए आए है तो राग रग से हटकर, सुबाहु की तरह मन मे एव क्रिया मे, त्याग की भावना को जगाए। यदि आप अपना परिमार्जन करेगे और ज्ञान की ज्योति जगाएगे तो आत्मा, इस लोक व परलोक मे आनन्द पा सकेगा।

●●

# ४

# समय कम और मंजिल ूर

## मोह बन्धन का महा प्रभाव

बन्धुओ ! ससार मे ऐसे बहुत से प्राणी हैं जो कि सोचकर और चाहकर भी, अपने आपको साधना मे, गतिशील नही कर पाते, अभीष्ट सिद्धि मे सफल नही हो पाते। इसका आपको हमको पूरा अनुभव है। जितनी बार हम यह सुनते हे, पढते और सोचते है कि विषयो से, कषायो से, बचकर अपने आपको ऊपर उठाना चाहिये। मगर चाहकर भी कषाय मे ऊपर उठने मे सफल नही होते हैं। इसका कारण क्या है ? कौनसा ऐसा बन्धन है, जो हमको आगे बढने नही देता है।

महापुरुषो ने इस पर बडा चिन्तन किया है, मनन किया है। दुनिया के लोग अर्थ का चिन्तन करते है, वासना पूर्ति का चिन्तन करते है परन्तु अपना दुर्लभ मानव जीवन, उलझनो से कैसे छूटे, अपायो और दोषो से कैसे बचे ? इसका चिन्तन करने वाले विरले ही व्यक्ति होते है। जो थोडे इस ओर बढते है, वे भी बन्धन को काट नही पाते। क्योकि इस दुर्भेद्य स्नेह बन्धन को काटने के लिए स्थूलभद्र और नमिराज की तरह सबल मनोबल चाहिये।

हाथी ससार का एक विशाल जानवर है। वह शरीर सम्पदा से प्राय- अन्य जीवो की अपेक्षा मोटा, तगडा और बलवान् होता है। हाथी को वश मे रखने के लिए सीधी सादी डोरियो से, रस्सो से काम नही चलता। उसको लोहे की मजबूत साकलो से बाधा जाता है। बन्धन भी आगे के पाव के अलग और पिछले पाव के अलग होते है। वह शेर की तरह कटघडे मे नही बाधा जाता। खुले मे या बडे घर मे रहता है, मगर आगे पीछे दोनो ओर से बधा रहता है, और वे बध भी साकलो के होते है। इन बन्धनो के कारण पर किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

"रेवापय किसलयानि च सल्लकीनां,
विंध्योपकंठ विपिन स्वकुलं च हित्वा।
किताम्यसिद्वीप ! गतोऽसि वश करिण्याः,
स्नेहोहि कारणमनर्थं परम्पराया"।

याने हेगजराज ! रेवा-नर्मदा का शीतल जल, सल्लकी के कोमल पत्ते, विध्याचल का विशाल वन और अपने कुल को छोडकर, तुम करिणी के वश मे पडकर क्या सोच रहे हो ? ससार की सारी अनर्थ परम्परा का कारण यह स्नेह ही तो है।

आपके न तो कोई आगे बन्धन है और न पीछे। साकल की तो बात ही क्या ? एक मामूली डोरी भी आपके तन मे लगी हुई नही है। परन्तु भीतर मे रहा हुआ सूक्ष्म भी स्नेह बन्धन, आपके मन को लोहे की साकल से भी अधिक मजबूती से जकड रक्खा है। धर्म स्थानक मे बैठे भी आपको वह बेवश खीचता है। प्राचीन आचार्यो ने कहा है—"न राग वंधो परमत्थि वधो।" राग या स्नेह बन्धन से बढकर कोई बन्धन नही है। स्नेह वध सब वन्धनो से सूक्ष्म होकर भी मजबूत है। हाथी बिना साकल के नही रहता पर मानव मन इतना दुर्वल है कि वह विना साकलो के ही ऐसा बधा हुआ है कि जोर लगाकर भी मुक्त नही हो पाता।

हाथी को दोनो समय, साय-प्रातः सवा मन के करीब रोट देते हुए भी, ऊपर से प्रेमपूर्वक पुचकारते हैं। टहलाने और नहलाने के लिए मानव जैसे तीव्र बुद्धि सेवक होते है। फिर भी वह भाग न जाय इसलिए मजवूत साकल मे वाधना पडता है। मगर आश्चर्य है कि आप विना साकलो के भी ऐसे वधे हुए हो कि दो दिन के लिए भी कही सत्संग मे चले जाते हो और कारण वश कभी तीसरा दिन वीतने लगे तो आपके मन का खिचाव होने लगता। माथे मे तनाव आ जाता और उत्सुकता तथा आकुलता वढने लग जाती है कि जल्द लौट चलू ? पीछे चिन्ता करते होगे। न मालूम भीतर मे यह कौनसा बन्धन है, जो इस तरह आपको तडफा रहा है, विकल वना रहा है। आप अधीर होकर कहने लग जाते हो कि महाराज ! वाल-वच्चे

घर वाले फिक्र कर रहे होगे। मै तो दो दिन का ही नाम कहकर आया था। शायद आप नौकरी करने वाले हो और छुट्टी लेकर निकले हो तो एक दिन की देर होने पर टेलीफोन और तार करके रह जाओगे। यह कोई असाधारण बन्धन नही है जो क्षण-क्षण पल-पल आपको अधीर बनावे और चिन्तित कर दे। परन्तु जो स्नेह का बन्धन है, वह सूक्ष्म होकर भी भीतर मन को बाधने वाला है। जिसमे कि ससार के लोक, बिना रस्सी डोरे और साकल के बधे हुए है। इसका बन्धन बाहर के पदार्थो के साथ तो नही दिखता, परन्तु यह अन्तर मे ऐसे बध का निर्माण करता है कि जिससे मानव निकलने की इच्छा रखकर भी नही निकल पाता।

दूसरी ओर हाथी साँकलो मे मजबूती से बधा होने पर भी कभी-कभी मस्ती की तरग मे, उन साँकलो को अदम्य आत्मबल से झटका देकर, तोडकर चला जाता है। ऐसा दृश्य आपने देखा न भी हो किन्तु सुना होगा कि कभी चिडियाघर मे, थियेटरो मे या राजकीय गजशाला मे कोई हाथी पागल हो गया और जजीरे तुडाकर भाग निकला। एक बार अखबार मे पढने मे आया कि कही से एक हाथी भाग निकला, तो उसको पकडने के लिए फौज के जवान गए और पकडने की चेष्टा की, मगर वह काबू मे नही आया। आखिर उसे गोली मारनी पडी।

मोटा आदमी, मजबूत आदमी जब तक सयाना होता है, होश मे होता है तो दुर्बल रहता है। परन्तु होश खोते ही उसके जोश बढ जाते है और वह पागल या प्रमत्त बन जाता है तथा साँकलो को भी तोड देता है। तो अपने को भी यदि साधना मे आगे बढना है तो इतना जोश लाना पडेगा, जोर का झटका देना पडेगा जिससे कि ये मोह की साँकले छिन्न-भिन्न हो जायें, टूट जाये, बिखर जाये।

**समय थोडा और मजिल दूर**

मैंने कभी एक छोटी सी मुहावरेदार बात सुनी जो जीवन को नसीहत या उद्बोधन देने वाली है। वह यह कि—"समय थोडा

और मजिल दूर"। बात बहुत छोटी है परन्तु है बडी सारगर्भित और साधना मे जीवन को आगे बढाने वाली तथा चिन्तन और मनन को बदलने वाली। देखिए ! आप और हम छोटी-मोटी क्रिया करते हैं और मन को सतोष हो जाता है। एक सामायिक करने वाला भाई समय पर नाम की सामायिक हो गई तो सतुष्ट हो गया—यह नही देखा कि दिन भर मे पाप कितने कमाये और हिसा कितनी कर डाली। क्या लाखो का नुकसान दो-चार टके की कमाई से हल्का हो जाएगा? यदि इसी प्रकार चीटी की चाल से चलता रहा तो हजार जन्म करके भी क्या मजिल तक पहुँच पायेगा।

जिन्दगी के दिन साठ सत्तर साल बीत गए और चन्द दिन शेष रहे है। तीन पच्चीसी बीत गयी, अब एक पच्चीसी भी पूरी नही है। जो समय है उसमे भी खाना-पीना, विश्राम एव नीद अलग है। जीवन चलाने के लिए, दो-चार चादर कुर्त्ता और धोती चाहिये। शरीर धारण करने को दोनो समय भोजन चाहिये। इन सब के लिए इतनी हाय-हाय क्यो? इस तरह कब तक चलाते रहोगे? दूर मजिल के यात्री ऐसी धीमी गति से चलते कब पहुँचेगे? यहा आए, जल्दी से वन्दना की, गुरु का नाम लिया और लौटकर चले गए। फिर दिन भर वही आरभ परिग्रह और चौरासी का चक्कर।

अरे! तुम्हारी क्या बात है? त्याग मार्ग मे लगे हुए बडे-बडे साधक भी थोडे समय मे यदि प्रमाद कर गए तो वे भी भटक जाते है। यहा यह सोचना है कि इस थोडे से समय मे मजिल को कैसे पार पाना है? कहा भी है—

"दिन ढल गया दूर है मजिल, पथ दुस्तर करना है पार।
साथी छूट गए सब पीछे, कौन भरोसा पाऊ पार।।

समय की कमी और मजिल की दूरी यदि आपके और हमारे दिल मे खटक जाये तो बेडा पार होते देर न लगे।

इतिहास साक्षी है कि एक बार स्व० रीवानरेश को एक शय्यापालक ने शिकार के लिए उठाया। उस समय उनके पूछने पर

सेवक ने कहा—"हुजूर ! अब दिन नही। इतना सुनते ही महाराज विरक्त हो राजपाट छोडकर तीर्थ को चले गये। हाँ, तो ऐसी चुभनी चाहिये। सत कहते है—"काल क्रीडति गच्छत्यायु —तदपि न मु च त्याशा वायु" मानव ! यह काल दिन रात, सुबह शाम कहते तेरे सग खेल रहा है। न मालूम कब यह तेरी बाजी जीत ले। जरा साव-धान हो। जिस प्रकार तू प्रमाद से चल रहा है, इस दशा मे चलता हुआ तू हजार युग भी बिता देगा, तब भी पता नही चलेगा कि मजिल कितनी दूर है।

**प्रमाद को हटाकर क्रिया कर**

ससार मे ऐसा कौनसा गति का जीव है जो क्रिया नही करता है। सब प्राणी क्रियाशील है। गीता भी कहती है—"नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्म कृत्।" याने कोई क्षणभर भी कर्म-रहित नही रहता। मन वाणी एव काया के जो साधन प्राणी को मिले हैं, उनकी प्रवृत्ति निरन्तर चलती रहती है। परन्तु इनकी प्रवृत्ति से कर्म काटने के बजाय, कर्म बाधे जा रहे है। प्रश्न होता है कि इससे बचा क्यो नही जाता ? तो इसका समाधान है कि अन्तर मे कर्म काटने का या मजिल पाने का सही दर्द नही जागा। जब तक प्रबल विरति-भाव जागृत नही हो, तब तक कुछ नही होगा। क्योकि दर्द के बिना क्रिया होकर भी प्रमाद और कषाय के कारण असावधानी से बध काटने के बदले, बध बढानेवाली होगी। जिससे आराधना की बजाए विराधना कर जाओगे।

सम्यक्त्व पाया, सम्यक्त्वधारी रहे, परन्तु सम्यक्त्व के विराधक बन गये। कभी शका का अतिचार, कभी काक्षा और विचिकित्स का अतिचार, प्रमाद से लग गया। जिसकी शुद्धि करनी चाहिये थी पर प्रमादवश समय पर शुद्धि करने का होश-हवास ही नही जगा प्रतिदिन बच्चे जैसी चाल चलते है। जैसे बच्चे को प्रतिदिन मा स्नान कराके, कपडे बदलकर तैयार करती है। परन्तु बच्चा पुन धूल मे खेलता और मुट्ठी भर-भरकर अपने ऊपर डालता है, और साफ कि

कपडे को गन्दा करता एव जेब मे ककर भरता है। आप भी तो उस बच्चे की तरह राग और द्वेष की धूल दिन भर तन पर डालते रहते और पैसे, नोट, रुपये आदि से जेब भरते तथा चाह बनाये रखते हो कि इससे भी बढकर कोई मूल्यवान् वस्तु और मिले तो उसे भी इनके साथ धरलूँ।

बच्चे की तरह आपकी भी स्थिति है। जैसे बच्चे को स्नान कराकर और नया वस्त्र पहनाकर घर से निकाला, पर उसने अपनी नादानी से, गफलत से, अपने सारे शरीर को मैला कर लिया। आपकी भी दशा ठीक वैसी ही है। सन्तो ने ज्ञान-ध्यान से स्नान कराया और कहा कि सत्सग के वातावरण मे रहकर विपय कपायो से बचे रहना। मगर होता क्या है ? आप बच्चे की तरह फिर उन्ही विपय कषायो मे उलझ जाते है। गुरु ने सामायिक-सवर मे बैठने का सम्बल दिया और कहा कि इसे हिफाजत से रखना। परन्तु आप उधर ध्यान नही देकर अभी तक बच्चे की क्रिया कर रहे है।

यह ठीक है कि व्यवहार मे आप बच्चे की अवस्था से गुजर चुके है और बच्चो जैसा धूल भरना, क्रिया करना, आप पसन्द नही करोगे ? मगर पाप की धूल भरना कैसे पसन्द कर रहे ह ? इसका भी कभी ख्याल आता है कि ज्ञानियो ने जिसे धूल कहा है, प्रमाद मे पडकर उसको कैसे भर रहे हो ? इस भ्रान्ति और भूल के कारणो को छोडिये। भ० महावीर ने कहा कि मानव ! अपने इस उच्चतम जीवन को पाकर तू यह समझ और ध्यान कर कि जिन्दगी का समय थोडा और मजिल दूर है। तो क्या यह थोडा समय भी, विपय कपाय मे ही पूरा कर देगा और भोगेच्छा को पूरी करने, आत्म-साधना को यह कहकर टालता जायेगा कि आज नही कल करूँगा परसो करूँगा। अभी तो जग खालूँ, पीलूँ, जीवन का आनन्द उठा लूँ ? पीछे बारह व्रतधारी, पडिमा व्रतधारी बन जाऊँगा। ऐसा शेख चिल्लीवाला समूवा कि मैं राजा बन जाऊँगा। शेख चिल्ली जैसे सोचना बहुत है। वह अपनी कल्पना की उडान मे राजाधिराज भी

बन जाता है, हुकूमत भी कर लेता है, शान और महिमा भी बढ़ लेता है। परन्तु शेख चिल्ली की यह सारी माया कल्पना की मात्र है। जो राज मिला लिया, सेना मिला ली और पडौसी देश पर हमलाकर उसे जीत भी लिया। यह सारा खेल कल्पना मे होता है किन्तु आँख खुलने पर पता चलता है कि घर से एक कदम भी बाहर नही गया। दरवाजे और दीवार के बाहर पाव भी नही रखा। यह सारा मसूबा कल्पना मे ही बाँधा और कल्पना का महल क्षणभर मे बिखर गया।

यदि इसी तरह आप भी कल्पना के जगत् मे घूमते रहे और कल्पना को साधना का साकार रूप नही दिया तो नतीजा क्या निकलेगा ? कभी-कभी साधना को साकार रूप देनेवाले, अमली जामा पहनानेवाले भी, गफलत खा जाते है, प्रमाद मे पड जाते है तो जिसने कुछ भी नही किया उसकी बात क्या ? थोडा भी करो तो जाग्रतभाव से करो, प्रमाद छोड करो, होश मे आकर करो, किन्तु तन्द्रा या सुषुप्ति मे नही करो। यदि मन मे जागृति की ज्योति जगाकर करोगे और सतर्कतापूर्वक सोचोगे कि हमारी जिन्दगी कितनी क्षणिक और भगुर है ? अत पल-पल का उपयोग करना चाहिये। इस तरह भान मे, होश मे जो कुछ करोगे, उससे बन्धन कटेंगे, भव प्रपच दूर होगे। बेभान बनकर, प्रमत्त दशा मे सतत क्रियाशील बना रहने पर भी आपका मतलब हल नही होगा, सफलता नही मिलेगी। सावधानी से की गई क्रिया ही फलवती होती है और नतीजा अच्छा होता है।

### सम्यक्त्व के बिना भव भ्रमण

भ० महावीर ने भी सम्यक्त्व के अभाव मे अनन्त-अनन्त जन्म गुजार दिये, परन्तु ऊपर नही आये। मनुष्य और देव का भव पाते हुए भी उसमे की जानेवाली क्रिया सम्यक्त्व और विवेक रहित थी। अत जन्म-मरण नही घटा पाये। तीर्थंकर होनेवाले प्राणी भी कर्मवश जन्म-मरण के चक्कर मे भटकते है, यह ससार का

नियम है। इस तरह पन्द्रह भव बीत गये और जब नयसार के भव मे प्रथम सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई तब से जन्म-मरण की सीमा मे आये।

भ० महावीर की आत्मा सोलहवे भव मे ऊपर आयी। अब राजकुल मे जन्म हुआ। कुल अच्छा मिला और साथ ही नव बोल भी मिल गये। उत्तम कुल, इन्द्रियाँ पूर्ण और आयु भी दीर्घ मिली। जैसे कि कहा है--

विश्वभूति युवराज पुत्र, हो दीक्षित होते है।
मुनि संभूति की शिक्षा से, वे जग सुख तजते हैं।

महावीर के जीव ने राजगृही मे युवराज के शक्तिशाली पुत्र रूप से जन्म लिया। मरीचि का जीव कुल बल आदि की अच्छाई से क्रमश बढते-बढते तरुण हुआ और सस्कार की प्रबलता से एक दिन सत्सग का भी अवसर मिलाया। क्योकि जहाँ घर का, माता-पिता एव परिजन का वातावरण सुसस्कृत होता और धर्म के प्रति प्रेम होता, वहाँ सत्सग का असर जीवन मे उतरना कठिन नही होता।

युवराज के यहाँ सुखोपभोग्य सामग्रियो तथा ऋद्धियो की ढेर थी, फिर भी सत्सग के कारण उनको विरक्ति हो गई। ज्ञात हुआ कि दुनियाँ की सारी वस्तुएँ नाशवान् है। एक दिन ये हमे छोडकर चली जायेगी तो मैं ज्ञानपूर्वक इन्हे छोड़ दूँ तो कैसा अच्छा रहेगा। इसी मे भला और कल्याण है। कोई भी व्यक्ति दूसरे की वस्तु का उपयोग करते हुए, उसके माँगने की इच्छा समझ, माँगने से पहले ही वह वस्तु उसे लौटा दे, इसमे उसकी इज्जत, मान, प्रतिष्ठा तथा सूझ-बूझ और होशियारी है। वस्तुवाला झुँझलाकर, आवेश मे आकर, जबरन उससे वह वस्तु ले ले तो इसमे कुछ भी भलमनसियत या विवेक नही कहा जाता। बल्कि इससे छोडनेवाले की अधमता और मूर्खता ही प्रगट् होती है। समझदार व्यक्ति को बिना कहे स्वय परायी वस्तु पर को सभला देनी चाहिये।

इस तरह परायी वस्तु पर को सभलाने की कदाचित् आपने बुद्धिमानी दिखाई होगी, विवेक बताया होगा, सम्भव है। मगर जिस हवेली मे बैठे है, जब उसमे से सदा-सदा के लिए जाने का समय आता है, यमदूत आकर कहता है कि इसे छोडो और चलो तो जाने का मन नही होता। डाक्टर और वैद्य को बुलाने की बात कहते हो और आक्सीजन या रसायन लेने की आतुरता दिखाने लगते हो। उस समय शरीर रूप हवेली छोडकर कही जाने का मन नही करता। बच्चे-बच्ची की शादी, बगले बनाना, बगीचे लगाना और भौतिक सम्पदा से भवन को भरना आदि कितनी ही कल्पित इच्छाये, जाने के मार्ग मे रुकावट डालती है। मगर विश्वभूति ने सोचा कि ये सारी सासारिक वस्तुएँ नाशवान् है, एक दिन छूटनेवाली है, तो क्यो न मैं इन्हे स्वय छोड दूँ और ऐसा सोचकर वह सत्सग मे दीक्षित हो गया।

दीक्षित होकर उसने सारी सुख सुविधाओ को ठोकर मार दी। आराम और भोग को तिलाजलि दे दी। उसने कहा कि दो काम दुनिया मे साथ नही होगे, एक घर गृहस्थी की सभाल और दूसरा धर्म की साधना। बाल-बच्चे और स्त्री को भी अच्छी तरह राजी रक्खे और धर्म गुरु की आज्ञा का भी पूर्ण पालन कर ले। यदि महीने मे छ छ पौषध कर लेगे तो घर के सब नाराज हो जायेगे। आर्तध्यान, रौद्रध्यान करना पडेगा। इससे तो अच्छा है कि थोडा-थोडा करके दोनो ओर लगे रहे। मगर यह दो नाव पर पाव रखने जैसी बात अच्छी नही होती। ताज्जुब है कि जीवन की क्षण भगुरता समझते हुए भी, आपसे घर छोडा नही जाता।

दूसरी ओर नगर के बाहर अन्य समाज के लोगो को देखते है कि—कई लोग बावा का रूप धारण कर अलग-अलग डेरो मे बाल-बच्चो को छोड बैठे है। कोई जटाजूट बढाये, भस्म से समग्र अँग पुता हुआ, कोई महादेव की चौकी पर है तो कोई राम और हनुमान् की चौकी पर बैठा है। वैष्णव मत मे पिछली अवस्था मे, घर छोडने

वाले पचासो मिल जायेगे। उन्हे पूर्ण त्याग का मार्ग यद्यपि किसी ने नही समझाया, परन्तु घर और बाल-बच्चे झट छोड दिए और मन चाही जगह मे बैठ रामराम रटने लगे। साधु बनकर गाँजा, भँग पीने लग गए। यह बात गलत है किन्तु उनका घर छोडना, बाल-बच्चो से अलग होना और बन्धु बाधवो से मुख मोडकर, एकान्त मे भजन करना गलत नही है।

परन्तु आप मे उनकी तरह ही सही, घर छोडने की ताकत है क्या? आप तो सोचेगे कि वे तो गरीब घर के है, मेरी आलीशान कोठिया है, बाग-बगीचे है, बैंक मे सम्पत्ति जमा है तथा विविध उद्योग-धन्धे है। मै इस अपार सम्पदा को छोड कैसे दूँ? किन्तु आपको मालूम नही कि उन वैष्णव बाबाओ मे भी कई उच्च सम्पदाओ के स्वामी, पदाधिकारी और समाजसेवी व्यक्ति होते है, जो भावना बदलते ही सब त्यागकर हिमालय या हरिद्वार मे जाकर साधना मे तल्लीन हो जाते।

मुझे कभी किसी ने सुनाया कि एक पाली का सेठ पुष्कर की बगीची मे बाबा बने बैठे हैं। तो मैं ऐसे रागियो के नमूने को देखकर और सुनकर सोचता हूँ कि वहा तो राग का मार्ग है और यहा वीतराग का मार्ग है। वे तो रामकृष्ण और गौ सेवा आदि के राग से निकल जाते। वैसे चतुर्विध सघ के धर्मानुराग से, आपको भी सीमित गृह त्याग के लिए तो आगे आना चाहिये। परन्तु आश्चर्य है कि लोग बदलते हुए समय मे राजनीति के डडे खाकर भी नही समझते। लोग इतने परिवार के साथ रहने के आदी हो गए हैं कि वे बाल-बच्चो के हाथो जाने मे ही अपनी पुण्याई मानते है। इस तरह से कीड़े-मकोडे की तरह जन्मे और विषय-कषाय के बीच मे, सड सड कर मर गए तो इसमे मजेदारी है या देवगुरु के स्मरण करते मरने मे मजेदारी या बुद्धिमानी है?

**विश्वभूति का चिन्तन**

विश्वभूति यह समझकर कि जिन्दगी के अन्तिम क्षण भी यदि भगवान् के चरणो मे और उनकी आज्ञा पालने मे बीते तो मेरा

मानव जन्म पाना सफल हो जायेगा। तिजोरी और बाल-बच्चो के बीच मे बैठे-सोए तो सभी मरते है। उनमे उनका आर्तध्यान बना रहता है, अत मुझे स्नेह का तन्तु काटना है, यह सोचकर वह साधु हो गया। फिर उसने सोचा कि साधु बना हूँ तो मात्र पेट भरने के लिए नही बना हूँ। पेट तो घर मे भी भली-भाति भरा जा सकता था। साधु बनने का मतलब है, कुछ साधना करू ? साधु बनकर भी केवल खाया, पिया और तानकर सो गया तथा जगा तो प्रमाद मे विकथा मे समय बिताया तो मेरे साधु बनने का वास्तव मे कोई लाभ नही होगा।

साधक के लिए कहा है कि—

**"साधु सो तो साधे काया, कोडी एक न राखे माया।**
**लेना एक न देना दो, ऐसा पथ साधु का होय ।।**

साधना करूगा तो ही मैं साधु कहलाऊगा और नही तो स्वादु कहलाऊगा। याने जो दस घरो से आने वाली विविध वस्तुओ का आस्वादन करने मे ही आनन्द मानता है, वह स्वादु है। वह गोचरी मे दस तरह की चीजो को लाकर अपना मुह मीठा करता है और साधना नही करता। भले ! वह साधु वेष मे हो, फिर भी स्वादु है, साधु नही।

विश्वभूति की जिन्दगी एक हजार वर्ष की थी। आज तो पच्चीस पचास की जिन्दगी मे भी यह पता नही कि इस रूप मे कब तक रहेगे ? फिर भी पैर फैलाकर चद्दर तानकर कुभकर्णी मे सोए हुए है। उस हजार वर्ष वाले राजपुत्र ने तो दीक्षित होकर सोचा कि ज्ञान-ध्यान के साथ कुछ तप भी करना है। ऐसा सोचकर उसने जीवन मे पहली बार मास-मास खमण की तपस्या शुरू कर दी। तपस्या मे भी वह ज्ञान-ध्यान करता रहा। आराम नही, सोना नही। क्योकि वह जान रहा था कि सोएगा वही जो निश्चिन्त हो ? जिसको यह निश्चय हो कि मैं नही मरूगा।

सोचिए ! आप चिन्ताशील है या निश्चिन्त ? आपको और हमको भी यदि अपनी जिन्दगी पर भरोसा नही हो और कर्मबन्धन काटने की चिन्ता हो तो प्रमाद मे सोना नही है। युवराज का पुत्र विश्वभूति मुनि ज्ञानध्यान और तप की साधना कैसे करता है और कैसे उसे विघ्न आकर घेरते है एव कैसे वह विघ्नो पर विजय प्राप्त कर अपनी साधना पूरी करता है, वह आगे ज्ञात होगा।

मैं कह गया हूँ कि समय थोडा और मजिल दूर है। तो क्या मजिल पर पहुचना है या बीच म ही अटकना है ? कही ऐसा नही हो कि इधर से भी हट गए और उधर से भी। बीच मे चमगीदड की तरह लटकते रहे। श्रावक व्रत मे हो या साधु व्रत मे, परन्तु सावधानी पूर्वक किसी मे साधना करोगे तो आत्मा को इस लोक और परलोक मे आनन्द और कल्याण की प्राप्ति हो सकेगी।

००

# ५

# आचार का महत्त्व

**धर्मसभा और उसके श्रोता**

बन्धुओ ! विपाक सूत्र का दूसरा श्रुत स्कन्ध आपके सामने चल रहा है। इसमे दस अध्याय है। जिनमे प्रथम अध्याय सुबाहु-कुमार का है। ऐसे अन्य अध्यायो मे भी तप, त्याग और साधना का विचार किया गया है। वर्णित सभी राजकुमार रूप-गुण, राज्य-ऋद्धि, प्रभाव-प्रताप एव भौतिक सुखो से भरपूर थे। चाह की राह पर चलने मे, मनोनुकूल सुख-सामग्री पाने मे, उन्हे कुछ भी कमी नही थी। परिवार की अनुकूलता और साधन विकलता के अभाव मे, आकाक्षा पूरी करने मे, किसी प्रकार की दिक्कत और देर नही थी। राजकुमार तो थे ही, साथ ही अभीष्ट भोग-सामग्री भी मिली हुई थी। परन्तु सुयोग से उन्हे वीतराग प्रभु का सत् समागम मिला। उन्होने हृदय से धर्म का मर्म समझा और राग का बन्धन काट दिया।

बात जितनी जल्दी मे हम कह रहे हैं, उतनी ही जल्दी मे वे, सब कुछ छोडकर साधनापथ पर चढ गये। विषय यह बडा आश्चर्य-कारी और अद्भुत है। क्योकि बहुतोवार ऐसा भी देखा जाता है कि धर्म या किसी अच्छी बात के सुनने के बाद भी, कई बाधाये आ जाती है, जो सोचते हुए भी जीवन-निर्माण मे मनुष्य को आगे बढने नही देती। और देखते-देखते जिन्दगी बीत जाती है एव मन का सब मन मे ही रह जाता है। परन्तु जो सकल्पवली मनुष्य होता है, उसका जीवन इससे अलग प्रकार का, निराला होता है। वह केवल कानो से ही नही सुनता, उसके सुनने का तरीका भी कुछ और ही होता है। उसका व्यक्तित्व उसे सर्व साधारण से अलग-थलग, महिमा-मण्डित बनाये रखता है।

आज आपको इसी बात पर विचार करना है कि धर्म-सभा के श्रोताओ के सुनने का तरीका क्या है? क्या सभी श्रोताओ के सुनने की पद्धति एक जैसी है? नही। राज्य सभा, समाज सभा, विधान सभा और धारा सभा के श्रोता और धर्म सभा के श्रोताओ की भावना और श्रवण पद्धति की दृष्टि मे बहुत कुछ अन्तर है, भेद और विलगाव है। राज्य सभा और समाज सभा का जब प्रसग आता है तो उस समय व्यक्ति, उन सभाओ मे जो बात कही जाती है, प्रस्ताव रखा जाता है, उन्हे बडी सावधानी से सुनता है। क्योकि उसमे उसका स्वार्थ रहता है। भौतिक परिवार का, समाज का, अपने मामले-मुकदमे मे, न्यायाधीश या वकील के भाषण का जहा प्रश्न रहता है, वहा लोग दत्तचित्त होकर, मनोयोगपूर्वक, सब कुछ सुनता है। कारण, जरा-सा चूक गये—गफलत मे रह गये, कही हुई बातो का अवधान भली-भाति नही कर पाये तो हित से वचित होने का डर बना रहता है। अत पूर्ण सावधानी से वह उसको सुनता है।

हर सभा के अधिकारी के कहने का ढग भी निराला होता है। वह खुले शब्दो मे कहता है, आदेश की भाषा मे कहता है। उन्हे लम्बा चौडा प्रवचन कर, विस्तारपूर्वक समझाने की आवश्यकता नही रहती। क्योकि उनके पास बल है। वे समाज या राज्याधिकारी यह मानते है कि हमारी विज्ञप्ति, निर्णय या फैसला कोई नही मानेगा तो उसे अधिकार के दण्ड से दण्डित किया जायेगा। इसलिए समाज की सभा, राजकीय सभा या ऐसी ही किसी और दूसरी सभा के अधिकारी को, व्यवस्थापक को, अपनी बात, कथा, दृष्टान्त और युक्तियो से समझाने की आवश्यकता नही होती है। वह अपनी बात को, मुद्दे को साफ करेगा और फिर हुक्म—आदेश का रूप देगा। वहा हर आदमी को अपने स्वार्थ मे सम्बन्ध है। धारा सभा और विधान सभा मे नही पहुँचा और कभी कानून पास हो गया तो उसे लोग पत्र-पत्रिकाओ मे पढने की कोशिश करेंगे। क्योकि उनमे स्वार्थ एव भय का सम्बन्ध होने से, सबको उसकी आवश्यकता दिखती है।

धर्म सभा की बात उतनी आवश्यक नही मानी जाती। इसलिए धर्म सभा मे श्रोता का मनोभाव वैसा नही रहता, दृष्टि वैसी नही रहती। धर्म श्रवण का व्यावहारिक जीवन मे, उपयोग दिखाई नही देता। अत श्रोता धर्मश्रवरण के लिए सम्यक् प्रयत्न ही नही करता। कारण, धर्माश्रवण का लाभ इतना ही समझा जाता है कि नगर मे सत विराजमान है, व्याख्यान नही सुनेगे तो नगर की शोभा नही दिखेगी। व्याख्यान सुनने से गाव की शोभा, समाज की शोभा, सतो की खुशी और पुण्यलाभ होगा। फिर शास्त्र-वचन मगलकारी भी है, अत सुनना चाहिये। सुनकर समझा या नही समझा, धारण किया या नही, इसकी कोई चिन्ता नही। केवल ठीक समझकर, मगलकारी समझकर सुनता है।

यह समझकर कि मुझको इसमे से जीवनोपयोगी भावो को पकडकर धर्माचार्य से सम्यग्दर्शन पाना है। साधना के मार्ग मे आयी बाधाओ से बचने का उपाय जानना है। इस तरह साधना के लिए ध्यानपूर्वक सुनने को, उपस्थित श्रोताओ मे अधिकाश का ध्यान नही है। सौ मे दस-बीस श्रोता ऐसे मिलेगे जो साधना मे बल देनेवाली, सहायता करनेवाली बातो पर अपेक्षित ध्यान रखते और धर्म के मर्म को जानने की कोशिश करते हो।

**भाषणो की भिन्न पद्धति और प्रभाव**

धर्म सभा मे जितने श्रोता होते है, इतने किसी कालेज के अध्यापक के पास हो तो वे किस तरह सुनेगे। कालेज के भाषण की पद्धति से आप बुजुर्ग अनजान होगे, मगर जिन नौजवानो ने नजदीक से उसे देखा है, वे जानते है कि वहा एक प्रोफेसर बोलता है और सब उसे सुनते है। स्कूल की पढाई और होती है। वहाँ श्यामपट्ट पर पाठ लिखा जाता है या बोर्ड पर विषय की सूचना की जाती है। परन्तु कालेज की पढाई मे अन्तर होता है। कालेज के शिक्षक प्रोफेसर कहलाते हैं और वे अपने विषय पर खडे होकर भाषण—वक्तृता देते हैं। छात्र पुस्तके नही रखकर नोट-बुक, पेंसिल और कापी रखते

हैं। प्रोफेसर बोलता जाता है, परन्तु क्या मजाल कि वर्ग के पचासो या सैकडो लडको मे से कोई उसका भाषण नही सुने! वह विज्ञान का प्रवचन कर रहा है, अर्थशास्त्र की बात कर रहा है, भूगोल, इतिहास और दर्शन की बात कर रहा है, उसके सुननेवाले लडके, अन्यत्र कही ख्याल न रख, उसके भाषण के सार मुद्दो का नोट करते जायेगे। बस, इतने भर से, पढाई से प्रोफेसर बरी हो गया। उसे किसी लडके से यह पूछने की जरूरत नही कि कितना समझा और कितना नही ?

साल भर मे जितने दिन प्रोफेसर को कालेज मे जाना है, लेक्चर (प्रवचन) देना है और लडको को जितने दिनो की हाजिरी देनी है, उतने दिनो तक वे जायेगे। और परीक्षा के समय मे सफलता और असफलता के सूचक प्रमाण-पत्र प्राप्त हो जायेगे। यदि वे लडके आप लोगो की तरह ऊँघते हुए भाषण सुने और लेक्चरार (प्रोफेसर) साधु की तरह बोलता रहे तो नतीजा क्या निकलेगा ? परीक्षा मे बैठकर उन लड़को को कितने अक प्राप्त हो सकेगे ? पुस्तको का शिक्षण नही पाने पर भी वे पाठ्य पुस्तको की मदद से, सहायको से कुछ मदद मिला लेगे। परन्तु जो व्यावहारिक है, प्रायोगिक है उन्हे यदि ख्याल से नही सुना तो असफलता ही हाथ लगेगी।

**महत्व धर्म सभा का या दूसरी सभा का**

मैं समझना चाहूगा कि उस शिक्षण सभा और प्रोफेसर एव विद्यार्थियो से इस धर्म सभा का महत्व हल्का है या ऊँचा है ? वेतन-भोगी उस कालेज के प्रोफेसर से एक श्रमण त्यागी-साधु-साध्वी का बोलना, प्रवचन करना कम मूल्यवान् है या अधिक मूल्यवान् ? बोलने के लिए आप बोल गये कि श्रमण का प्रवचन मूल्यवान् है। किन्तु इसकी अल्प-मूल्यता और महर्घता मात्र आपके वचनो मे नही, व्यवहार से प्रकट होनी चाहिये।

प्रतिदिन घटे भर मुनि लोग आपके बीच बोले तो उनकी दो बाते आपके दिमाग या डायरी में नोट मिलनी चाहिये। ढाई महीने

धर्म सभा की बात उतनी आवश्यक नही मानी जाती। इस-लिए धर्म सभा मे श्रोता का मनोभाव वैसा नही रहता, दृष्टि वैसी नही रहती। धर्म श्रवण का व्यावहारिक जीवन मे, उपयोग दिखाई नही देता। अत श्रोता धर्मश्रवण के लिए सम्यक् प्रयत्न ही नही करता। कारण, धर्मश्रवण का लाभ इतना ही समझा जाता है कि नगर मे सत विराजमान है, व्याख्यान नही सुनेंगे तो नगर की शोभा नही दिखेगी। व्याख्यान सुनने से गाव की शोभा, समाज की शोभा, सतो को खुशी और पुण्यलाभ होगा। फिर शास्त्र-वचन मगलकारी भी है, अत सुनना चाहिये। सुनकर समझा या नही समझा, धारण किया या नही, इसकी कोई चिन्ता नही। केवल ठीक समझकर, मगलकारी समझकर सुनता है।

यह समझकर कि मुझको इसमे से जीवनोपयोगी भावो को पकडकर धर्माचार्य से सम्यग्दर्शन पाना है। साधना के मार्ग मे आयी बाधाओ से बचने का उपाय जानना है। इस तरह साधना के लिए ध्यानपूर्वक सुनने को, उपस्थित श्रोताओ मे अधिकाश का ध्यान नही है। सौ मे दस-बीस श्रोता ऐसे मिलेगे जो साधना मे बल देनेवालो, सहायता करनेवाली बातो पर अपेक्षित ध्यान रखते और धर्म के मर्म को जानने की कोशिश करते हो।

**भाषणो की भिन्न पद्धति और प्रभाव**

धर्म सभा मे जितने श्रोता होते है, इतने किसी कालेज के अध्यापक के पास हो तो वे किस तरह सुनेंगे। कालेज के भाषण की पद्धति से आप बुजुर्ग अनजान होगे, मगर जिन नौजवानो ने नजदीक से उसे देखा है, वे जानते है कि वहा एक प्रोफेसर बोलता है और सब उसे सुनते है। स्कूल की पढाई और होती है। वहाँ श्यामपट्ट पर पाठ लिखा जाता है या बोर्ड पर विषय की सूचना की जाती है। परन्तु कालेज की पढाई मे अन्तर होता है। कालेज के शिक्षक प्रोफ-सर कहलाते है और वे अपने विषय पर खडे होकर भाषण—वक्तृता देते है। छात्र पुस्तकें नही रखकर नोट-बुक, पेन्सिल और कापी रखते

ऊँची से ऊँची बात क्यो न कहे, परन्तु उनका कथन अरण्यरोदन के समान हो जाता है। यह ठीक है कि एकान्त शान्त जन-रहित जगल मे, रोने चिल्लाने पर, सान्त्वना देनेवाला, ग्रासू पोछनेवाला, दु ख-दर्द सुननेवाला कौन मिले ? मगर सेकडो हजारो के बीच मे बोलनेवाले के दु ख-दर्द को दूर करने की ग्रौर सहानुभूति के रूप से सहयोग की बात कोई नही करे, चुपचाप चित्रवत् बैठा रहे तो उस नगर को नगर कहना या जगल कहना ! किसी राजस्थानी कवि ने ठीक ही कहा है—

> **"हित, अहित जिण गॉव, सुणे न कोई साँभले।**
> **उण नगरी बीच नॉव, रोही भलेरी राजिया ।।"**

मैं चिन्तन करता हूँ तो मालूम होता है कि इतने बडे-बडे राजकुमारो ने प्रवचन सुना और एक बार के सुनने से ही, उनके राजस जीवन मे, सहसा सात्विक परिवर्तन आ गया। सुख छोड-कर उन्होने दु ख को सहर्ष गले लगाया। आज का चिन्तन इस विचार के लिए प्रेरणा करता है कि उनके सुनने मे और इनके सुनने मे कोई अन्तर है ? क्या बात है ? मालूम होता है कि उस समय वे श्रोता अपना व्यावहारिक दायित्व मानते थे। इसलिए आज की तरह उन श्रमण—निर्ग्रन्थ और महापुरुषो को, समाज की बाहरी व्यवस्था सुधारने का कोई सकेत ही नही करना पडता। व्यवहार से समाज की आवश्यकता और उसकी पूर्ति के साधनो का वे श्रावक अपने आप ही ख्याल कर लेते। इतने कुशल थे वे लोग।

**इशारा कैसे समझें !**

एक प्राचीन कवि ने कहा कि योग्य शिष्य एव सन्तान को चाहिये कि गुरु तथा पिता के सकेत से उनके मनोगत भावना को समझे और कार्य करे। हर बात सतो की मर्यादा मे कहने की नही होती। पूज्य माधवमुनि के समय, एक बार किसी श्रावक ने कहा—महाराज ! आप लोग खुलकर स्पष्ट रूप से कोई बात नही कहते कि

ऐसा करो, तुमको यह काम करना होगा। बिना साफ कहे हम कैसे समझें। हम तो इशारे पर समझ नही पाते। तो उन्होने कहा—भाई! बात ठीक है। पर जरा विचार करो। किसी पिता ने अपने लडके को तरुणाई की ओर बढते देखा। इन्द्रियो मे चचलता और आँखो मे शरारत देखी तो सोचा कि इसकी अब शादी कर दूँ। ऐसा सोचकर पिता ने, अच्छे घराने की लडकी से उसकी शादी कर दी और बहू भी घर ले आया। उनके रहने के लिए कमरा भी बना दिया। सोने बिछाने की सारी व्यवस्था कर दी।

शाम को जब लडका पिता के पास आकर बैठा और बातचीत करने लगा। बात करते-करते रात होने को आयी। कुछ अधिक रात बीतने पर, पिता ने प्रेम से कहा—बेटा! समय सोने का आ गया है। अब तुम अपने कमरे मे चले जाओ। बाते तो कल भी होगी। अभी तो जाओ और सो जाओ। यह सुनकर लडका बोला—कि मैं कहाँ जाऊँ और क्या करूँ? पिता ने कहा—तुम्हारा वह कमरा है, बैठक है, वहाँ सारी व्यवस्था है और तुम वहाँ जाकर सो जाओ। अब तुम शादीशुदा—विवाहित हो चुके हो। मगर इतना कहने पर भी लडका समझ नही पाया और वह आप सबकी तरह ही पूछने लगा कि मैं वहाँ क्या करूँ? पिता को हँसी भी आयी और साथ ही झिझक भी। उसने जोर से कहा—नादान! अगर मै तेरी ऐसी नादानी को पहले समझता तो तेरी शादी ही नही करता।

सोचिए—इससे बढकर पिता ऐसे प्रसग मे, अधिक स्पष्ट और क्या कहता? मर्यादा के बाहर की बात पिता के मुँह से निकलने मे शोभा नही रहती। हाँ, तो साधु महात्माओ के श्रोता को राजसभा के, कालेज के छात्र श्रोताओ से अधिक विवेकशील होना चाहिये। पुराने श्रावक कही साधु-साध्वियो के समाचार करने होते तो सकेत मे समझ लेते और आगे होकर पूछ लेते। साधु को कहना नही पडता कि जरा चिट्ठी का उत्तर लिख देना। साधु-साध्वी के असाता-अस्वस्थता की स्थिति मे योग्य डाक्टर वैद्य को बिना कहे ही दिखाने की व्यवस्था

करते। धार्मिक शिक्षण की प्रेरणा पाते ही, शिक्षक आदि के लिए बिना कहे ही कार्य करते। औषध—भैपज्य मे यह ध्यान रखते कि साधु को यथा सभव दोष नही लगे। श्रावक समाज के विवेक से ही साधु-साध्वी का सयम निर्मल रह सकता है। फिर विवेकी श्रावको को धारणा शक्तिवाले और इशारे को पकडकर चलनेवाले होने चाहिये।

### आस्रव त्याग बिना विशेष लाभ नहीं

आप अपने यहाँ के होनेवाले मासखमण आदि बहुत सारी छोटी-मोटी तपस्याओ और त्याग व्रत—नियम देखकर, यह समझते हो कि हमारी पेढी मे आय बहुत है तो यह बात ठीक नही। हमको पेढी की आमद को मूल से पकडना है। यहाँ व्रत भी दो प्रकार के होते है, एक साधु के और दूसरे श्रावक के। एक मूलगुण पच्चक्खाण और दूसरा उत्तरगुण पच्चक्खाण। अहिंसादि पाचो ये हमारे मूलगुण हैं जो कि साधु के पाच महाव्रत कहे जाते और श्रावक के पाच अणुव्रत। मूलगुण का पालन हर साधु के लिए अनिवार्य है।

यदि कोई साधु एकान्तर करता है, जिन्दगी भर एक दिन खाता है और एक दिन नही खाता। भिक्षा के लिए गृहस्थ के यहाँ गया हुआ दूसरा साधु, बचा-खुचा उसके घर का, शेष भोजन लाकर खाता है और अच्छे पदार्थो की भिक्षा ग्रहण नही करता है। भ० महावीर ने कहा—यह साधु का उत्तरगुण है। ऐसे पच्चक्खाणो मे नवकारसी से लेकर अभिग्रह तक उत्तरगुण के पच्चक्खाण हैं। भोग और उपभोग की मर्यादा के ये सारे के सारे उत्तरगुण के दायरे मे आते है। साधुओ के नित्य अभिग्रह आदि के पच्चक्खाण उत्तरगुण हैं, मूलगुण तो उपरोक्त अहिंसादि हैं। यदि साधु नवकारसी का प्रत्याख्यान नही भी करे तो वह साधुपन मे स्थित रह सकता है। परन्तु पच-महाव्रतो मे एक व्रत की भी छूट चाहे तो वह महाव्रती साधु नही रह सकता। नवकारसी या अन्नादि त्याग का महत्व मूलगुण की स्थिति मे है। केवल खाने-पीने का त्यागकर आस्रव-हिंसादि खुला रक्खे तो

कर्मबन्ध अधिक होगा और निर्जरा का लाभ कम। तप से असाता वेदनीय का कर्म कटता है, पर सही लाभ सवर करनी स्वीकार करने पर ही होता है।

आज मूलगुण याने अहिंसादि सवर साधन का अभ्यास कम हो गया है। यदि पूछा जाय कि आप श्रावको मे मूलगुणो के धारण करने वाले कितने है ? अथवा तप करने वाले ने पौषध कितने किये तो उत्तर नही दे सकेगे। किन्तु याद रहे, उत्तरगुण के व्रत मूल को पुष्ट करने के लिए है। यदि मूल ही नही हो तो उत्तर से पुष्टि किसकी ? सामायिक का अभ्यास भी इसीलिए बताया गया है। परन्तु आचार्यो द्वारा बतायी गयी विधि को कोई मन से सुने तभी तो ग्रहण कर पायेगा।

## सुनना विधि से हो

किसी भी तत्व को सुनना और पकडना हो तो विधि से हो। विधि से नही हो तो बात आगे कैसे आयेगी ? चाहे आपको सुनने का कम मौका आये और हमको कम सुनाने का। परन्तु अविधि को टालने और विधि को पकडने की बात समझाने के लिए, हम सतो को भी, आज की छोटी आयु वाले समाज के प्रत्याख्यानी जीवो को, मुमुक्षुओ को ऐसा मार्गदर्शन देना चाहिये कि जो उनके जीवन को उपयोगी हो सके। उनका जीवन ऊँचा उठा सके, ऐसी बातो मे मार्ग-दर्शन देना, यह काम हमारा है। और उसे क्रियात्मक-मूर्तरूप देना श्रावको का काम है। हम कुछ कहकर आपके मन को प्रमुदित करे तो इसका मतलब यह नही कि आप मूलगुण पर ध्यान देना छोड दें। मैं भी आपको ऐसी बात कहू जो मूल को छूने वाली हो एव जीवन को निर्मल बनाने वाली हो। इस तरह आप लोगो के श्रवण का तरीका बदला तो एक चौमासे मे आपकी और आपके नगर की काया बदल जानी चाहिये।

परन्तु आज की स्थिति मे या तो हमारे सुनाने का तरीका सक्षम नही ह। उसमे आपके जीवन को छूने की बात बराबर नही

दो महीने तक परिश्रम करके, खेतो मे बीज बोकर किसान हल्का हो जाता है। वह मच वनाकर खेत मे बैठता और उसकी रख-वाली करता है। उसकी नजर इस समय खेत मे लगी फसलो पर रहती है। उस समय आप तो क्या बडे बडे लोग भी उसको अपने पास बुलाये तो वह किसी की नही सुनेगा और वही से बैठे कहेगा कि तुम्हे यदि बात कहनी है, या कुछ पूछना है तो इधर आ जाओ। वह इस काल मे अपने मन से बादशाह बना होता है। उसे किसी की परवाह नही रहती। फसल की मस्ती से वह मस्त बना रहता है।

किसान की तरह अगर आपने भी आध्यात्मिक क्षेत्र मे ज्ञान, दर्शन, चरित्र, तप की फसल बढा ली और समाज के क्षेत्र को, नगर के क्षेत्र को, प्रात के क्षेत्र को, हरा-भरा कर लिया तो आप भी आध्यात्मिक क्षेत्र मे बादशाहो के बादशाह बन जायेंगे। मगर यह सब आपकी भावना और स्थिति पर निर्भर है। आपके यहा एक आगतुक भाई बत्तीस की तपस्या कर रहा है और आज उसकी पूर्णा-हुति है। थोडी-थोडी बूदे भी पड रही है, जिससे वर्षाकाल के चले जाने का भाव न हो। आप सब उस तपस्वी भाई की पूर्णाहुति मे सहयोग के लिए कुछ न कुछ सोच रहे होगे, तो क्या हमारी बातो पर जोकि मैंने आज तक आप सबके सामने रखी, कुछ नही सोचेगे ? मैने अभी कहा कि सच्चे श्रोता बनकर, सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप मूलगुण का अभ्यास करें, उन्हे बनाये रक्खे, जोकि सम्यक् ज्ञान होने पर ही सभव है। भाई ! समय चला जायेगा और बात रह जायेगी। कही ऐसा न हो कि हाथ मलमलकर पछताना पडे। कहा है कि—

**"मक्खी बैठी शहद पर, पख लिए लिपटाय।**
**हाथ मले और सिर धुने, लालच बुरी बलाय ॥**

एक बार अकबर बादशाह ने बीरबल से पूछा कि बीरबल ! यह मक्खी रोजाना यहाँ बैठकर यो-यो क्या करती है ? तो उसने कहा—हुजूर ! यह इसलिए ऐसा कर रही है कि आपने और आपके

नागरिको ने जो पाया है, उन्हे मुट्ठी भर-भर कर लुटा रहे है। परन्तु इसने फूल-फूल से पराग इकट्ठी कर शहद का छत्ता तैयार किया और न स्वय उसे खाया और न किसी को दिया। एक दिन किसी ने आकर धुँआ किया और छत्ते पर ढेला मार कर मधु का सचित खजाना लूट लिया। उस खजाने के लुट जाने पर यह पश्चात्ताप कर रही है और विचार कर रही है कि मैंने कुछ भी नही किया। पाया सो व्यर्थ ही गवा दिया। इस प्रकार यह हाथ मलकर रोती और सिर धुनती है।

शायद मक्खी की बात ऐसी हो या उसका ऐसा स्वभाव हो। परन्तु इस पर से ससार के लोगो को विचार करना है कि इस साहबी के बीच मे रहकर अपनी आत्मा को आगे बढाकर और ज्ञान, दर्शन चरित्र एव तप का यदि लाभ प्राप्त नही किया तो मक्खी जैसा हाल न हो ? इसलिए अपने आपको सही मायने मे श्रोता बनकर, भगवान् वीतराग की वाणी को आप ध्यान से सुनेंगे और पकडेगे तो आपकी आत्मा का भी उभय लोक मे कल्याण होगा।

●●

# ६
# धर्म से उभयलोक कल्याण

## भगवान् और हमारा कल्याण

बन्धुओ ! अभी प्रार्थना मे कहा गया कि भगवान् महावीर ससार मे भद्र-कल्याण का निर्देश करनेवाले है। प्रार्थना की अन्तिम वाक्यावली मे ये शब्द थे कि—"श्रीवीर भद्र दिश" याने हे वीर ! आप हमे और ससार के समस्त जीवो को भद्र-कल्याण दर्शाये। भद्र शब्द का अर्थ है कल्याण, शुभ, श्रेयस् आदि। तो इन पर्यायवाची शब्दो के माफिक हमने भद्र शब्द का प्रयोग किया है। वह भी वीत-राग के चरणो मे, अभ्यर्थना के रूप मे नही। परन्तु उनके प्रभाव एव निमित्त से हमारे अशुभ कर्म कटते और शुभ का उदय होता। इसलिए उपचार से, एक दृष्टि से, व्यवहार की भाषा मे उनको यह कहा जाता है कि प्रभु हमारे कल्याण—मगल का निर्माण करनेवाले हैं। किन्तु वास्तविकता यह है कि हम अपना कल्याण स्वय करते है। प्रभु तो मात्र मार्गदर्शन करते है।

प्रभु के द्वारा दर्शित कल्याण का मार्ग क्या है ? जरा इसको ध्यान मे लीजिए। प्रभु के वचनो का, सदेशो का एव उपदेशो का, जब हमारे अन्तर मे स्थान मिलेगा तो हमारे आचरण पवित्र होगे। सम्यग् आचरण से कर्म हल्के होगे और पाप घटेगे। फलस्वरूप हमे शान्तिलाभ होगा। इस प्रकार परम्परा से शान्तिलाभ के कारण प्रभु हुए। हमने शान्तिलाभ क्यो पाया ? कर्म हल्के होने से। कर्म हल्के क्यो हुए ? सद्वोध मिलने से। सद्बोध किससे जगा ? प्रभु की वाणी से। इस तरह सद्वोध जगाने का मूल कारण प्रभु की वाणी होने से, व्यवहार मे प्रभु को सासारिक जीवो के लिए कल्याण का उपदेशक और कल्याण करनेवाला भी कहा जाता है। प्रभु के वचनो पर अमल करने से कल्याण होता है, हुआ है और आगे भी होगा।

## कल्याण के भेद और धर्म

कल्याण दो तरह का है, एक इस भव का और दूसरा परभव का। अभी साधारणतया लोग यही समझते है कि धर्म के आचरण से, भगवान् की भक्ति से, जीवन को सुसस्कृत बनाने मे, जन्म-मरण के बन्धन कटेंगे, मुक्ति मिलेगी और आत्मा पवित्र होगी। इसमे कोई दो मत या दो राय नही। परन्तु इसके पहले मै आपका ध्यान इस ओर भी आकर्षित करना चाहूगा कि क्या धर्म इस लोक का कल्याण किये बिना, सीधा परलोक का ही कल्याण करनेवाला है या इस लोक का भी कल्याण करता है ? धर्म को मात्र परलोक का पाथेय समझना, इस लोक का हितकारी नही, यह विचार पुष्ट और सुसगत नही है। धर्म से दोनो लोको का भला होता है। परन्तु यह पूरी तरह से ध्यान मे ले लेना चाहिये कि धर्म उधार सौदा नही है। आज तक आप इसको उधार सौदा समझते रहे। धर्म को परलोक के लिए ही उपयोगी माना। इसलिए जब तक यह समझ बराबर नही होगी, धर्म के आचरण मे भीतरी रस जागृत नही होगा और रस जागे बिना अपेक्षित सफलता भी नही मिल पायेगी।

## अर्थ और धर्म

पैसे से जो पैसा मिला, उससे क्या लाभ यह आपको बताने की जरूरत नही है। आप बच्चे, बूढे, जवान कोई भी हो, निश्चित रूप से कहेगे कि महाराज ! धन से बच्चो की पढाई-लिखाई, खाना-पीना, नौकर-चाकर, घोडागाडी, कोठी-बगला, मोटरकार, कल-कारखाना और ऐश-आराम वगैरह सब चलते हैं। ससार मे जो कुछ भी दिखाई दे रहा है और मानव मन जिन्हे पाने को तरस रहा है, वे सभी सुख साधन, पैसे के होने पर ही प्राप्त होते है। पैसा है तो सब कुछ है, पैसा नही तो कुछ नही। पैसे का फल नकद और हाथ के आबले की तरह स्पष्ट है। इस तरह आपको यह भी मालूम होना चाहिये कि धर्म से भी नगद लाभ है। धर्म का भी प्रत्यक्ष प्रभाव है—असर है। धर्म लाभ का असर तन पर नही, मन पर होता है। इससे परिवार मे, समाज मे, जाति मे और घर मे एक अपूर्व शान्ति, सौमनस्य, मृदुता,

कोमलता, सरलता, सहिष्णुता, प्रसन्नता और स्वच्छता आदि दिव्य-दशायें प्राप्त होती है ।

पैसा द्रव्य, भय, शोक और चचलता उत्पन्न करता है। पैसा से अशान्त मन मानव, अन्न धन पाकर भी भूखे रहता है। पैसा धर्म वढाने के वदले, भाई से भाई को लडाता और भीपण बर्बादी करा देता है। देखा जाता है कि थोडे से विवाद के कारण दो भाई लड बैठे और अन्त मे विवाद की वस्तु पर से दोनो का अधिकार जाता रहा—तीसरा मालिक वन बैठा। ऐसे भी मौके आते है, जब किसी ने झूठी भी शिकायत कर दी तो राजकीय पदाधिकारी आकर खाना-तलाशी करते, वहिये देखते और इधर-उधर जाचकर कहते कि ठीक नही है, और उनको जप्त कर लेते। सीलबन्द उन पैसो से क्या लाभ ? तिजोडी मे होते हुए भी घर मे राशन लाना है, कपडे लाने है, बच्चो की दवा लानी है या आवश्यक और वस्तु लानी है तो ऐसे मौके पर उधार से काम करना पडता है। धन अपना होते हुए भी, पराये की तरह निकालना सभव नही। यह है अर्थ की बात ।

परन्तु धर्म का सौदा ऐसा नही है। धर्म के बारे मे न तो किसी की शिकायत चल सकती और न उस पर सील ही लग सकती है। जब चाहो जितना चाहो कमाओ, जमा करो लाभ ही लाभ है। धर्म भीतर की बीमारी मिटाता है। इससे यदि किसी की प्रकृति मे तीव्रता है—थोडी सी वात मे वह उबल पडता है, दिमाग गर्म हो जाता है, बोलने मे उत्तेजित हो जाता, मान भूल जाता, घर मे परि-वार वालो से टकरा जाता तो ऐसे व्यक्ति को धर्म का वोध और पुण्य पाप की जानकारी होने पर मन वदल जाता है। धर्म के हृदय मे उतरने से, उसके सारे विकार मिट जाते हैं।

**धर्म की महत्ता**

धर्म आपको कभी दु खी नही रहने देगा, पीडित नही होने देगा। पहले मैंने एक क्रोध भाव का उदाहरण दिया था और वतलाया था कि पैसे से क्या परिवार के सदस्यो का क्रोधी स्वभाव वदला जा

सकता है ? नही । परन्तु धर्म से बदला जा सकता है । कोई घमडी व्यक्ति है, अकडा रहता हे, बडे-बूढो से अकडकर चलता है, परिवार मे बोल-चाल नही करता तो उस अहकारी व्यक्ति का अहकार गल सकता है । इसलिए भ० महावीर ने कहा कि—भव्यात्माओ ! धर्म एक नकद सौदा है । वह केवल परलोक का ही लाभ देने वाला नही, परन्तु इस लोक मे भी लाभप्रद है । परिवार मे भी लाभ देने वाला है और जीवन मे आमूल-चूल परिवर्तन लाने वाला है । आवश्यकता है उसको सही रूप से पकडने-ग्रहण करने की ।

प्राचीन आचार्यो ने फरमाया कि—"**धम्मो य ताण सरण गईय, धम्म निसेविज्ज सुह लहति**" । याने धर्म ही त्राण है, शरण है, गति है, धर्म ही रक्षक और सुख प्राप्ति कराने वाला है । कोई मरने मारने को तैयार हो गया, परन्तु धर्म की शिक्षा से वह मरने को जाने वाला व्यक्ति स्वय तिरा और दूसरो को भी तार दिया ।

**धर्म और हरिकेशी**

आप सबने हरिकेशी मुनि की बात सुनी है । हीन जाति मे जन्म पाने से जो तिरस्कार पाने लगे । स्थिति यहा तक पहुची कि तिरस्कार से, अपमान से दु खी होकर वे मरने की तैयारी मे लगे हुए थे । जातीय-अपमान का दु ख उनके लिए इतना असह्य हो उठा कि वे झँपापात करके मरने को तैयार हो गए । वस्तुत व्यक्ति के लिए अपमान, खासकर समाज और जाति का, जहर की घू ट से भी बढकर कडवा एव मृत्युदायक होता है ।

सयोगवश उन्हे एक आध्यात्मिक सत का सत्सग मिल गया । उनकी मरणोन्मुख भावना देखकर सत ने कहा—अरे ! क्यो मरता है ? जरा शान्त हो जा । मरने से कोई लाभ मिलने वाला नही है । यह तो कायरता और बुजदिली की निशानी है । और उसमे भी क्रोधादिभाव के आवेश मे मरना तो बालमरण—आत्महत्या है । आत्महत्या का पाप जबर्दस्त होता है । लो मै तुझे जीवन जीने की कला बताता हूँ ।

यह सुनते ही उसने सोचा कि मुझे इस
रोकने वाला कोई नही था। मेरे घर वाले भी मे
नही करते। फिर इस सत ने मेरी चिन्ता की है—
हो, इनकी बात सुननी चाहिये। वह सत के पास
सत ने कहा—भाई! तू मर क्यो रहा है? उसने क
मै दु खी हूँ, ससार से तिरस्कृत और समाज से उपेक्षि
सब ओर से तग आकर मर रहा हूँ।

यह सुनकर सत ने कहा—क्या इस तरह तेरे म
जायेगा? वह बोला—बात ऐसी है कि यदि जिदा रह
दु ख देखना पडेगा। और मर जाऊँगा तो दु ख नही देर
है-"आप मरे जग [1]परले"? यह सुनकर सत हसे और ।
इस शरीर से तो मर जायेगा और यहा जो घर वालो
वालो की तरफ से तन धन आदि का दु ख है, उससे ।
पर मानलो अगले जन्म मे इससे भी अधिक दु ख मिला
कहा—महाराज! यह तो हाथ की बात नही है। इस पर
तू मरकर दु ख मिटाना चाहता है। परन्तु याद रख, म
का अन्त नही। आत्महत्या से तो दु ख और बढ जायेगा।

### दुःख का अन्त धर्म से, मृत्यु से नहीं

अधिकता से समाज, परिवार या घर मे, पति-पत्नी
भाई मे, बाप-बेटे मे नही बनी तो लोग कुए मे पडकर, जह
या अन्य प्रकार से आत्मघात करके मरने की बात सोचते
अनेक उदाहरण आज के ससार मे देखने और सुनने को मिल
आज का ससार बडा विचित्र है। पहले के लोगो मे दु ख के
करने की ताकत होती थी। परन्तु वह बल आज कम हो ग
सहिष्णुता का माद्दा-सहन-शक्ति कम पड गयी है। लडका पर
असफल हो गया तो वह किसी को मु ह दिखाने की बनिस्वत
अच्छा मानता हे। वह यह नही जानता कि सफलता के
असफलता भी रहती है। आज बात-बात मे, लडझगड कर या

[1] प्रलय

पात से ऊब कर व्यक्ति जीवन का अन्त करने को उतारू हो जाता है, अपनी जीवन लीला को असमय मे समाप्त करने पर तुल जाता है।

प्रभु ने कहा—मानव ! मृत्यु से दु खो का अन्त नही, परन्तु धर्म से अन्त होगा। धर्म का साधन, दु खो को अन्त करने के लिए एक रामबाण दवा है। परन्तु शर्त यह है कि धर्म का आचरण विधि से, प्यार से और सच्चे दिल से हो। यदि इस तरह धर्म का आचरण हुआ तो वह निश्चित रूप से दु ख दूर करेगा। धर्म के आचरण से हजारो लाखो और करोडो व्यक्तियो ने सदा-सदा के लिए दु ख से छुटकारा पाया है—मुक्ति पायी है। मै जिस हरिजन भाई हरिकेशी की कथा कह रहा हूँ, जो कि तिरस्कार से दु खी होकर मर रहा था, वह भी सब कुछ छोडकर वीतराग मार्ग का पथिक वन गया और साधु वनकर, साधु जीवन की साधना की—तपस्या की एव मनुष्यो की तो बात ही क्या, देवो का भी पूजनीय बन गया।

यह धर्म का एक व्यावहारिक रूप है। यदि धर्म के व्यावहारिक रूप मे, हम पूरा खरापन रख सके तो हमारा आधा काम हल्का हो जायेगा। वह ऐसे कि जव आप धर्म का व्यावहारिक लाभ, जीवन मे देखने लगेंगे और उसको पकड़कर चलने लगेंगे तो आपका परिवार शान्त एव निश्छल हो जायेगा। परिवार की आपसी लडाई मिट जायेगी ओर फिर आपका धर्ममय जीवन देखकर, दूसरे पडोसी भी सोचेंगे कि इनके परिवार मे सामायिक करने से झगडे मिट गए, प्रेम और शान्ति की गगा बहने लगी। अव हम भी इनके जैसे ही सामायिक करेगे। तो इस तरह दूसरो मे भी देखादेखी धर्म की तरफ श्रद्धा वढेगी, प्रेम वढेगा और समाज मे सुख शान्ति की सरिता लहरायेगी।

### नैतिक शिक्षा से जीवन सुधार

मैने एक कथा मे पढा था कि एक अमीर घर की लडकी जो आजाद प्रकृति की थी। सतत मा वाप से लडती और मन मौजी से जीवन विताती थी। हारकर माता-पिता ने उसकी भर्ती स्कूल मे

करा दी। वहा रहकर वह पढने लगी। स्कूल मे कला और साक्षरता का शिक्षण होता था। दूसरी ओर स्कूल की एक पानी पिलाने वाली बाई थी। वह बच्चियो को नैतिक शिक्षा देती थी। वह ज्यादा पढी लिखी तो नही थी परन्तु व्यावहारिक अनुभव उसमे अधिक था। जब कोई स्वतन्त्र प्रकृति वाली लडकी उसके पास पानी पीने को आती तो वह बाई उससे कहती कि देखो! तुम अभी पढ रही हो। पढाई समाप्त करने के बाद तुम्हे पराये घर मे जाना है। वहाँ सबको मित्र बनाकर रखना है। अपने स्वभाव मे फूल जैसी मृदुता लाओ और वाणी मे ऐसी मिठास रक्खो जिससे कि किसी को कभी अखरो नही।

कहावत है कि—"स्वभाव ऐसा बनाओ जो दुश्मन के मन मे भी नही खटके"। आँखो मे काजल की तरह मृदुस्वभावी सब मे समा जाता है। काजल की जगह कोई दूसरा रग होगा तो वह खटकेगा, बुरा लगेगा। वह पानी पिलानेवाली कम पढी लिखी बाई, उस अच्छे घराने की लडकी को भी लोक व्यवहार की अनमोल शिक्षा देती और कहती कि तुम जहाँ भी रहो, किसी को नही खट-कना। तुम कहती हो कि मुझ से माँ-बाप, भाई आदि नही बोलते, लडाई करते झगडते हैं। तो इन बातो मे तुम अपने हित की बात सोचो। कारण बडो की बात के पीछे अपना हित छिपा रहता है।

प्राचीन कहावत है कि—

"दुर्जन की कृपा बुरी-भली सज्जन की त्रास।
जब सूरज गर्मी करे, तब वर्षण की आस।।"

इस प्रकार पानी पिलानेवाली उसको समझाती कि हितैषी लोगो की कडवी बात भी, दवा की तरह हितकारी होती है। फिर कोई स्वभाव के कारण कुछ कहदे तो सोचना कि—

जापे जैसी वस्तु है—तैसी ते दिखलाय।
वाका बुरा न मानिए, वो लेन कहा से जाय।।

तू यदि शराव की दुकान पर जायेगी तो वह कलाल तुझे क्या माल बतलायेगा ? और बजाज के यहाँ पहुँची तो वह कपडे ही बतायेगा। परन्तु घूमते-घूमते यदि तू किसी मोची की दुकान पर पहुच गई तो वह तुझे क्या बतायेगा ? क्या वह तुझे अच्छे-अच्छे ढग का आभूपण वतायेगा ? नही, वह तो तुझे जूते ही बतायेगा। इस प्रकार जिसका जैसा स्वभाव है, उसके अनुकूल वह कुछ कहे तो उसका बुरा नही मानना चाहिये।

## धर्म नही तो कुछ नही

देखिए ! ससार की यह वडी भ्रान्ति है कि लोग मानते है— धन होगा तो सुखी होगे, बच्चे होगे तो आराम पायेगे, पत्नी होगी तो प्यार मिलेगा। यदि आपकी मनपसन्द ये सब बाते पूरी हो और धर्म नही तो सच मानिये कुछ नही है। धन है, पत्नी है, बच्चे है, परन्तु धन का उपयोग नही है, बच्चे मे विनय नही और स्त्री मे सहिष्णुता नही एव नौकर मे ईमानदारी नही है तथा भाई मे सरलता—निष्कपटता नही है, तो वहाँ धन एव सुख का साम्राज्य नही टिक सकता है। भाई से भाई यदि कपट रखता है तो लाखो की पूँजी होते हुए भी धर्म भावना के अभाव में पारिवारिक शान्ति नही रहेगी।

दूसरी ओर किसी के पास मे धन गहरा नही है, फिर भी धर्म है तो वह उससे परिवार मे सुख की वृद्धि कर सकता है। एक धर्मी पिता, पुत्र के प्रति अपना दायित्व समझता है और अपने बाद उसी को धन-सम्पत्ति का मालिक मानता है। पुत्र भी पिता को उपकारी और अपना पालन-पोषण एव योग्य करनेवाला समझकर, सरल मन से उनकी सेवा को स्वकर्तव्य मानकर चलता है। ऐसे ही धार्मिक भावना वाला भाई तो भाई के प्रति सोचेगा कि यह तो भाई है। भाई ने मुझे कुछ कह दिया तो क्या ? वह मेरा हितचिन्तक है। इसने ज्यादा खालिया, पी लिया खर्च कर दिया तो क्या ? क्योकि भाई आखिर भाई है। मारवाडी कहावत है—

"भाई का माल, भाई खासी।
और खासी तो एलो जासी।"

इस प्रकार यदि हृदय मे धर्म शिक्षा है तो भाई-भाई कभी आपस मे नही लडेगे। वे एक दूसरे को भाई समझकर कभी ऐसा प्रश्न ही नही उठायेगे, जिससे कि परस्पर मे कलह-कोलाहल वढे। ऐसा करने मे धर्म-भाव उन्हे रोकेगा—मजबूर करेगा। और अगर धन है पर धर्म नही है तो एक लखपति भाई भी अपने छोटे भाई को अपनी कमाई के बारे मे सच-सच नही बतायेगा। क्योकि उसमे धर्म-भावना नही है। उसके मन मे सरलता के बजाए कपट है, छल है और द्वेष है। फिर ऐसा परिवार महाभारत का अखाडा क्यो नही बनेगा? भाई-भाई के सिर क्यो नही फूटेगे? इस तरह यह सत्य है कि धर्म नही तो कुछ भी नही है, सुख और शान्ति नही है। धर्म-भावना के अभाव मे ही तो दुर्योधन ने धर्मराज के साथ समझौता न कर युद्ध करना ठाना। कौरवो के धर्म शून्य सस्कारो ने कुल का सत्यानाश करवा दिया, पाडवो को सयुक्त अधिकार मे भी शान्ति और सुख तथा कौरव पृथक् भोग-सामग्री पाकर भी अशान्त क्यो? यह धर्म के सद्भाव और अभाव का ही परिणाम है।

**विश्वभूति का जीवन**

अच्छा! तो अब मैं आपके समक्ष भ० महावीर के पूर्वजन्म की थोडी-सी बात कह डालूँ। जैसा कि—

"राजगृही सोलहवेंभव मे, नृपकुल आते है।
विश्वभूति युवराज तनय, सब जन हर्षाते हैं।।
तरुण अवस्था मे तरुणी संग, मौज मनाते है।
राजपुत्र सुनकर मन मे, अति खेद बढाते हैं।।" शासन

सोलहवे भव मे भगवान् महावीर का जीव राजा के कुल मे जन्मा है। राजगृही नगरी मे विशाखानन्दी राजा के लघु भाई जो युवराज थे, उनके पुत्र होकर विश्वभूति के नाम से प्रसिद्ध हुए। जन्म पाया राजकुल मे परन्तु राजा दूसरा है, जिसके पुत्र का

नाम विशाखभूति था। युवराज के पुत्र होने से आपको राज्य मिलने का प्रश्न ही नही रहा। किन्तु उनमे धर्म के कुछ सस्कार थे। खाने-पीने की कोई कमी नही थी। माँ-बाप के प्यार की भी कोई कमी नही थी। पढ-लिख गया, शादी हुई—सम्बन्ध हुआ। अब परिवार मे तरुणी स्त्रियो को लेकर रहने से सघर्ष का कारण समझ, विश्वभूति ने पुष्पक नाम के बगीचे मे रहने का विचार किया तथा वही जाकर रहने लगे।

वहाँ उनको कोई चिन्ता-फिक्र नही थी। क्योकि आवश्यकता की कमी मे चिन्ता जगती है। और जहाँ किसी तरह की कमी नही, वहाँ फिक्र कैसी? विश्वभूति स्वर्गोपम उस उद्यान मे आनन्द से रहने लगे और विविध क्रीडाओ के सग जीवन बिताने लगे। परन्तु ईर्ष्यालु और विद्वेषीजन पर सुख देखकर भी जल उठता एव सुखी के लिए दुश्चिन्तन करने लगता है। धर्मी, पर सुख को देखकर हर्षित होता तथा मगल चिन्तन करता है।

एक समय उद्यान मे राजा की कुछ दासियाँ आयी और देखा कि युवराज का पुत्र विश्वभूति बडे मौज से यहाँ आराम करता और क्रीडा मे समय बिताता है। यह तो हौज मे अपनी तरुणी नारियो के सग फाग खेल रहा है। परन्तु हमारे राजाजी के कुँवर साहब तो झिक-झिक करते है। राजमहल मे कैदी की तरह जिन्दगी घुट-घुट कर गुजार रहे हैं। दासियो ने महल मे पहुँचकर महाराज कुमार के सामने बगीचे मे देखी—बाते प्रगट कर दी और बोली—महाराज कुमार! आप तो राजा के नाम के पाटवी पुत्र है। आपको तो कोई सुख नही है। आनन्द तो विश्वभूति मना रहे है। उनको कोई फिक्र-चिन्ता नही है। बगीचे की स्वच्छ आबोहवा मे सुख का जीवन जीते हैं, मौज की जिन्दगी बिताते हैं। आप महल मे तो रहते हैं किन्तु गलियो के तग वातावरण से होकर गुजरते हैं। अजमेर की इस लाखन कोठडी मे बडी-बडी हवेलियाँ हैं, परन्तु जाना तो इन्ही गन्दी गलियो मे से होता है।

दासियो के मुँह से ऐसा विपम वर्णन सुनकर, करोडो की सम्पदा एव रथ हाथी घोडेवाले भी उस राजपुत्र के मन मे, विश्वभूति के प्रति द्वेप और दु ख भर आया। उसने कहा—जब तक मुझे वह बगीचा नही मिले और विश्वभूति उसमे से निकल नही जाये, तब तक मेरा खाना-पीना यहाँ तक कि जीना भी वेकार है।

सब तरह की सुख-सुविधा होने पर भी उस राजपुत्र के मन मे ऐसे दुर्भाव क्यो उत्पन्न हो गए ? तो उत्तर स्पष्ट है कि उसमे धर्म के सस्कार नही थे। धर्म, शान्ति, दया, क्षमा और आर्द्रभाव सिखाता है, जो कि विश्वभूति मे थे। धर्म का यह आनन्दी भाव कैसे बनाये रखना और बढाना यह विश्वभूति को सत के रूप मे नही मिले। किन्तु धार्मिक सस्कार से प्राप्त हुए। धर्म के सस्कार के कारण उनके मन मे यह बात रही कि राजा अपने लडके को राज्य देगा, फिर भी मेरे पिता के बडे भाई होने के नाते, महाराज विशाखनन्दी हमारे सब कुछ है। मुझे उनकी सेवा और आज्ञा का पालन करना एव उनके मन को प्रसन्न रखना चाहिये।

**आज्ञा पालन धर्म का प्रथम चरण**

धर्म का पहला रूप है आज्ञा का पालन। सामायिक बाद मे है। आपका लडका सामायिक मे आता है, गुरुदर्शन या देवदर्शन को जाता है, परन्तु यदि उसमे आज्ञा पालन का धर्म नही है तो उसकी सामायिक क्या लाभ देगी ? धर्म का प्रारम्भ आज्ञापालन से ही होता है। यदि कोई कुटुम्ब मे है, परिवार मे है, शासन मे है, गच्छ मे है तो पहले उसमे बडो की आज्ञा पालन का गुण होना चाहिये। विश्वभूति मे ये गुण होने से वह शान्ति पूर्वक जगल मे भी मगल मनाता रहा। अपने पीछे षड्यन्त्र की खबर भी उसने नही पायी।

राजा के पास जब अपने पुत्र की चिन्ता की बात पहुँची तो राजा ने पुत्र को कहा—तुम्हे घबराने की बात नही है। यदि वन-विहार की इच्छा है तो मैं ऐसी व्यवस्था कर दूँगा। तू मन मे खेद

मत कर। विशाखभूति और विश्वभूति कौन है ? दोनो भाई तो है। इस तरह राजा ने उसके मन को शान्त कर दिया। परन्तु धर्म सस्कार के अभाव मे अपेक्षित शान्ति नही आयी। हार कर राजा को उसे वचन देना पडा कि मै बगीचे को जल्द से जल्द तुम्हारे लिए खाली कराकर दिला दू गा। भविष्य मे राजा को इसके लिए छल, बल एव अन्याय का आश्रय लेना पडा, जो आगे ज्ञात होगा।

यदि जीवन मे धर्म रहता है तो ऐसी बातो की कोई जरूरत नही रहती। आप सबको वीतराग धर्म मिला है, सत्सग मिला है। सत समागम का सुअवसर मिलता रहता है। तो सोचिए, धर्म से नकद लाभ मिलता है या उधार का ? चाहे धर्म-तप का, शील का सदाचार का हो, परन्तु उसका लाभ पहले नगद है। इस रूप मे यदि आप धर्म को ग्रहण कर उसका पालन करेंगे तो आपके जीवन मे शान्ति एव कल्याण प्राप्त होगा। धर्म का एक लघुरूप ग्रहण करने वाले तपस्वी भाई के तप बत्तीस की आज पूर्ति है। उसमे आप भी यथा शक्य धार्मिक सहयोग देंगे तो आपको भी लाभ होगा। इस अवसर पर यदि दुर्व्यसनो को घटायेगे तो यह भी तप की पूर्ति मे बडा सहयोग होगा। जीवन को निर्मल बनाइए और पाप के पक मे से गुण का धर्म का कमल विकसित कर स्वपर का कल्याण कीजिए यही आनन्द का प्रशस्त मार्ग है।

● ●

# ७

# आत्मोत्थान

## अनुकूल निमित्त से उत्थान

वन्धुओ ! सुख विपाक सूत्र के रूप मे अभी आपके सामने वीतराग-वाणी का प्रवचन चल रहा है। वीतराग-वाणी का श्रवण कर अनेक महापुरुषो ने अपने को जगाया, कल्याण किया और जीवन को सार्थक किया। यह निमित्त का परिणाम बताया गया है। वाणी निमित्त है और आत्म-जागरण निज पुरुषार्थ का फल है। साधक चाहे छोटा हो या बडा, यदि पुरुषार्थी है तो अनुकूल निमित्त पाकर वह ऊपर आ जाता है और लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।

बीज चाहे जिस किसी आकार या रूप का हो, अगर सजीव है तो वह चिरकाल तक मिट्टी के नीचे दबा नही रहेगा। उसे ज्यो ही अनुकूल मिट्टी और सिचाई पानी का सहयोग मिला, वातावरण अनुकूल रहा तो वह अकुर रूप मे फूटकर ऊपर आ जाता है। आप बीज को भूमि मे डालकर उपजाने का काम नही करते है, फिर भी आपको इतना जरूर ख्याल होगा कि सूखी मिट्टी मे डाला हुआ दाना ऊपर नही आता है। वर्षा के मौसम मे, बीसो प्रकार के घास बिना बीज डाले ही जगल मे तैयार हो जाते है। उनके बीज कब किस किसान ने डाले ? जो पहले सूखा मैदान पडा था, वर्षा मे हरा-भरा हो गया, दूबो से भरकर सरसब्ज बन गया। सूखे घासो मे भी एक नयी जान आ गयी और वे जमीन छोडकर सिर उठा के खडे हो गए। कितना बडा यह परिवर्तन है ? प्रकृति की यह कैसी अद्भुत लीला है।

मैं पूछू कि उस घास के बीज का सद्भाव वर्षा के पहले मिट्टी मे था या नही ? अगर था तो वे मिट्टी के भीतर कब और कैसे आए ? खेतो मे बाजरी के, मक्का के, मूग और उडद के बीज तो

समय पर किसान द्वारा डाले जाते है। मगर घास के बीज तो पहले भी जमीन मे थे और है भी। परन्तु वे चैत्र-वैशाख और ज्येष्ठ मे ऊपर नही आए। लेकिन जरा वर्षा की एक धारा पहुँची, मिट्टी मे आर्द्रता हुई, नमी आयी कि बीज मिट्टी को फोडकर ऊपर आ गए। वह सूखे काल मे अथवा कि धूल मे रहा हुआ ऊपर आना चाहे तो नही आ सकता। वर्षा के जल ने सख्त मिट्टी को मुलायम कर, सोए हुए बीज को, गीला किया, तर किया और जगा दिया। जिससे बीज फूल गया। जिसमे से अकुर निकल आया। जल से मिट्टी और बीज की सख्ती मिटते ही, कोमलता आयी और ताकत बढ गयी। फिर कोमल होकर वह ऊपर आ सका। बीज है, अनुकूल निमित्त मिला तो वह दबा नही रहा और अपनी सामर्थ्य दिखाने के लिए ऊपर आ गया।

**सजीव बीज ही अकुरित होते है**

सोचने की बात है कि हमारे अन्दर मे बीज है या नही है ? यदि है तो वह ऊपर क्यो नही आता ? सोना-चाँदी का मोह है, बच्चो का मोह है, कोठी बँगले का मोह है। ये सब मोहरूपी मलबे मन के ऊपर पडे है। वह मोह के मलबे मे दबी हुई आत्मा की शक्ति बीज की तरह अकुरित होकर ऊपर नही आ रही है। एक छोटा सा-नन्हा सा बाजरी का बीज, मिट्टी की सतह को भेदकर ऊपर आ गया। बाजरी का दाना नन्हा सा है। उसकी क्या ताकत, क्या सामर्थ्य कि वह इतनी मिट्टी के दल को भेदकर ऊपर आए ? परन्तु वह सजीव है, जिन्दा है, सचेतन है कि यथा अवसर पानी की सहायता मिल गयी, जिससे वह ऊपर आ गया।

आपको खेतो मे जाने का काम नही पडा होगा। किसान जब हल चलाता है तो फाल बीत आधा बीत नीचे चला जाता है और उसी अनुपात मे बीज को भी नीचे जाना पडता है। मगर इतने नीचे से भी वह ऊपर निकल आता है। तो बीज मे ताकत ज्यादा है या आप मे ज्यादा ताकत है। यदि खेल-खेल मे कोई बच्चा अपने साथी

बच्चे पर, बालू के दो-चार पाच-दस धोवे डाल दे वालू के टीवे मे तो क्या वह ढका रहेगा ? नही रहेगा। वह जोर लगायेगा और ऊपर आ जायेगा। क्योंकि उसमें चेतना है—वह सचेतन है, इसलिए ऊपर आ जाता है। तो यह छोटी सी नजीर रही भौतिक आवरण की—वाहर के दल की।

## गहरे दबाव मे बीज भी नहीं उगते

दबानेवाले चद बाहर के दल भी होते है और भीतर के भी। बाहर के दबानेवाले आवरण है धन के, जन के, कुटुम्ब के, परिवार के, कोठी के, बगले के। ये सबके सब आवरण आत्मा मे अकुरित होने की जो शक्ति है, उसको दबानेवाले कचरे है, मलवे है। परन्तु इन कचरो के नीचे भी ज्ञानी आत्मा देर तक दबी नही रहती है। जैसे सचेतन बीज मिट्टी के नीचे अधिक देर तक दबकर नही रहता, ऐसे ज्ञानात्मा भी इन पुदगलो के कचरे के ढेर के नीचे दबकर नही रहती है। वह इनको बीधकर, छेदकर, ऊपर आ जाती है। इसके लिए सतो की, शास्त्रो की, वाणी वही काम करती है, जो वर्षा बीज के लिए करती है। वर्षा की तरह शास्त्र की, सतो की वाणी आत्मा को ताकत देती और ऊपर खीचकर ले आती है। जब सोया मन जग जाता है तो उसमे स्फुरणा होती है, चिन्तन होता है—ऐ मानव! *तूने मनुष्य का जीवन पाकर घडियो की घडिये, दिनो के दिन और* महीनो के महीने व्यर्थ गवा दिये। इससे तेरी आत्मा भारी हो रही है, ससार बढ रहा है। जरा सावधानी से अपने स्वरूप का विचार कर। शास्त्रकारो ने मानव मन के इस ज्ञान भाव के जगाने मे, सत्सग का निमित्त बताया है। अभी जिनदास आदि सुख विपाक सूत्र के पात्रो का वर्णन श्रवण कर चुके है। वे सारे पात्र यही बता रहे है कि वीतराग-वाणी के द्वारा, उनके अन्तर मे सोयी आत्म शक्ति थी, वह जग गयी। क्योकि यदि वीज वीज रूप मे है तो अनुकूल निमित्त से वह जरूर अकुरित होगा, अकुर फूटेगा। और यदि वीज वीज नही है अथवा वहुत गहरा दलदल मे दव गया है, दो चार-दस हाथ दवा दिया है तो इन दो कारणो से वह ऊपर नही आ सकता। ऐसे

ही जो प्राणी पचेन्द्रिय होकर भी असज्ञी है, अभव्य है, कर्म के प्रबल दल मे दबा है, वही ऊपर नही आता है। अभव्य को साक्षात् तीर्थ-कर के पास भी पहुँचा दो, केवली के पास पहुँचा दो, महान् दर्दवाले, पराये दु ख से दु खी किसी सत के पास पहुँचा दो और ऊँचे से ऊँचे उपदेश देकर, उसको जागृत करने का प्रयत्न करो तो भी उस अभव्यात्मा मे ज्ञान का अकुर नही फूटेगा। क्योकि उसकी आत्मा, उसकी चेतना की शक्ति का बीज, कर्मो के आवरण से वहुत नीचे तक दबा हुआ है।

**भव्य भी सभी नही जगते**

अब अभव्य से आगे बढिए, भव्य प्राणी भी सब जागृत नही होते है। खासकर जिनमे निकट भव्यता नही होती। भव्य होकर भी एक निकट भव्य और दूसरे दुर्भव्य होते। दुर्भव्य के कर्मो का आवरण इतना गहरा होता है कि वे अभव्य के समकक्ष होते। वीत-राग-वाणी की शीतल जलधारा, उनके अन्तर मे पहुच नही पाती। राग रोष की गूढ ग्रन्थि उनको कायम रहती है, जिससे सद्-दर्शन का अकुर फूट नही पाता।

हमको सोचना है कि क्या हम अभव्य की श्रेणी मे हैं या दुर्भव्य होना चाहते है ? निकट भव्य हो सकते, पर क्या यह भी होना नही चाहते ? निकट भव्य मे धर्म श्रवण की प्रवल इच्छा और पाप भीरुता चाहिये एतदर्थ सत्सग मे वैठकर ज्ञान मिलाने की अभिरुचि होनी अत्यावश्यक है। यदि ज्ञान मिलाने की इच्छा और जीवन सुधारने की भावना से आए हो तो चिन्तन करो कि हमको अपने जीवन के अमूल्य क्षणो का कैसे सदुपयोग करना है? जीवन को सफल वनाने के लिए क्या करना है ? इस पर गहराई से विचार करो। जव छोटा सा वाजरी का दाना, मिट्टी की तह को भेदकर ऊपर आ सकता है, तव आप तो मानव है ! आपने कर्मो के इतने दलो को काट दिए— एकेन्द्रिय, वेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरेन्द्रिय और पचेन्द्रिय तथा असज्ञी जिसमें विना मन के रहते थे, वे सारे के सारे दल काट दिए। और

मन वाले सज्ञी पचेन्द्रिय बन गए। अब इतन।
रुकते हो ?

**समनस्क और अमनस्क**

मन वाले प्राणी कौन कहलाते है ? समनस्क वही
भले को—हिताहित को और वर्तमान एव भविष्य के परिण।
सोचकर चले। और जो परिणाम को नही सोच पाए, वह अम॰
है, असज्ञी है। वह जीव होकर भी उपयोग करने वाला, विवेक बु॰
से काम लेने वाला, नही समझा जाता।

बहुत बार सुना है कि वानर जाति का पशु कही अपने मे से किसी एक के मारे जाने की घटना देख ले तो सभी वानर, उस स्थान को छोडकर चले जाते है। जहा मरा हुआ वानर पडा है, वहा दूसरे वानरो को दाना दिया जाय, जलेबी पूडी डाले जाय या विविध खाद्य वस्तुओ से ललचाये जाय, परन्तु वे लालच मे नही आयेंगे। ऐसा क्यो ? कारण वे समनस्क है, मन वाले हैं, अत परिणाम सोचते है। दूसरी ओर जल मे रहने वाली मछली, मन रखते हुए भी जागृति और चिन्तन शक्ति के अभाव मे, ठगी जाकर जाल मे मछुओ के द्वारा फसा ली जाती है और मार डाली जाती है। मछलियो को बारम्बार फसकर भी दुबारा फँसने का ध्यान नही आता। मगर बन्दर सहसा एक बार धोखा खाकर दुबारा नही फसता।

आप कौए को देख लो ! जब कभी कौआ लोगो को ज्यादा त्रास—दु ख देता है। औरते गोबर थापती है, कौए वहा जाकर उसे कुरेद देते है—बिखेर देते हैं, तो उससे शान्ति पाने के लिए किसी ने एक कौए को वहा मारकर ऊपर मे लटका दिया। अब एक भी कौआ वहा नही आता। क्योकि वह समनस्क है। एक कौआ मरा हुआ लटक रहा है तो दूसरे दूर-दूर से चिल्लायेंगे, मगर मरे हुए के पास नही जाएगे। वे समझते है कि इस जगह पर खतरा है।

परन्तु हम मानव वडे हौसलेदार है, हिम्मत वाले है कि भय की विनाश लीला देखकर भी उससे नही घवराते। प्रत्युत प्रतिदिन उसमे अपनी दिलचस्पी और अभिरुचि अधिकाधिक वढा रहे है। एक भाई ने शराब के ठेके पर शराब पीने की आदत लगाकर घर बर्बाद कर लिया। मगर दूसरे उससे सवक नही सीखकर, उल्टे उधर ही जोर लगाते देखे जाते है। ऐसे ही जूए एवं वेश्यागमन के पीछे किसी ने अपना सब कुछ नष्ट कर लिया। यहाँ तक कि रहने का मकान भी नही बचा पाया। वाल-वच्चे भूखे मर रहे है। वडी परेशानी और मुसीबत का सामना कर रहा है। फिर भी दूसरे उसी के रास्ते चलते और वहुत ही झूमझूम कर चलते है, इन गलत आदतो मे, बुरी कुटेवो मे।

एक मरे हुए कौवे को देखकर कौए तो उस स्थान को छोडकर भाग जाते है। क्योकि वे समझते है कि यहा हमारे भाई की—बन्धु की—हत्या हुई है। तो कही हमारी भी वही दशा न हो जाये! परन्तु मानव इतनी बुद्धि पाकर भी, हिताहित को जानते हुए भी, वही काम करता है, दुर्व्यसनो को नही छोडता और बर्बादी के कगार पर खडा हो जाता है एव बुद्धि को, विवेक को, ऊँची सूझ-बूझ को, अज्ञानता के, नासमझी के आवरण से ढक लेता है। कारण मनुष्य को बुद्धि का अहकार हो गया है। वह सोचता है कि मेरे पर कोई बुराई क्या असर करेगी?। उसका अन्तर्मन अहित मे हित देखता है। अत वह भव्यता के निकट नही पहुँचता और भव्यता के समीप पहुँचे बिना कल्याण और शान्ति की उपलब्धि भी नही कर सकता।

जिनदास एक बार मे ही प्रभु की वाणी को सुनकर जग गया। अपने कर्त्तव्य अकर्त्तव्य की परख मे निपुण-पारखी वन गया। दुर्लभ नरभव को ऊचा कैसे उठाया जाय तथा अपने को मोक्ष पद पर कैसे वैठाया जाय, इस वात को अच्छी तरह समझ गया।

## अहंभाव गले बिना विकास नही

मैंने कहा कि मिट्टी मे जल की धारा पाकर, जब तक बीज नही गलता, कोमल नही होता, तब तक उसमे से अकुर नही फूटता—विकास का आरभ नही होता। जब बीज गलेगा, तभी उसमे से अकुर फूटेगा। बीज की तरह आप मे भी ज्ञान वैराग्य का अकुर तभी प्रस्फुटित होगा, जबकि आपके अन्तर का अह गलेगा—मद द्रवित होगा। हुकूमत का अह, पण्डिताई का अह, जातिकुल का अह, रूप और गुण का अहरूप जो उन्माद है, आवरण है, वह जब तक अच्छी तरह से दूर नही हो जायेगा, नम्रता एव विनय का उदय नही हो जायेगा, तव तक ज्ञान का, प्रकाश का, वास्तविक अकुर नही निकलेगा।

अहकार ज्ञान-अकुर निकलने मे बाधक तत्व है। वह उसे प्रकटित नही होने देता। धर्म-साधना या जीवन उत्थान की कोई भी साधना हो, वह अहकार से सफल नही हो पाती। ज्ञान की ज्योति इसके चलते जगमगा नही पाती। वह भाग्यशाली प्राणी है, जिसका मन निर्मल हो गया है, अह का दलदल-कीचड धुल गया है। वीत-राग-वाणी का प्रभाव, जिसको प्रभावित कर दिया है, निश्चय उस आत्मा का ज्ञानाकुर प्रकट होना कठिन नही होगा। कठिनाई तो बस यही है कि अहंगले और अन्तर मे मार्दव भाव प्रगट होकर चेतना जागृत हो जावे।

ज्ञानाकुर यदि फूटता है तो हम देखते है, कि जो ससार के बडे-बडे भौतिक प्रपचो से दबे हुए थे। जिनके पास अमर्यादित परिग्रहो का दलदल जमा था। कषायो की तीव्रता से जीवन अस्त-व्यस्त और परेशान था। चाहकर भी जो सच्ची शान्ति पाने मे असमर्थ थे, मजबूर थे। उनके अन्तर मे भी ज्ञान की ज्योति जागृत हो गयी और शुभ-भावो का प्रकाश सब ओर फैल गया तथा ऐसा चिन्तन चला कि जीवन की दिशा ही बदल गयी एव दशा दिव्यतम बन गयी।

## सेवा और श्रीकृष्ण

भारतीय इतिहास मे श्रीकृष्ण अनजान और अज्ञात नही है। अन्तगडदशासूत्र मे आप सुन चुके है कि जब श्रीकृष्ण ने भगवान् नेमिनाथ से अपने श्रमणत्व—साधुता के लिए प्रश्न किया, जिज्ञासा की तो मालूम हुआ कि तुम श्रमण धर्म स्वीकार नही कर सकते—श्रमण पद से अपने को अलकृत नही कर सकते। भगवान् के मुखारविन्द से यह खरी और सच्ची बात सुनकर श्रीकृष्ण को बहुत अन्तर्दु ख हुआ। उन्होने सोचा कि मै साधना पथ मे इतनी कम योग्यतावाला हू। जालिकुमार, प्रद्युम्नकुमार आदि मेरे बच्चे, समय पर जग गये और साधना मे लग गये। बच्चो के जगने पर भी मैं पीछे रह गया। इसका उन्हे बहुत अफसोस हुआ—दु ख हुआ।

कई लोग मन मे भावना नही होते हुए भी, बाहर से अपने भावो को ऐसे प्रगट करते है, कि सचमुच मे उनकी भावना मे कोई दर्द हो। जैसे किसी गाँव मे एक बुढिया रहती थी। वह घर मे बच्चो के भूखे होते हुए भी, आदत वश नाश्ता चबा रही थी। खाते-खाते उसके मन मे आया कि देखनेवाले क्या कहेगे कि बुढिया खा रही है और भूखे बच्चे एकटक उसको देख रहे है। इसे जरा भी शर्म और होश नही है। इस लोकापवाद से बचने के लिए वह खाती हुई स्वय बोलती जाती कि झाडू मारे इस जीभ को। अरे! बच्चे भूखे है और यह खा रही है। बीच-बीच मे वह धिक्कार भी करे और खाती भी जाये। तो ऐसे भी कई माई के लाल मिलते है जो बोलते कुछ और करते कुछ और हैं।

कोई तपस्विनी बाई तपस्या कर रही है और घरवाले खा रहे है तथा बाहर घूमने को भी तैयार हैं। किसी ने इस पर कुछ कहा तो कहते हैं कि मेरी आत्मा को धिक्कार है, जो ऐसे सुन्दर तप के मौके पर ऐसा कर रहा हू। तो भाई! यह धिक्कार कैसा? क्या यह बोलने की एक शैली है या इसका कुछ अर्थ और भाव भी होता है? एक बार भी धिक्कार शब्द मन से निकले तो फिर वैसी प्रवृत्ति

करने मे सकोच होगा। परन्तु केवल हँसी के रूप मे, धिक्कार शब्द निकालना और उसी मे अपना सतोष मान लेना। कोई कहे कि हमसे सवर, सामायिक, स्वाध्याय, व्रत-नियम आदि कुछ नही होता। धिक्कार है मेरी आत्मा को। इस प्रकार अपने आपको धिक्कारते जाना और मन माना करते जाना इसका क्या मायना—क्या अर्थ है ?

श्रीकृष्ण को जब ऐसा मालूम हुआ कि वे श्रमण धर्म की शृ खला मे नही आ सकते और व्रत-नियम भी धारण नही कर सकते तो भगवान् के मुँह से अपनी असमर्थता की बात सुनकर उनके मन को बडी ठेस लगी। उन्होने सोचा कि यदि श्रामण्य-धारण नही कर सकूँ और न व्रत-नियम ही पाल पाऊँ, तो भी जीवन सुधार के लिए, धर्म प्रचार जैसा कुछ न कुछ सत्कर्म तो जरूर करना चाहिये। करुणानिधि भगवान् ने कहा कि धर्म करने के तीन रास्ते है—करना, कराना और अनुमोदन करना। शास्त्र की भाषा मे जिसे करण कहते है।

करण तीन प्रकार के होते है—स्वय करना, दूसरे से करवाना और करनेवाले का अनुमोदन करना। जैसे किसी के यहाँ पर घर मे अधिक सख्या मे मेहमान आ जाय तो कोई भी गृह-स्वामिनी स्वय रसोई बनाकर सबको नही खिला सकती। इसके लिए उसको दूसरे का सहयोग लेना पडेगा। सहयोग से समय पर काम हो जाता है। नही तो समय भी अधिक लगता, कुछ न कुछ त्रुटि भी रह जाती। इसी प्रकार त्रिविध योग से धर्म मे शक्ति लगाई जाय तो परिणाम अच्छा निकल सकता है।

यदि धर्म मे समय नही लगाया गया तो पाप मे तो शक्ति स्वय लगती रहेगी। चाहते हुए भी प्रवृत्ति होती और नही चाहते हुए भी। इस तरह पापो मे समय और शक्ति के लगने से नित्य कर्म बधते है। कौन ऐसा भाई है जो रविवार के छुट्टीवाले दिन मे घर पर चुपचाप बैठा रहता हो। निश्चय वह वहाँ कुछ न कुछ बोलेगा,

हाथ पैर हिलायेगा, कुछ सोचेगा –समझेगा, खाएगा, पिएगा, घूमेगा और भी चाहे जो कुछ करेगा। इस प्रकार उसके ये चौबीस घंटे विषय-कषाय मे गए। यदि वह सोचे कि नौकरी पर होता तो दस ग्यारह बजे जाता और पाँच बजे वहाँ से वापिस छूटता। तो नौकरी से बचे इस समय का मुझे सदुपयोग करना चाहिये।

अगर आपको अवकाश के दिनो मे भी लोक व्यवहार करने को मिहनत करनी पडती है, तो क्यो नही धर्म कार्य मे, बुद्धि का उपयोग करें ? अपनी साधना के लिए, समाज सेवा के लिए, शासन-सेवा के लिए इस अवकाश के दिन को, सार्थक बनाया जाये। ससार मे सिर पर जैसे माँ-बाप का ऋण होता है, वैसे ही धर्मदेव व गुरु का भी प्रत्येक मानव पर कर्जा होता है। हमने जो थोडे बहुत पवित्र सस्कार प्राप्त किये हैं, सभ्य मानव की भूमिका पायी है, इनमे धर्म गुरुओ का और शासन देव तीर्थंकर भगवान् का, हमारे ऊपर महान् उपकार है। लाखो की सख्या मे जैन लोग, बहुत से मोटे पापो से बचे हुए है। चोरी, हत्या, अभक्ष्य भक्षण जैसी बुरी आदतो से बाल्य-काल से बचे रहना, यह गुरुओ का उपकार है। तो फिर गुरुभक्ति मे, शासन सेवा मे यदि कुछ समय नही दे, धर्म की रक्षा एव वृद्धि मे योगदान नही करे तो देवगुरु के ऋण से मुक्ति मिल सकेगी ? छुट-कारा मिल पायेगा ? नही।

कृष्ण ने सोचा कि मै स्वय व्रतधारण नही कर सकता—नियम नही पाल सकता तो क्या सेवा भी नही कर सकता हूँ ? क्या धर्माचरण के लिए प्रेरणा भी नही दे सकता ? या बुरे काम करनेवालो को रोक भी नही सकता हूँ ? सेवा का क्षेत्र विस्तृत है और मेरी शक्ति भी बडी है—विस्तृत है। मेरे हाथ भी लम्बे हैं और वाणी भी दूर तक फैलनेवाली है, क्यो न इनमे अनुकूल कार्य की साधना की जाये ? श्रीकृष्ण ने नशाबदी कर यादवो को दुर्व्यसन से बचाया। हजारो को त्याग मार्ग मे प्रेरित कर सहयोग दिया। त्याग मार्ग मे लगनेवालो की प्रशसा की—प्रोत्साहित कर महान् धर्म लाभ प्राप्त कर लिया।

आज मुहल्ले मे कई लोग स्वय भी ताश, चौपड एव शतरज खेलने मे लगे है तथा बच्चो को भी खेलने के लिए प्रेरित करते है। ऐसे ही गेद तथा दूसरे-दूसरे खेलो मे भी स्वय प्रवृत्त होकर, दूसरो की भी प्रवृत्ति बढाकर, उन्हे कर्म बँध के काम मे लगाते है। इसके लिए उन्हे धर्म कार्य मे लगाये तो कितना अच्छा हो ! उनमे सुसस्कार पडेगे और स्वपर का कल्याण होगा।

## जीवन और प्रमाद

अरे ! आदमी का समय यो ही, व्यर्थ के काम मे चला जा रहा है। प्रभु ने कहा—"उट्ठिए नो पमायए।" मानवो ! उठो, प्रमाद मत करो। तुम समनस्क होकर, थोडा-सा चिन्तन पाकर जरा उठे हो तो अब प्रमाद त्याग दो। यदि प्रमाद करोगे तो पिछड जाओगे। बडी-बडी शक्तियाँ मनसूबे बाँधती रह गयी, मगर प्रमाद के चलते, उनसे कुछ भी नही हो पाया। वे जहाँ थी, उनसे भी बहुत पीछे आ गयी। तो भला ! साधारण शक्ति और बुद्धिवाले तुम प्रमादी बनोगे तो तुम्हारा क्या होगा ? किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

**"कहा वे राम और लक्ष्मण, कहा रावण से बलधारी।**
**कहां हनुमान से योद्धा, पता जिनके न था बल का ॥**
**मुसाफिर ! क्यो पड़ा सोया, भरोसा है नही पल का।**
**दमादम बज रहा डका, तमाशा है चलाचल का ॥"**

अनुभवी सतो ने कहा कि—जीवन कितना चचल और क्षण-भगुर है। जीवन की चचलता के बारे मे नित्य आप अपने नगर के बाहर के प्रान्तो के, देश विदेशो के किस्से सुनते हो। आए दिन समाचार पत्रो मे पढते रहते हो कि कभी कोई हवाई जहाज को जरा दिशा सूचन मे गफलत हो गई, पायलट-चालक गुमराह हो गया—भटक गया, यत्र मे खराबी आ गई अथवा मौसम की अन्य खराबी हो गई तो आकाश मे हवाई जहाज जमीन पर गिर जाती और उसमे बैठे यात्री लोग अकाल मे ही काल के ग्रास बन जाते है। ऐसे

ही रेल, मोटर, वस, स्कूटर आदि यान्त्रिक सवारी मे खतरा हो जाने से से बहुत लोगो की मृत्यु हो जाती है। जीवन का ऐसा दर्द-नाक नाशवान् चलचित्र ससार मे सदा दिखाई देता है।

आप रजत पट पर चलचित्र क्या देखते हो ! अपने घर मे, गलियो मे और मुहल्लो मे ही घटित होने वाले इन चलचित्रो को देखो और सोचो कि इस क्षणभगुर जीवन के भरोसे पर हम जो मसूबा बाध रहे है कि बच्चो की शादी करलू, घर गृहस्थी को ठीक ठिकाने लगा दू तो फिर निश्चिन्त होकर धर्म करूगा। अरे ! ऐसे विनश्वर जीवन मे ये मसूवे कहा तक पार पडेगे ? खाली मसूवा कुछ काम नही करता।

आज समाज के सम्मुख यह प्रश्न खडा है कि भावी पीढी मे धार्मिक परम्परा को अक्षुण्ण रखने के लिए कौन काम करे ? राज-नैतिक क्षेत्र मे काम करने वाले को सम्मान और कीर्ति दोनो प्राप्त होते। पर इधर धार्मिक कार्य मे सेवा और पुण्य लाभ के अतिरिक्त तो कुछ मिलने का है नही। फिर भला ! बदनामी उठाकर, धार्मिक क्षेत्र मे काम करने को कौन आवे। धार्मिक सेवा से सैकडो की धर्म प्रवृत्ति का प्रत्यक्ष लाभ देख कर भी, लोगो का एक ऐसा स्वभाव हो गया है कि वे भौतिक लाभ को ही लाभ मानते है। धर्म लाभ एव तप त्याग के लाभ को नही देखते। धर्म क्षेत्र मे लोकोत्तर लाभ मिलता है, कर्म कटते है। हजारो लोग हमारे निमित्त से प्रेरणा पाकर, सहयोग पाकर धर्म मार्ग मे लग सकेगे, व्यसन छोडेगे तो यह कोई साधारण लाभ नही है। परन्तु उस ओर ध्यान नही जाता और लोग भौतिक लाभ के पीछे उस महालाभ को भूल जाते है।

**बडो के आगे रहने का प्रभाव**

श्रीकृष्ण के उदाहरण से आप समझ गए होगे कि एक बडा आदमी धर्म कार्य मे आगे होता है तो हजारो आदमी प्रभावित होते हैं। साधारण लोगो का यह स्वभाव होता है कि नगर नायक या

उद्योगपति धर्म कार्य मे आगे आता है तो उसके पीछे और कई तैयार हो जाते है। समाज का शुभोदय है कि राजस्थान हाई कोर्ट के न्यायमूर्ति सोहननाथ मोदी जैसे व्यक्ति स्वाध्याय सघ के सचालन मे रस ले रहे है। समाज के अन्यान्य श्रीमान् और धीमान् भी इस तरह धार्मिक कार्य मे स्थान लेने लगे तो अल्पकाल मे धर्म का अभ्युदय हो सकता है।

श्रीकृष्णजी ने नवकारसी, पौरसी भी नही की और न कभी पौषध किया। सामायिक भी नही की। परन्तु हजारो सामायिक करने वाले खडे कर दिए। त्याग, नियम, व्रत करने वाले तैयार कर दिए। भगवान् नेमनाथ के शासन की सराहनीय सेवा की और सैकडो दीक्षा लेने वाले खडे कर दिए। जैसे जीवन के अन्य क्षेत्र के दलाल बने वैसे धर्म के भी दलाल बन गए। फलस्वरूप तीर्थंकर पद के अधिकारी हो गए। उन्होने धर्म सेवा के बल पर यह कितना बडा लाभ मिला लिया। आज भी समाज मे ऐसे धर्म दलालो की, कार्यकर्त्ताओ की आवश्यकता है जो समाज को सुव्यवस्थित, सुसगठित और ज्ञान क्रिया मे समृद्ध बना सके—शासन को जगा सके।

मुझे याद है कि यहा पर एक बडे मिया साहब थे। वे पचहत्तर वर्ष के वूढे थे। वे यदा कदा यहा आते रहते थे। एक बार वे कुछ दिनो तक नही आए तो मैंने पूछा कि मिया साहब आजकल दिखाई नही देते ? पता चला कि धर्म प्रचार के काम से बाहर गए हुए है, उनके आने पर मालूम हुआ कि वे किशनगढ के आस पास मे प्रचार कर आए हैं। उन्होने बताया कि हम लोगो ने कुछ कौमी सेवा का कार्यक्रम बनाया है। आजकल के नौजवान इबादत मे बराबर भाग नही लेते। उनको तैयार करने के लिए दो आदमी गली गली मे घूम कर, नही आने वालो की सूची बनाते। दूसरे दो आदमी घर घर जाकर उन नौजवानो को हिदायत करते। फिर तीसरे दल वाले यह मालूम करते कि वे नौजवान बराबर आ रहे है या नही ? मैं इसी

सिलसिले बाहर गया था। सोचा, जो हो सके कौम की उतनी खिदमत तो कर लू ँ।

मिया साहब की सुनी अनसुनी करने वाली नही वरन् जगाने वाली और आख खोलने वाली है। जिनके घर मे भरपूर पैसा नही, खाने पीने की प्रचुर सामग्री नही, वह बुढापे मे भी गफलत मे पडे नवजवानो को जगाता है, कौम की खिदमत करता है। पर आप सबके कानो पर जू तक नही रेगती। जैन समाज के पास मे सब प्रकार के साधन है, वह यदि धर्म के लिए ऐसी सेवा करे—प्रमाद त्याग कर कार्य करे तो कितना लाभ हो सकता है।

**पैसे तो मिलते पर समय देने वाले नहीं**

आज हमारे यहा के बूढे हथाई करते है, समाज मे लडाई-झगडा करा देते मगर इन कामो मे हाथ नही देते। कहने पर बताते है कि क्या करे? एक तो समय नही मिलता और दूसरा कोई हमे पूछता भी नही है। काम के लिए कहे भी तो काम नही करे, मगर पूछने की इच्छा प्रबल बनी रहती है। ऐसा क्यो? अगर आप पूछने की इच्छा रखते है तो औरो की व्यवस्था देखकर, अन्य धर्मावलम्बियो की कार्यपद्धति देखकर, इस क्षेत्र मे यथासभव अपना समय तो दीजिए। अभी भी बहुत समय है, कुछ अधिक नही बिगडा है। पैसा देने वाले फिर भी मिल जायेगे किन्तु समय देने वाले नही, इसे नही भूले।

हमारे कुछ स्वाध्यायी बन्धु इस प्रकार की सेवा देने के लिए तैयार हुए है और उनकी लगभग एक हजार के करीब सख्या होने जा रही है। जो गुलाबपुरा और जोधपुर सम्यग्ज्ञान प्रचारक मडल के आश्रित है। अब सही ढग से उनकी कैसी व्यवस्था की जाये, कैसे उनका विकास किया जाये तथा धर्म क्षेत्र मे उनकी क्या सेवा ली जाये इस विषय मे सबको सोचना है। चाहे जयपुर के भाई हो या अजमेर के, युवको को इस दिशा मे आगे लाने के लिए, सबका दायित्व है,

जिम्मेदारी है। अत इस कार्य मे सबको आह्वान है, आमन्त्रण है। छोटो को सभालिये, भूले विसरो को राह पर लाइए, समाज की कायापलट कीजिए धर्म की पताका को फहराइए और जैन शासन का घर-घर मे प्रचार प्रसार कीजिए। इस प्रकार से भगवान् महावीर के शासन की सेवा की तो आपका इस लोक और परलोक मे कल्याण होगा।

●●

८

# वीतराग-वचन का प्रभाव

### कथा और उसके भेद

बन्धुओ! अभी शास्त्र का जो प्रसग चल रहा है, इसमे प्राचीन ऐतिहासिक कथाये है, कुछ पूर्वकालीन झाकिया है। कथाओ के प्रति जन-मन मे विशेष अभिरुचि और इच्छा रहती है। तरुण और वृद्ध तो क्या? बच्चे तक कथाओ मे गहरी दिलचस्पी दिखाते है। कथाओ का सुनना प्रारभ कर वे उसका अन्त किये विना छोडना नही चाहते। यही कारण है कि भारतीय सस्कृति मे कथा को अधिक महत्व मिला है। ऊची से ऊची वात या गूढ से गूढ पहेली तक कथा के माध्यम से सरलता पूर्वक हृदयगम करायी जा सकती है। अनपढ, अनजान एव कर्तव्य-विमुख राजपुत्रो को विष्णु शर्मा ने कथा के द्वारा ही नीति शास्त्र मे निपुण और पारगत वनाया था।

कथाये दो प्रकार की होती हैं—एक तो उदाहरण के रूप मे, नसीहत के रूप मे प्रयोग की जाती है और दूसरी ऐतिहासिक—इतिहास से सम्बन्धित होती है। जिसका प्रयोग तात्कालिक लोक दशा के साथ, नसीहत-शिक्षा के लिए भी किया जाता है। इन्ही को आख्यान और उपाख्यान भी कहा जाता है। विपाक सूत्र की चालू कथाये उपाख्यान के रूप मे नही, वरन् आख्यान के रूप मे भी है। उपाख्यान का रूप ज्ञाता-धर्म-कथा मे मिलता है। परन्तु विपाक सूत्र का कथानक-ऐतिहासिक-आख्यानपरक है। उसके साथ मे शिक्षा प्रदान का काम भी करता है। आख्यान घटित घटना या सीधी कथा को कहते है और उपाख्यान उससे जुडने वाली छोटी कथा को। दोनो का कार्य लोक जीवन के मध्य अतीत की झाकी का दर्शन करा, उनसे नसीहत—शिक्षा प्राप्त कराना तथा जीवन को सत्य पथ पर ले चलना है।

**वीतराग-वाणी का प्रभाव**

शास्त्र का एक-एक शब्द साधक के लिये गहराई से चिन्तन के योग्य होता है। क्योकि न तो ये शब्द आसानी से सुनने को, न पढने को और न चिन्तन को ही मिलेगे। और बहुत से ग्रन्थ आप सुन लेगे, पढ लेगे, परन्तु वीतराग वचनो का सम्पर्क सद्भाग्य से ही प्राप्त होता है। कारण इन शब्दो मे राग के जहर को कम करने की खूबी है—द्वेष के दर्द को दूर करने की क्षमता है। रागियो की वाणी राग का रोग बढाती है, और वीतराग की वाणी उसे दूर हटाती है। जब राग का जहर घटेगा, तभी मानव-भक्ति मार्ग की ओर अधिक अग्रसर होगा। और इन्द्रिय, मन की स्वच्छन्द प्रवृत्ति के कारण मनुष्य का जो कुमार्ग की ओर कदम था, आगे बढने की इच्छा थी, राग के घटते ही उसकी वह दृष्टि वदल जायेगी। और त्याग-विरागमय वृत्ति के निर्माण से उसका मन सलग्न हो उठेगा। फिर उसे कभी किसी तरह की अधिक प्रेरणा की आवश्यकता नही पडेगी।

प्रेरणा की आवश्यकता तभी तक पडती है, जब तक कि उसे वस्तुस्थिति का ज्ञान नही होता। वस्तु को यथार्थ रूप से समझने और स्वभाव मे लगी वस्तुओ को छुडाने के लिए उपदेशको को कुछ कहना पडता है। मार्गदर्शन कराना पडता है। वस्तुस्थिति का वोध होते ही, विजली के तार की तरह ज्ञान का एक खटका सारे रागात्मक सम्वन्धो को झटककर दूर कर देता है, छुडा देता है।

सुवाहुकुमार आदि ने वीतराग वाणी का श्रवण किया। और उनके अतर्मन मे ज्ञान की ज्योति जग गयी—प्रकाश चमक उठा। जब ज्ञान का प्रकाश जग उठा तो उनको मार्ग वदलते कुछ भी देर नही लगी और देखते ही देखते भोग से योग के साधना पथ पर दृढतापूर्वक चल पडे।

मार्ग नही वदलने का और नही छोडने का यही कारण है कि उसमे कोई खास आकर्षण प्रतीत हो रहा है, किसी विशेप लाभ की

सभावना जचती है। नही तो मार्ग की भयकरता दिखते ही यात्री रास्ता बदल देगा, या चलते-चलते चूर-चूर हो गया हो या जरूरत से अधिक थक गया हो तो मार्ग छोड देगा। कोई भी यात्री जब यह जान लेता है कि इसके आगे भय है, खतरा है, जान माल और इज्जत को धक्का है तो वह एक कदम भी आगे नही बढेगा। जहाँ है वही रुक जायेगा या अति शीघ्र रास्ता बदल देगा। उसको कुछ कहने की जरूरत नही पडेगी। केवल सुन लिया है कि आगे गोली चल रही है या शेर बैठा है, आगे जाने वालो के जान की खैर नही है तो वह कदापि आगे नही जायेगा। ऐसे ही बाढ आयी हुई है, आगे रास्ता बन्द है, तब भी वह गति मोड लेगा। कहिये ! वह गति मोडेगा या चलता रहेगा ? नही चलेगा। क्योकि मार्ग का भय यात्री के उत्साह को मन्द कर देता है तथा थकान भी गति रोक देती है, रुकने को विवश कर देती है।

**संसार मे दो मार्ग**

ज्ञानियो ने दो प्रकार के मार्ग बताये है एक भव मार्ग और दूसरा शिव मार्ग। सीधे शब्दो मे कहे कि एक ससार का मार्ग और दूसरा मोक्ष मार्ग। एक शान्ति का मार्ग और दूसरा भ्रान्ति का मार्ग। परन्तु प्राणी अनन्त-अनन्त काल से भव मार्ग याने दुख एव भ्रान्ति के मार्ग से ही चल रहा है। विषय, कषाय, भोग और प्रमाद वाले ससार मार्ग से चलते हुए भी वह मुडता नही है, दुख सहकर भी रुकता नही है।

मैं कह चुका हूँ कि मुडेगा वही जो चलते-चलते थक जायेगा, भटकते-भटकते ससार सागर मे गोते खाते-खाते ऊब जायेगा। लडाई भी वही आदमी बन्द करता है, जो लडते-लडते थक जाता है अथवा लडाई का दुष्परिणाम समझ जाता है। आज थककर लडाई बन्द करने वाले, ज्यादा मिलेगे। परन्तु समझकर, होशपूर्वक बन्द करनेवाले कम मिलेगे। ससार मे जितने भी लडने वाले है वे छोटी-बडी लडाई लेकर कचहरी तक गए और हार गए तो बैठ गए, लडना छोड दिया।

यह सोचकर कि जाति, धर्म, एव समाज की लडाई से हानि होगी, पैसे की हानि होगी, इस ज्ञान भाव से कोई भी रुकना नही चाहता। मजबूरी से जो भी करना पडे, बात अलग है।

जैसे सासारिक राड तकरार की बात है, ऐसे भव रोग की भी बात है। भगवान् ने कहा कि—मानव ! मार्ग बदलने की जो दो बाते है, उनमे थककर तो अज्ञानी भी बदलता है और बाह्यभोगो का त्याग करता है परन्तु अज्ञान से बदला हुआ मार्ग, कर्म निर्जरा का मार्ग नही होता है।

क्रोध, लोभ या अहकार भाव मे घर-बार और परिवार का त्याग करना भी मोक्ष मार्ग नही है, यह सब भव मार्ग है। विषय कषाय-वश त्याग करना भवमार्ग है। वासना का शमन कर ज्ञान भाव से त्यागना ही भव बधन काटने वाला शिव मार्ग है। बहुत से लोग मिलते है जो परिवार मे शान्ति नही रही, घर मे कलह हुआ तो घर छोड दिया और बन मे जाकर बस गए। सब कुछ छोडछाड कर बाबाजी बन गए। वे त्याग का महत्व समझकर त्यागपूर्वक साधु नही बने। परन्तु झगडे से ऊब गए और थक गए तो माया से अलग हो गए।

**दुर्लभ मानव भव एव भवप्रपच**

ससार के दु खो से थककर भी आदमी हटता है। परन्तु आश्चर्य तो तब होता है, जब आधि, व्याधि, उपाधिरूप त्रिविध तापो से प्राणी अनन्त काल से थपेडे खाते भी थक नही पाता और समझ भी नही पाता यदि मानव जन्म जैसा सुन्दर अवसर पाकर भी यह बोध नही किया और केवल बाहरी वृत्ति की ओर ही चलता रहा जैसा कि मुनि हीरा जी ने अभी आप सबको सुनाया बहिर्भाव के सम्बन्ध मे। मानव भव मे उसकी ऐसी दृष्टि रही, यदि इस दृष्टि को बदल दे तो अगले जन्म की सृष्टि बदल जायेगी। भगवान् महा-

नही मभलनेवाला अच्छा अवसर पाकर भी कैसे चक्कर खाता है, गोते खाता है, यह प्रभु ने अपने पूर्वभवो के कुछ उदाहरणो से बताया कि मैने एक नही बीसो जन्म तक तप किया, योग किये, साधनाये की परन्तु तब जाकर सभला जब मुझमे आत्मभाव आया, ज्ञान आया। जब तक ज्ञान की प्राप्ति नही हुई तब तक बराबर भटकता ही रहा।

## प्रभु का जीव विश्वभूति के रूप मे

पुराने भवो की कुछ परम्परा सुनाते हुए बताया गया था कि ब्राह्मण और स्वर्ग के भव करते-करते सोलहवे भव मे महावीर के जीव ने राजगृह के एक राजकुल मे जन्म लिया। वे राजकुल मे युवराज के पुत्र रूप मे उत्पन्न हुए। राजपुत्र नही होने से राज्य पाने का अवसर नही रहा। परन्तु मन मे सतोष था कि कोई राज्य पाकर ही सुखी नही होता है। सुख का सम्बन्ध मन से है, अपने आपको समझने मे है।

विश्वभूति ने विचार किया कि राजपुत्र नही होने पर भी मुझको कुछ भी कमी नही है, बल्कि ज्यादा आराम है। हुकूमत करनेवाले ज्यादा तकलीफ मे है। मैं तो अपने बाल-बच्चो के सग उपवन मे आराम से हू, शान्तिपूर्वक बैठा हू, कोई खटपट नही है। ऐसा सोचते हुए विश्वभूति का जीवन आनन्दपूर्वक बीत रहा था।

## विश्वभूति के सुख से राजपुत्र को ईर्ष्या

इधर राजकुमार को राज्य ऋद्धि का सुख था। भविष्य मे सिर पर पडनेवाने राजमुकुट का गर्व तथा प्रताप का हर्ष था। फिर भी अपने भाई विश्वभूति का सुख उसको अच्छा नही लगा। दासियो के मुँह से उसका सुख वर्णन सुनकर, उसके हृदय मे तीर की तरह चुभ गया। कैसे मैं उस सुख को प्राप्त करूँ इसके लिए वह बेचैन हो गया। उसने पिता के सामने अपने दु ख का वर्णन किया।

राजा ने सोचा अगर पुत्र का दुख नही मिटा पाया तो मैं राजा किस काम का ? मगर समस्या टेढी थी। विश्वभूति भी कोई दूसरा नही था। भाई का पुत्र था। स्पष्ट रूप से ऐसी बात उससे कहने की हिम्मत राजा की नही हो रही थी। हारकर उन्होने मन्त्रियो से इस सम्बन्ध मे कुछ उपाय निकालने को कहा।

मन्त्रियो ने चालबाजी से एक कृत्रिम उपाय बनाया और दूत के द्वारा राजा को खबर करायी कि महाराज ! राज्य की सीमा के बाहर पडोसी राजाओ का उपद्रव बढ गया है। वे आपके राज्य को हडपना चाहते है। सीमा तोडकर अपनी सीमा मे मिलाना चाहते है। उनका मुकाबिला होना चाहिये, सीमा पर सेना से सेना का सामना होना चाहिये। जितना शीघ्र हो सके उन पर विजय प्राप्त कर, हमेशा के लिए यह काटा हटा देना चाहिये। दूत की बात सुनकर राजा ने हुक्म दिया कि शत्रुओ पर शीघ्र चढाई करो। हम युद्ध करेंगे और उनको भगायेंगे। मैं स्वय युद्ध के मोर्चे पर चलूँगा।

## युद्ध और विश्वभूति का कर्तव्य-बोध

युद्ध के इस खबर की हवा चारो तरफ फैल गयी। आराम मे समय बिताते हुए विश्वभूति के कानो तक भी यह खबर पहुची। उसके मन मे बडे और पूज्य पुरुषो के प्रति बडा सम्मान था। उसने सोचा कि मेरे पिता के तुल्य महाराज विशाखनन्दी, राज्य की सुख-शान्ति के लिए युद्ध मे जावे और मैं बैठा रहूँ तो मेरे बल, शक्ति और कौशल जो युद्ध मे विजय दिला सकते हैं, वे किस काम के ? उन्होने सोचा कि बडो के सामने कोई परिश्रम का काम आवे तो छोटो को उसमे हाथ बँटाना चाहिये। सेवा और श्रम के काम मे आगे आना तरुणो का काम है।

भारतीय सस्कृति यह बताती है कि बच्चा जब समर्थ हो तो अपने से बडो को निज शारीरिक श्रम से राहत दिलावे, अपेक्षित सहयोग करे। और यदि ऐसा नही करता है तो वह अपने कर्तव्य से

च्युत होता है। विश्वभूति के मन मे यह विचार हुआ कि इस अवसर पर मैं सेवा करूँ। इस विचार से वह तुरन्त तैयार होकर, पितृ तुल्य राजा विशाखनन्दी के पास पहुँचा और बोला कि—स्वामिन्! सुनने मे आया है कि आप युद्ध मे जा रहे है। महाराज! हमारे होते आपको युद्ध मे जाने की क्या जरूरत है? क्या हम इतने कायर और कमजोर है या इस योग्य नही है कि शत्रु से सामना कर सके? इससे तो हमारी बदनामी और आपकी कमी दिखेगी। हमारा फर्ज है कि ऐसे छोटे-मोटे काम को हम स्वय हल करे और आप जैसे बुजुर्ग को कष्ट न झेलने दें। कोई बडा काम हो तो आपश्री पधारे।

राजा भी यही चाहता था कि इसके युद्ध मे जाने से बगीचा खाली हो जाये। इस तरह अनायास ही मेरा पुत्र बगीचा पाकर खुश हो जायेगा। बगीचा एक है और उस पर नजर दो की है। इसका पार तो इसी रूप मे पाया जा सकता है। सयोगवश मेरी इच्छा पूरी हो गई, खुशी की बात है।

•

**विषमता गृह कलह का मूल**

किसी भी सयुक्त परिवार मे, कलह का प्रारम्भ तभी होता है, जब उसमे विषमता घर करने लगती है। पारिवारिक ढाचा जब स्वार्थ से चरमरा जाता तो वहाँ कलह बढ जाता है। परिवार के मुखिया को अपने घर के सदस्यो की इच्छा पूर्ति करने के लिए, बडी बुद्धिमानी से काम लेने की आवश्यकता है। यदि थोडा-सा भी उनमें विषम व्यवहार दिखा तो घर मे कलह और तकरार हो जाती है। आज घर-घर में लडाई, कलह, विग्रह क्यो होते हैं? कभी-कभी यह देखने मे आता है कि एक वस्तु के दो दावेदार हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में वहाँ सामजस्य स्थापित करने के लिए, समझौते से काम लिया जाता है।

समझानेवाले को यह ध्यान रखना जरूरी है कि जिसको जिस वस्तु की आवश्यकता है—उसको उस वस्तु के अभाव से कोई कष्ट

न हो। और सामने वाले के मन मे यह शक नही हो कि मेरे प्रति कोई पक्षपात हो रहा है। सग्लभाव से केवल विवाद मिटाने और कलह टालने की भावना से, वडा से वडा झगडा भी हल हो जाता है। परन्तु राजा ने इस पद्धति से काम नही लिया। उसने छल के सहारे से काम निकालना चाहा।

**धर्म एवं मैत्री मे कपट का स्थान नही**

याद रहे कि मित्रता मे सरलता चाहिये। कपट से मित्रता नही रहती है, टूट जाती है। वह चाहे पिता पुत्र मे, गुरु शिष्य मे, स्वामी सेवक मे, साथी-साथी के बीच या दो भागीदारो के बीच मे हो। यदि आपस मे सम्बन्ध को बनाये रखना है, तो कपट नही होना चाहिये। हमारे यहा धर्म का तो खास कर निवास ही ऋजुता मे माना गया है। जहा सरलता नही वहा धर्म भी नही है। शास्त्र मे कहा भी है—"माया मित्ताणि नासेइ" कपट से मैत्री भाव का नाश होता है।

धर्म के दो पाये है, एक आर्जवभाव और दूसरा मार्दवभाव। जिन्हे विनय और सरलता कहा है। विनय और सरलता जहाँ है, उस कुटुम्ब मे, गाँव मे, नगर मे, राष्ट्र और जाति मे, धर्म टिक सकता है। और जहाँ इसका अभाव है, वहा धर्म नही रह सकता। सासारिक कारण से कोई व्यक्ति भले यहा कम आवे, भक्ति का व्यवहार कम करे, परन्तु मन से यदि सरल है तो उसके रास्ते पर लगना और चलना अधिक कठिन नही होगा। सरल मन होता है तो गाढ से गाढ विपमता के कारण भी दूर हो जाते है।

भगवान् महावीर ने उत्तराध्ययन सूत्र के तीसरे अध्ययन मे कहा है कि—"सोही उज्जुय भूयस्स, धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई"। याने धर्म को टिकाना है तो सबसे पहले मन को सरल और शुद्ध बनाओ, कपट को छोड दो। समाज, सघ या व्यक्ति कोई भी हो, आगे वढने के लिए यह जरूरी है कि प्रथम तो मन की ऋजुता—सरलता हो

और दूसरे मे विनम्रता हो। सरलता और विनय वाला व्यक्ति अपने आपको आगे बढा सकता है। महावीर के जीव विश्वभूति ने उठे प्रश्न का हल कैसे किया, इसकी अधिक चर्चा आगे होगी। अभी तो यही कहना है कि महावीर ने अपना सारा कार्य हल कर लिया। वे अपने सारे बन्धनो से मुक्त हो गए—यह तो भूतकाल की घटना है।

**सत्सग का प्रभाव**

आज जिस रूप मे ससार का चक्र चल रहा है, सब ओर विषमताए फैल रही है, छल कपट का बाजार गर्म है, भाई-भाई की जान का दुश्मन हो रहा है, स्वार्थ परमार्थ पर हावी हो रहा है, इस दु स्थिति को दूर करने के लिए सत्सग के प्रचार की महती आवश्यकता है। सत्सग क्या करता है ? सतो के पास क्यो आते है ? सतो को अपने यहा क्यो बुलाते है और सतो की सेवा मे आना जाना क्यो करते है ? आदि प्रश्नो के पीछे एक बात पकडनी चाहिये कि खेत साफ होता है, नरम होता है तो उपजाऊ जमीन मे, पैदावार चौगुनी होती है। क्षेत्र छोटा हो या बडा मगर उसमे सरलता होनी चाहिये। ऊबड-खाबड न हो। अजमेर, जयपुर, जोधपुर आदि बडे नगरो मे ही धर्म की उपज अधिक होती है, ऐसी बात नही। सरलभाव हो तो छोटे-छोटे खेडे भी वह काम कर डालते है, जो बडे नगरो मे भी नही हो पाता है। जीवन मे यदि सरलता आ जाये तो बहुत कुछ बन जाता है।

अजमेर मे सतो का चातुर्मास होने से गाँव-गाँव के लोग सतो की सेवा मे आते है। जिससे सघ को अनेक कार्यकर्ताओ के परिचय का अवसर मिलता है। आप जानकर प्रसन्न होगे कि गाँवो मे भी काम करने वाले होते है। आज एक छोटे खेडे लासलगाँव के श्रावक यहा दर्शनार्थ आए हुए है। प्रेरणा की दृष्टि से मैं थोडा इस छोटे गाँव का परिचय देता हूँ। हम लोग दक्षिण महाराष्ट्र से पीछे लौट कर ९९ के साल मे लासलगाव पहुँचे। हमारा वहाँ कोई परिचय नही था। हमारे साथ बाबा सुजानमलजी म० भी थे। लोगो ने

दर्शन किए और व्याख्यान सुना तो उनका मन हुआ कि इन सतो का हमारे यहा चौमासा हो जाये तो अच्छा है।

महाजनो की ३०-३५ दुकाने और मात्र ५०० घरो का खेडा, परन्तु लोक सरल और सेवाभावी थे। गाव मे थोडा-सा सामाजिक विवाद था। मगर इन्होने सोचा कि आपसी कलह से चौमासा नही होगा। और पारस्परिक बातचीत से विवाद मिटा दिया। किसी को खबर तक न होने दी। सबका प्रेम और शान्त वातावरण का क्षेत्र देखकर हमने चौमासा मजूर कर लिया। लोगो ने बडी लगन से सेवा की। महावीर जैन स्कूल चल रहा था। एक छोटा-सा छात्रालय भी था। लोग शिक्षा का उपयोग मानते थे। अन्य लोगो की इच्छा थी कि जैन समाज का हाई स्कूल न हो। सरकार की ओर से हाई स्कूल चल भी रहा था। फिर भी जैन तरुणो ने परिश्रम से जैन हाई स्कूल चालू कर दिया। आज वहा छात्रावास मे १५० सौ बालक शिक्षण के लिए वास करते है। धर्म शिक्षा के लिए भी एक मास्टर है। गाँव के शान्त वातावरण मे हमने साप्ताहिक मौन चालू किया जो आज तक चलता है। गाँव वाले भी आज तक धर्म स्थान को खुला रख कर प्रात सध्या सामायिक और पौषध की साधना चला रहे है, प्रमोद की बात है। हर क्षेत्र मे इस प्रकार सतो के उपदेश को स्थायित्व दिया जाय तो सघ अल्पकाल मे ही उन्नत दशा को पा सकता है।

चातुर्मास के वाद से अभी तक किसी भी क्षेत्र मे इनके यहा सुषुप्ति नही आयी है प्रमाद नही छाया है। मुश्किल से करीबन एक दो साल खाली रहे होगे। अन्यथा हर साल चौमासा करा रहे है। मिडिल स्कूल से कालेज हो गया है। आज जैनियो के घर भी अस्सी और सौ के बीच हो गए है।

लासलगाव मडी का स्थान है। यहा बाहर गावो की दो तीन सौ गाडिया, नित्य माल वेचने को आती हैं। पहले भी गाडिया आती थी, किन्तु व्याख्यान के बीच कोई भी जैन बन्धु मडी मे नही जाता

था। रविवार को हाट भरती है, दुकाने लगती है। बाजार के सर्वे-सर्वा मारवाडी लोग ही है। इसलिए ये जब तक नही जाये, तब तक गाडिया रुकी रहती है, और सब दुकान भी बन्द रहते है। तो इतर समाज पर इन सबका ऐसा प्रभाव पडा हुआ है। मतलब यह कि इन्होने सरल मन से धर्म को ग्रहण किया तो आज व्यवहार मे, धर्म मे, शिक्षा मे, जीवन के सभी क्षेत्रो मे ये आगे बढे हुए है। छोटे-छोटे पुस्तकालय और वाचनालय भी चलते है। अन्य भी कई सास्कृतिक-कला केन्द्र हैं, जिन सबसे कस्बा दिन-दिन उजागर बन रहा है।

### अजमेर और लासलगाव

आज लासलगाव की चर्चा का मुख्य मतलब यह है कि ३०-३५ घरो वाला, ऐसा छोटा सा गाव तरक्की कर सका। फिर पैंतीस पर एक बिन्दी लगा दीजिए तो साढे तीन सौ से भी अधिक घरो वाले इस अजमेर मे कितने दिनो तक चतुर्मास का असर रहना चाहिए? आज उस गाव मे जाये तो वहा स्थानक का दरवाजा बन्द नही मिलेगा। सामायिक करने वाले कोई न कोई बैठे मिलेंगे। धार्मिक शिक्षण का काम भी यथा सभव बढ रहा है। स्कूल कालेज आदि भी प्रगति के पथ पर है।

अजमेर वासियो के सामने जो चिरकाल से नागरिक का पद प्राप्त किए हुए है। जिनका यह नगर ऐतिहासिक विशेषता वाला है। अजमेर वालो के सम्मुख लासलगाव की चर्चा प्रेरणा देने के लिए कह रहा हू। उनकी बाते सुनकर आप मे भी धार्मिक प्रतिस्पर्धा की भावना बढे, प्रगति की चाह जगे। यहा भी अक्सर चौमासे होते रहते है। चौमासा होना मुश्किल नही है, परन्तु उसका लाभ उठाना मुश्किल है। आप भी अपने इन प्रवासी बन्धुओ से प्रेरणा लेंगे। आपकी विशेषता से ये लोग और इनकी खूबी से आप लोग लाभान्वित होंगे, तो भगवान् महावीर के शासन की जो सेवा है और मानव का जो अमूल्य जन्म है, उससे यदि सेवा का लाभ नही लिया गया तो जीवन व्यर्थ गया।

सोचिए ! वे भाई सैकडो गाडियो के रहते हुए भी बाजार मे नही जाते थे। वे सोचते थे कि धधा तो फिर करेंगे, परन्तु व्याख्यान का लाभ यदि छूट गया तो वह पुन नही मिलेगा। धर्म ध्यान का अवसर चूक गया तो वह वापिस हाथ नही आएगा। तो ऐसा आप भी सोचकर चलेगे कि व्यापार और दुकान अपनी-अपनी जगह पर हे। हम जब भी जायेगे, ग्राहक आजायेगे और धन्धा चल पडेगा। परन्तु यह मौका जल्द नही मिलेगा। ऐसे सरल भाव से चलेगे तो जीवन आगे बढ सकता है। भगवान् महावीर के जीवन से जागरण प्राप्त कर सकेंगे तो इस लोक तथा परलोक मे आपका कल्याण होगा।

●●

## ९
# वाणी की शक्ति

### वचन का चमत्कार

बन्धुओ ! जिनेश्वर भगवान् की वाणी का साक्षात् प्रभाव कैसा होता है ? पूर्वकाल के वीतराग वाणी सुनने वालो के नमूने से, अपने जीवन की तुलना करने के पहले, वाणी का महत्व हृदयगम कर लेना चाहिये।

ससार मे वाणी के प्रसाद—वचन की मधुर भेट देने वाले, जितने भी विलक्षण विद्वान् है, उनकी वाणी मे वह सामर्थ्य या शक्ति नही है, जोकि राग के गरल को दूर कर सके। राग के विष को शमन करने की—निवारण करने की सामर्थ्य तो वीतराग की निर्दोष वाणी मे ही है। जैसे एक गारूडी-मत्रवादी थोडे से शब्दो मे, मदध्वनि मे मत्र का उच्चारण करता है, परन्तु वह सर्प के विप को दूर कर देता है। गारूडी के मन्दध्वनि के मत्रोच्चारण मे जो सामर्थ्य है, वह कई घरो के लोगो के एक साथ जोर-जोर से वोलने पर कि हे नागदेव ! अपना विष खीच लो, दूर कर लो, क्षमा कर दो, तो भी वह विष दूर नही होगा। और कई बल देकर यह भी कह दे कि नाग ! तुझे माता की आन है, पवन सुत हनुमान की आन है, तो क्या इस आन के शपथदान से वह विष खीच सकेगा ? नही।

कहने का तात्पर्य यह कि गारूडी जो सूक्ष्म स्वर मे, एक मत्र कहता है, वैसी वात कोई दूसरा बहुत जोर से भी क्यो न कहे, उसकी वात मे वह शक्ति सामर्थ्य और ओज नही है, जिससे विष का असर दूर हो जाये, मिट जाये। परन्तु गारूडी की वात मे असर है, प्रभाव

है, वल है। आज के वैज्ञानिक युग मे भी विद्या के वल से, विष निवारण के प्रसग आपने देखे और सुने होगे। अच्छे अनुभवी मत्रवादी गारूडी-विद्या के जानकार, सैकडो कोस दूर रहते हुए भी, सर्प दश के विप को दूर कर देते है। ऐसे भी अनुभव रखने वाले लोग है। तो बात यह है कि जब एक साधारण साधना के वल की वात, गारूडी की शब्दावली मे दृष्टिगोचर हो रही है, फिर यदि वीतराग वाणी के द्वारा, किसी के राग का विष दूर हो जाय, जहर मिट जाय तो आश्चर्य की क्या बात है ?

भद्रनन्दी की तरह, कोई राजकुमार हो या आज का भोगी प्राणी, जो मोह की मदिरा पीकर बचपन से ही उन्मत्त बना हुआ हो, फिर भी यदि एक वार वीतराग-वाणी का भावपूर्वक श्रवण, चिन्तन और मनन कर ले तो उसका राग-विष दूर हो जायेगा। परन्तु वाणी का हृदय मे प्रवेश होना चाहिये। यदि वाणी दिमाग तक ही पहुँचकर रह जाये, कानो तक ही पहुँचकर रह जाये तो बात दूसरी है। परन्तु हृदय मे पहुँच जाएगी तो अवश्य असर करेगी—प्रभाव डालेगी।

बहुत बार ऐसा होता है कि विष मिटाने की दवा गले मे उतरते ही उल्टी हो गई और मूलस्थान तक दवा नही पहुँची तो दवा का असर नही होता। ऐसे ही वीतराग-वाणी जो राग निवारण की परमौपधि है, अचूक रामबाण दवा है, तभी काम करती है, जबकि इसको मूल-स्थान हृदय मे पहुँचने का अवसर मिले। आज हम इस वाणी को ग्रहण तो करते, पर हृदय तक नही पहुचा रहे हैं। इसलिए वाणी का सही लाभ नही पा रहे हैं। इससे यह नही समझना चाहिये कि वाणी मे असर नही रहा। वाणी या तो मूल-नालिका मे नही पहुँचती या कोई दूसरी है। वस्तुस्थिति यह है कि वाणी ज्योही हृदय मे प्रवेश करेगी, त्योही असर करने लग जायेगी। मूल-नालिका, हृदय का, लोक का एक मध्य भाग है, जिसे त्रसनाल का स्थान कहा है।

## ससार मे धर्मसाधन का केन्द्र

शास्त्र मे, ससार चौदह राजु लोक प्रमाण कहा है। उसमे एक स्थान वह है, जहाँ त्रस जीव रहते हैं। वह स्थान केन्द्रित है। त्रस जीव सारे ससार मे नही रहते। परन्तु वे जहा रहते है, उस स्थान को त्रसनाल कहते है। यह स्थान लोक मे है। यह एक रज्जु चौडी और चौदह रज्जु लम्बी-ऊँची होती है। त्रसनाम कर्म के उदयवाले जीव, दो इन्द्रिय से लेकर पाँच इन्द्रिय तक के और खासकर नर-नारक और पशु तथा देव ये सारे के सारे जीव, इस एक रज्जु चौडे क्षेत्र मे रहते है, जो त्रसनाल कहाता है ।

हम मध्यलोक मे रहते है। इसे तिरछालोक भी कहते हैं। साधारणतः लोक के दो भेद हैं। यो इसका पूरा विभाग किया जाये तो अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक के नाम से भी कहे जाते है। परन्तु इन सब मे धर्मसाधना नही होती। धर्मसाधना का मुख्य स्थान मध्यलोक है। वैसे अधोलोक मे भी साधना होती है, मगर विरलरूप मे, मुख्यरूप से नही।

अधोलोक क्या है ? इसके लिए कहा गया है कि विदेह क्षेत्र को एक भूमि ऐसी है, जो हजार योजन ऊँडी है। मनुष्यलोक—तिरछा नौ सौ योजन तक माना गया है और वह हजार योजन है। जिसमे से सौ योजन का क्षेत्र नीचे के लोक मे चला गया है। वहा रहनेवाले मनुष्य निम्न-लोकवासी कहाते है और धर्म करनी करते है। इस दृष्टि से मध्यलोक, धर्मसाधना का मुख्य केन्द्र कहा जाता है। यह है तो स्थूल बात, परन्तु शास्त्रीय बात है। इसलिए उत्तर देने मे श्रोता सकोच करते है। स्वाध्याय करेगे तो इन सब बातो की पूरी जानकारी होगी और कही किसी के पूछने पर जवाब देने मे सकोच नही रहेगा।

वीतराग-वाणी का लाभ मध्यलोकवासी त्रसनाल के जीवो को ही मिलता है। श्रवण का लाभ मिलने पर भी, आचरण का लाभ

मिलेगा, तभी वे कर्म-बन्धनो को तोड सकेगे। देखिये, सुनने का लाभ तो देवता भी लेते है । क्योकि वे श्रवणधर्मी है और श्रवण धर्म के प्रभाव से मिथ्यात्वी देव सम्यक्त्वी हो सकते है। सत्सग मे बैठकर देव, सम्यक्-दर्शन का लाभ ले मकते है और मिथ्यात्वी से सम्यक्-दर्शनी वन सकते है। यह भी छोटा लाभ नही है। परन्तु देव, चारित्र धर्म मे, कदम आगे बढाने के अधिकारी नही होते।

**चेतना की रगड का फल**

परन्तु आपकी सामर्थ्य-शक्ति उनसे कई गुना आगे है। आपने अपनी चेतना-शक्ति मे विकास पाया है। मनुष्य होने के नाते आपकी करण-शक्ति भी वलवती है। आप मे श्रुतधर्म और चारित्र-धर्म दोनो के समाराधन की सामर्थ्य है। ऐसी बडी उपलब्धि मिली है। इस तरह आपको शक्ति तो है किन्तु उसको प्रकट करना है। बिना प्रकट किए काम चलने वाला नही है। जैसे माचिस की पेटी पास मे होते हुए भी, कोई तूलिका निकाल कर नही रगडे तो अधेरा बना ही रहेगा—प्रकाश नही होगा। परन्तु तूलिका रगडते ही प्रकाश हो जायेगा। घुप्प अधेरा छुप जायेगा, चहु ओर प्रकाश चमक उठेगा।

अधकार को मिटाने मे वहा द्रव्य-तूलिका रगडने की बात थी। परन्तु हृदय मे व्याप्त अज्ञान के सघन अधकार को दूर करने के लिए, चेतना की तूली जलानी होगी। मानव मन मे घर कर बैठे अज्ञान और मिथ्यात्व-आचार के अधेरे को दूर करने के लिए, चिन्तन की तूली रगडनी होगी। वीतराग स्वरूप सत्गुरु से जरा सी रगड मिल जाये, विधि-पूर्वक रगड खाले तो उसमे ज्योति जगते देर नही लगती, और अधकार दूर हो जाता। इधर-उधर भटकना बन्द हो जाता है। ज्ञान का प्रकाश मिलते ही मुक्ति का द्वार खुल जाता है। उग्र विषधारी चँड-कौशिक जैसा नाग भी, महावीर के चरणो मे टकरा-कर ज्ञान की ज्योति प्राप्त कर लेता है। उस ज्ञान रूप पारस का स्पर्श पाते ही उसे क्रोध से क्षमाभाव मे आते विलव नही लगा।

## सम्यग्-दर्शन और जीवन

भगवान् महावीर ने स्वय के बारे मे बताया कि अनन्त काल तक ज्ञान की रोशनी नही पाने से मेरी आत्मा भटकती रही। वह भी एक-दो जन्म नही, वरन् अनन्त-अनन्त काल पर्यन्त। परन्तु भटकते-भटकते एक समय ऐसा आया, जब नयसार के भव मे, सम्यक्त्व पा लिया। जिससे जीवन मे उजाला हो गया। इससे पहले भी भ० महावीर ने जन्म किए थे, परन्तु उनकी कोई गिनती नही। क्योकि शास्त्रकार कहते हैं—मानव! मिथ्यात्व मे किए गए अनन्त-अनन्त जन्मो का कोई मूल्य नही, कीमत नही है। सम्यग्दर्शनपूर्वक करनी करने का, जिस जन्म मे अवसर मिलता, वही जन्म गिनती मे आता है।

तो सोचिए, कि कितना बडा महत्व है, सम्यग्दर्शन रूप चिन्तामणि का। आप और हम लोग महान् सौभाग्यशाली है कि हम सबको सम्यग्दर्शन की उपलब्धि हुई है। परन्तु इस चिन्तामणि रत्न को बहुत हिफाजत से रखने की जरूरत है। यह अमूल्य रत्न कही मैला न हो जाय और इसमे कही मिथ्यात्व की धूल नही लग जाये। सम्यग्दर्शन का इतना मूल्य है कि मिथ्यात्व दशा के करोडो वर्षो का तप सम्यक्त्व सहित एक उच्छ्वास के तुल्य भी नही होता।

सम्यग्दर्शन रूप इस अनमोल निधि पर गहराई से ध्यान रखने की आवश्यकता है। महावीर को नयसार के भव मे, इस रत्न की उपलब्धि हुई। सम्यग्दर्शन के कई भेद और रूप है। जैसे औपशमिक, क्षयोपशम और क्षायिक, वेदक तथा सासादन ये मुख्य पाच भेद हैं। जिनमे उपशम और क्षयोपशम अल्पकाल मे खत्म हो जाता। कारण उसमे मिथ्यात्व का मल दवा पडा है। वह मिट्टी के दीपक के प्रकाश की तरह हे। जैसे दीपक का प्रकाश घटा दो घटा जव तक तेल रहता है और हवा का झोका नही लगता, तब तक वह जलता है। परन्तु तेल खत्म होते या झोका लगते ही बुझ जाता है।

मगर सम्यक्त्व-प्रदीप को तेल और वत्ती की जरूरत नही है। यह बुझने वाला दीपक नही है। आकाश के दीपक सूर्य, चन्द्र और

नक्षत्र भी समय पर ही प्रकाशित होते और पीछे विलीन हो जाते है। सम्यग्दर्शन भी दो तरह का है। एक सम्यग्दर्शन छोटे दीपक की तरह सादि सान्त है, जिसके प्रकाश की आदि है और अन्त भी। जैसे सम्यग्दर्शन आया तो आदि और चला गया तो अन्त, औपशमिक सम्यग्दर्शन का अन्तर्मुहूर्त तक का काल है । उपशम सम्यग्दर्शनी जीव अन्तर्मुहूर्त काल के बाद, निश्चित मिथ्यात्व मे जाता है। जैसे उपशम समकित वाले का गिरना निश्चित है, वैसे ही क्षायिक समकित वालो का नही गिरना भी निश्चित है।

**सप्त प्रकृतियो के छेद से भवोच्छेद**

सात प्रकृतियो के समूल क्षय करने से क्षायिक समकित की प्राप्ति होती है। ये सात प्रकृतिया इस प्रकार है—अनन्तानुबधी क्रोध, अनन्तानुबधी मान, अनन्तानुबधी माया और अनन्तानुबधी लोभ, मिथ्यात्व मोह, मिश्रमोह और समकित मोह। इन सातो प्रकृतियो का समूल उच्छेद जिस भव्य प्राणी ने कर लिया, उसे फिर अन्धेरे मे भटकने का काम नही रहता। वह कभी भटकेगा नही और अटकेगा भी नही। परन्तु जब तक क्षायिक समकित नही है, तब तक अटकता है।

सम्यग्दर्शन किसी के ठेके की वस्तु नही है। आपको या किसी को मिथ्यात्व मोह आदि सात प्रकृतियो का क्षय-उपशम या क्षयोपशम होने पर सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो सकती है। इसमे कुल, जाति, अवस्था का कोई कारण नही है। मोह मिथ्यात्व की गाठ ढीली हो या ना, पर सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो सकती है। सामायिक हो सके, नही भी हो सके, परन्तु सम्यग्दर्शन की भूमिका आवश्यक है। यदि सम्यग्दर्शन नही है और मास खमण भी कर लिया तो मोक्ष मार्ग की साधना मे उसका कोई मूल्य नही है।

भगवान् महावीर की आत्मा ने नयसार के भव मे समकित की प्राप्ति की। परन्तु वह चला गया एव जीवन मे पुन अधेरा आ गया और वे जन्ममरण के चक्कर मे घूमते रहे। विश्वभूति के भव

मे फिर ज्ञान के प्रकाश का थोडा-सा लाभ हुआ । ज्ञान का प्रकाश होने से आने वाली उलझने दूर होती गयी ।

ि भूति की मनोव्यथा

विश्वभूति जिस बगीचे मे, आमोद-प्रमोद करते हर्ष से जीवन गुजार रहे थे, मन्त्रियो ने छल से, धोखे से, उसको खाली कराकर विशाखनन्दी राजा के पुत्र का मय अन्त पुर के, उसमे डेरा डलवा दिया। विश्वभूति को उस प्रिय उपवन से वचित होना पडा । द्वारपाल से जब विश्वभूति ने यह बात जानी तो उनको आश्चर्य के साथ बहुत दु.ख हुआ । जैसा कि कहा है—

**"विश्वभूति आ युद्धभूमि से, उपवन जाते हैं ।**
**रक्षक जन से रोके जाकर, अचरज पाते है ।"**

उनको बगीचे से हटने का उतना दु ख नही हुआ, जितना राजा द्वारा किये गये कपटपूर्ण व्यवहार से दु ख हुआ । वे सोचने लगे कि महाराज को वगीचा खाली कराना था तो कौन-सी बुरी वात थी । किन्तु ऐसा धोखा क्यो किया ? वास्तव मे यह मेरी भूल है कि मैंने ससार के सुखो को मूल्यवान् मानकर, उनमे विश्वास किया । जैसे कि—

**"हाल समझ मन मे यो सोचे, राग रुलाते हैं ।**
**राग अन्ध होकर मानव, अपनत्व, भुलाते हैं ।।**
**छिपा रोष कारण पाकर, अब जोर दिखाते है ।**
**तरु कपित्थ को दे टक्कर, फल सब भूमि गिराते हैं ।।**
**शासन नायक वीर जिनेश्वर, की हम कथा सुनाते है ।। '**

अहो ! ससार के सम्बन्ध कितने स्वार्थपूर्ण है । जिस राजा का अपने पिता से भी अधिक सम्मान रक्खा और उनका स्नेह भी ऐसा ही दिखता था कि पिता के अभाव मे भी ये मेरी पूरी तरह रक्षा करेगे। मगर मेरी सारी कल्पना और आशाए धूमिल हो गयी ।

शास्त्र ने ठीक कहा है—"डज्झमाण न बुज्झामो, राग दोसग्गिणा जग। राग और द्वेष की दावाग्नि मे जलते हुए जग को हम नही समझते।

कुछ काल के बाद जब विश्वभूति लौटकर आए और अपने निवास-स्थान बगीचे मे प्रवेश करने चले तो द्वारपाल ने यह कह कर मना कर दिया कि बाग मे अभी राजकुमार अपने अन्त पुर सहित ठहरे हुए है। अत लोक-मर्यादा और राजमर्यादा जो आप जैसो की बनायी हुई है, उनके परिपालन के लिए, आपका बगीचे मे पधारना, ठीक नही है।

विश्वभूति को यह जानकर कि मेरा बाग मे जाना निषिद्ध है, बहुत ही आश्चर्य और दु ख हुआ। उसने सोचा कि जिस बगीचे मे, मैंने वर्षो तक आमोद-प्रमोद किया, वह छलपूर्वक मुझसे छुडा कर, राजकुमार को दे दिया गया। महाराज यो ही मुझे आज्ञा करते तो मैं छोड देता, बाधा नही देता। वैसा नही करके, मुझे छल से निकालना कितना बडा विश्वासघात है! ठीक ही कहा है—

**"हाल समझ मन मे यो सोचे, राग रुलाते है।**
**राग अन्ध हो मानव, अपनत्व भुलाते हैं।।"** शासन

इस प्रकार विचार करते विश्वभूति एक बार जोश मे आकर उबल उठे। और वहाँ पास मे एक कपित्थ (कबीट) के झाड पर आवेश मे आकर, एक मुक्का मारा। जिससे वृक्ष के सब फल धडा-धड धरा पर गिर गये। फलो की ओर इशारा करके विश्वभूति ने उन द्वारपालो से कहा कि—जैसे मैंने इसके फल गिरा दिये है, वैसे ही मैं तुम लोगो के सिरो को भी धड से गिरा सकता हूँ। परन्तु मुझे मर्यादा का ख्याल आता है कि मैं किस कुल मे जन्मा हूँ और बगीचे मे कौन है तथा मैं कौन हूँ? एव मेरा इनका सम्बन्ध क्या है? मर्यादा को धक्का लगे, ऐसा कार्य करना, कदापि मुझे इष्ट नही। अन्यथा रोप तो इतना आ रहा है कि अभी तुम सबका तमाम काम कर दूँ।

## विश्वभूति का अन्तर्बोध और दीक्षा

क्षणभर ज्ञान-दृष्टि से विश्वभूति ने अपनेआप सोच पर चिन्तन करते काबू पाया कि अरे ! मैं इसी राग रोष के कारण इतने काल तक जन्म-मरण का चक्कर काटता आ रहा हूँ। इस क्रोध के कारण आज तक भटका हूँ—फिर इसी मे उलझा रहा तो भविष्य मे भी भटकना पडेगा। अत अब इस बन्धन को तोडना चाहिये।

यह ज्ञान की वात है—आत्मकल्याण की बात है। ऐसा सोचनेवाला अपना भव बन्धन काट लेता और अभीष्ट मोक्ष धाम को पा जाता है। इसके पहले विश्वभूति ने कभी ऐसा नही सोचा था। और जब भी कभी सोचा तो वडे परिवार, अत पुर, महल, कोठी वगैरह के सम्बन्ध मे ही सोचा था। मगर आज उसने सोचा, अहो ! शास्त्र क्या कह रहा है—

**"जीविय चेव रूवच, विज्जु-सपाय चचल।**
**जत्थत मुज्झती राय, पेच्चत्थं नावबुज्झसि।" उ०।१८।१३**

याने यह जीवन और रूप चपला सम चचल है। आगे पीछे ये मुझे छोडेगे या पहले पीछे मैं इन्हे छोडकर चला जानेवाला हू। ये सारे राजशाही ठाठ, अत पुर, महल और कोठी आदि सव यही रह जाने-वाले या नष्ट हो जानेवाले है। अगर ऐसी वात है तो मैं होशोहवाश मे, खुशी से ही इन्हे छोडकर क्यो न आत्म-कल्याण के मार्ग पर अग्रसर हो जाऊँ ? ऐसा करने मे मेरी आन, वान और शान सव रह जायेगी।

इस प्रकार दृढ निश्चय कर विश्वभूति नगर से वन की ओर चल पडे तथा वहा आचार्य सभूतिविजय के पास जाकर—"मु डे भवित्ता" अर्थात् दीक्षित हो गये। इस तरह वीतराग वाणी का एक प्रतिविम्व गिरते ही, उनका अमित काल से पालित-पोपित राग का जहर उतर गया—विप दूर हो गया।

**लागी लग, राग के झोके से छूट जाती है**

एक भक्त बोलने लगा कि आपका उपदेश तो बहुत लगा और तीर की तरह कलेजे मे चुभ गया। परन्तु कवि कहता है कि—

> **"लागी लागी सब कहे, लागी नही लगार।**
> **लागी जब ही जानिये, छोड चले संसार॥"**

आप लागी लागी तो कहते हो, परन्तु लागी तो तब समझी जाती कि आप वैराग्य धारा मे बह जाये। वैसे लागी लागी तो सब कहते है, परन्तु वास्तव मे जिसको लग जाती है, उसका कलेजा काप उठता है, वह छटपटाता रहता है और शान्त नही बैठता है। आप कहते हो कि महाराज! लागी तो सही परन्तु यहाँ से घर गये और घरवाली ने दो बात कही तो यहाँ की लागी सब, उसकी एक ही फूँक मे चली जाती है।

घरवाली कहती है कि वहा की बात वही रहने दो और अपना नगारा ऐसे ही बजने दो। महाराज तो कहेगे कि साधु बन जाओ, शीलव्रत लेलो और गाडी के जोडे बैलो मे से अलग हो जाओ। तो क्या ऐसे कोई काम चल सकता है?, वे तो झोली लेकर फिरते है। परन्तु अपने पीछे तो बाल-बच्चे है, पूरा परिवार है। उन सबकी देखभाल करनी है। शादी-ब्याह करना है। महाराज तो ऐसे ही कहते रहते है। अपना सुनने का काम है, सुनते रहिये। एक लडका बडा हो गया और होशियार भी। गादी पर बराबर बैठता है, लेन देन करता है, हिसाब करता है और वह भी कहता है कि पिताजी! अब आप आराम करो। ससार मे छोटे-मोटे विघ्न आते रहेगे, पर उनमे विना विचलित हुए डटे रहो, तभी कार्य हो सकता है। राग मे जोडने वाले तो सब कोई मिलेगे पर राग की बेडी काटने वाले, वीतराग सत ही हो सकते है।

**काल का कोई विश्वास नहीं**

आचाराग सूत्र का वचन है "णत्थिकालस्सणागमो" अर्थात् काल अवश्य आने वाला है। ऐसा न हो कि हम आशा ही आशा मे

खाली रह जाय । मानव की आकाक्षा का चित्र खीचते एक कवि ने ठीक ही कहा है कि—

**"चाहत हो धन होय किसी विध, तो सब काम सरे जियराजी ।**
**गेह चुनाय करू गहना कछु, ब्याही सुतासुत बाटिय भाजी ।।**
**चितन यो दिन जाहि चले, जमराय अचानक देत दगाजी ।**
**खेलत खेल खिलारी गये, रह जाय सजी सतरंज की बाजी ।।"**

हा, तो यह बाजी धरी न रह जाय, इसका ध्यान रखना है । अभी सुनने मे आया कि हुबली मे काम करने वाला एक भाई, जिसकी उम्र अधिक नही थी, केवल ४०-४५ साल का ही था, काल कर गया । तो मैं सोचता हू कि ऐसे कई भाई है कि जिनका माल पडा रह गया, खाट पडी रह गई और सगे सम्बन्धियो से रिश्तेदारो से मिल भी नही सके और चले गए । इतनी बात सुनकर भी आपकी कितनी हिम्मत है कि कहते महाराज ! आप की बात सुनकर कलेजा हिल उठता है और होता है कि सब कुछ छोडकर अलग हो जाय । मन ससार की नश्वरता पर खिन्न एव उद्विग्न हो उठता है । परन्तु छोड के अलग हो जाने से भी कार्य नही चलता ।

इस ससार मे जाने वालो की कहाँ तक फिक्र करे ? उनकी आयु उतनी ही थी । वे चले गए । हमको तो अभी ससार मे रहना है । फिर घबराये क्यो ? पहले सासारिक काम कर ले, पीछे धर्म भी पकडेगे । क्योकि धर्म तो कही जाने वाला नही है । और धन अवसर चूकने से, हाथ से निकल जाता है । भाई ! इस प्रकार की घटनाए निरतर सुनते रहते है । कवि ने ठीक ही कहा है—

**"मुसाफिर क्यो पड़ा सोया, तमाशा है चलाचल का ।**
**दमादम बज रहा डका, तमाशा है चलाचल का ।।"**

हमारे देखते-देखते कितने राजा-महाराजा, राष्ट्रपति और उद्योगपति यहा आए और चले गए । वडे-वडे शासको के सिंहासन

हिल गए। फिर साधारण मानव की क्या बात है ? काल मुंह फाडे बैठा है। न मालूम कब वह धर दबा ले। कबीर ने ठीक ही कहा है—

**चलती चक्की देख के, दिया कबीरा रोय।**
**दो पाटन के बीच मे साबित बचा न कोय।।**

कहा जाता है कि एक दिन कबीरजी स्नान करके, कधे पर धोती रखे, आ रहे थे कि उनके कानो मे, एक आवाज घट्टी चलने की आयी। वहा एक औरत घट्टी पीस रही थी। उन्होने किसी स्त्री से पूछा कि यह किसकी आवाज आ रही है ? कहा, चक्की मे आटा पीसा जा रहा है, उसकी आवाज है। हम लोग गेहूँ-ज्वार आदि के दाने डाल कर घट्टी का एक पाट घुमाती है तो सब दाने चूर-चूर हो जाते है। केवल कील के पास लगे दाने बचे रहते है।

कबीर ने सोचा कि ठीक यही स्थिति ससार की है। ससार भी एक बडी चक्की है। इस घूमते हुए चक्की के चक्कर मे, लाखो करोडो नित्य पिसे जा रहे हैं। यह व्यावहारिक भाषा है। परन्तु इसी को यदि शास्त्रीय भाषा मे कहूँ तो अनन्तर जीव पिसे जा रहे हैं और उनका कचूमर निकल रहा है। इस चक्की मे पिसकर सबका चकनाचूर हो जाना है।

**धर्म कील की शरण मे ही रक्षा है**

इस सासारिक चक्की मे चकनाचूर होने से, पिसे जाने से, यदि बचना है तो उसका एक ही रास्ता है, उपाय है, जिसे अपनाना चाहिये। आप सबने देखा होगा या सुना होगा कि चक्की चलाने के समय, जो दाना कील के पास टिक जाता है, वह दो पाटो के सघर्ष के बीच भी बच जाता है। भले कोई पूरे दिन रात चक्की को चलाते रहें मगर कील के पास मे पडा दाना, ज्यो का त्यो रह जाता है। उसका बाल भी बाका नही होता।

ससार की चक्की मे भी धर्म की कील है, खूँटी है। यदि इस धर्मरूपी कील या भगवान् की भक्तिरूपी कील की शरण मे आ

जाओगे तो जन्म-मरण के इन पाटो के बीच आकर चकनाचूर होने से बच जाओगे।

विश्वभूति भी भवप्रपच को छोड़कर धर्म-कील की शरण मे चले गए। इसके आगे वे किस तरह अजर-अमर बनने को भगवान् का मार्ग पकडेगे, यह शिक्षण का विषय है—सबक है। इसको यदि सरल-भाव से ग्रहण किया जाये, आचरण-पथ मे उतारा जाये तो हमारे अन्दर भी वही शक्ति है। आवश्यकता है पुरुषार्थ की।

यदि वीतराग-वाणी को सुनकर अपने अन्दर पुरुषार्थ प्रकट करेंगे, ज्ञान ज्योति जगायेगे तो आपका भी इस लोक तथा परलोक मे कल्याण होगा।

●●

# १०

# विश्वभूति   ाके प पर

**वीतराग वचन सुनने का महत्व**

वन्धुओ ! अभी मगलमयी भगवद्-वाणी का वाचन और श्रवण आप सबके सामने प्रस्तुत है। बोलना और सुनना ये दोनो क्रियाये सज्ञी-पचेन्द्रिय प्राणी रात दिन करते है। पाच इन्द्रियवालो को श्रुतिधर कहा गया और वही सज्ञी भी है। सज्ञी का मतलब है समनस्क। इनको बोलने और सुनने का मौका करीब-करीब दिन रात मिलता है। सभव ही कोई ऐसा मौका आता हो, जबकि समनस्क कुछ बोलते और सुनते न हो। परन्तु वीतराग-वाणी जैसा मूल्यवान् श्रवण सुलभ नही होता ।

अपने मनोभावो को दूसरे तक पहुँचाने और अभिप्राय को हृदयगम कराने का माध्यम भाषा होती है। भाषा का अधिक उपयोग बोलकर एव सुनकर ही किया जाता है। आज पठन-पाठन का भी अन्य साधन है। परन्तु लेखनयुग के पहले तो मात्र बोलना और सुनना ही था। इसी के द्वारा सब कुछ जाना-समझा जाता था। वाणी सज्ञी प्राणी के वास्ते एक वरदान है, सहज-साधन और विधान है।

आप भी नित्य कुछ न कुछ सुनते रहते हैं। परन्तु व्यावहारिक वातो के सुनने और कहने मे, अपने इस दुर्लभ मानव जीवन को विताना, उतना मूल्यवान् नही है, जितना कि वीतराग-वाणी के श्रवण और वाचन मे, समय का उपयोग मूल्यवान् है। मनुष्य जीवन की सार्थकता और उपादेयता कर्म वध के काटने मे है, जो वीतराग-

वाणी के सुनने से ही सम्भव है। महत्व इसका नही कि हम कितना अधिक बोलते और सुनते है? किन्तु जो कुछ भी बोले और सुने वे कर्मछेदक और भजक हो।

वर्षाकाल मे घनघोर वर्षा होती है। वर्षा की बिन्दुओ का मूल्य, भूमि सस्योत्पादन के द्वारा प्रकट करती है। यदि भूमि अच्छी हुई तो साधारण वर्षा की बूदो से, रिमझिम फुहारो से भी हरी-भरी हो जायेगी। और उसमे डाला गया बीज का एक दाना, हजार दानो के रूप मे प्रकट हो जायेगा। किसानो का मन-मयूर नाच उठेगा।

परन्तु वर्षाकाल के अन्त मे, स्वाती नक्षत्र मे, घनघोर मूसलाधार वर्षा नही होती। धरती पर जलधारा नही बहती। नदी-नाले, ताल-तलैया नही भरते। मगर उस समय की स्वच्छ विरल बूद का वह मूल्य होता है जो घनघोर वर्षण का नही होता। स्वाती जल के भरोसे जीनेवाले चातक के लिए जितनी अनमोल वह बूद होती है, उतने जल भरे तालाब, सरित और सागर नही। स्वाती नक्षत्र के उन विरल बूदो मे, जब सीप अपना मुँह उन बूदो के लिए खोले हुए होती है और स्वाती की एक बूद जब उस मुँह मे पडती है तो वह निर्मल बिन्दु, सीप के भीतर दिव्य मोती का रूप धारण कर लेती है। जिसका मूल्य हजारो पर पहुँचता है।

घनघोर वर्षा की बूदे मोटी और जोरदार होती है। परन्तु उनमे वह निर्मलता नही जो स्वाती की विरल बूद मे होती है। ऐसे ही छद्मस्थो की वाणी घनघोर वर्षाकालीन वर्षा के समान बडी धारावाही होती हे। वाणी मे मिठास भी होता है और मन को बहलानेवाली, लुभानेवाली, शब्द लहरियाँ भी लच्छेदार निकलती हैं तथा उससे श्रोताओ का मनोरजन भी काफी हद तक होता है। ससार मे ऐसे छद्मस्थ वक्ता विद्वानो की भी कमी नही है। परन्तु उनके मुख से निकले हुए शब्द रूपी बूदो से मोती नही हो सकते। चाहे वे शब्दो की झडी ही क्यो न लगा दें। परन्तु वीतराग सतो के

मुख से निकले, आगम के विरल शब्द, स्वाती बूद की तरह भावुक-भक्त के निर्मल मानस मे मोती का रूप धर लेते है ।

### कितना बदल गया इन्सान

वर्षा के बाद शरद् ऋतु आती है । कभी उसमे भी वर्षा होती है । परन्तु दोनो मे अन्तर है । शरद् अपनी शारदीया चादनी एव स्वच्छता के लिए प्रसिद्ध है । पावस जैसी वर्षा से पकिल एव पिच्छल पथ के लिए नही । हा, तो प्रकृति की गति नियत है । प्राय अपवाद को छोडकर, प्रकृति के कार्यो मे कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नही होता । सब कुछ समय के साथ साथ चलते रहते है ।

ससार मे आदमी-इन्सान ही एक ऐसा अनोखा प्राणी है, जो अपनी गति बदल देता है । कभी उसमे सामजस्य और एकरूपता नही रखता । मगर सूर्य, चाद और आसमान, जिनकी हस्ती के आगे इन्सान कुछ भी नही है, अपनी गति नही बदलते । वे सदा एक गति से चलते रहते है । किसी ने ठीक ही कहा है—"सूरज न बदला, चाद न बदला, ना बदला रे आसमान । कितना बदल गया इन्सान ।

वस्तुत आज का आदमी भी कितना बदल गया है ! खासकर तरुणो-युवको के परिवर्तन की तो कुछ हद नही । आपके वेष-भूषा, खान-पान आदि मे विशेष बदलाव नही आया है । जबकि आपके बच्चे-बच्चियो और गृहणियो के वेष-भूपा, खान-पान और साज-शृगार मे अद्भुत परिवर्तन आ गया है । वे सारे तौर तरीके बदल गए है जो पहले थे । वेष देखकर सहसा समझ मे नही आता कि इनके वस्त्र धारण का प्रयोजन क्या है ? पर्दा या फैशन । रग-बिरगे झीने महीन वस्त्रो से न तो पर्दे का काम चलता, और न भारतीय सस्कृति एव सभ्यता का भलीभाति निर्वाह होता । विदेशी सस्कृति का आज के जन-मानस पर पूरा प्रभाव और अधिकार सा बना दिखाई दे रहा है ।

पहले के लोग खाते-पीते तो शान्ति से बैठकर पहले दो नाम प्रभु के लेते और फिर खाते । स्वास्थ्य के लिए भी वह लाभदायक होता था । आज चलते-फिरते और बूट पहने ही खा लिया जाता है । भक्ष्याभक्ष्य और शुद्धि का भी विचार नही देखा जाता है । टट्टी-पेशाब के लिए जाना होता तो एकान्त पर्दे की जगह जाकर बैठते । पर आज की वेष-भूषा ऐसी हो गई कि उसमे बैठना आसान नही होता । इससे पैर और कपडे को छीटे लगे, इसकी चिन्ता किए बिना लोग खडे-खडे पेशाब करने लगे । कितनी हास्यास्पद स्थिति है ? वेष-भूषा की इस नकल से सामायिक आदि धार्मिक क्रियाये भी यथाविधि नही होती । तरुण लोग पेट और पायजामे मे ही सामायिक करने लगे हैं । जबकि सामायिक पौषध मे, साधु की तरह बिना सिले कपडे का ही उपयोग होना चाहिये । परन्तु आज का मानव इतना बदल गया कि उसको नैतिक मर्यादाओ का पालन करना कठिन हो गया है ।

**समय को बदलना मनुष्य के अधीन है**

मानव समाज की नीति-रीति और प्रकृति की गतिविधि से, शास्त्रकारो ने आने वाले काल के शुभाशुभ की पहिचान बताई है । स्थानाग सूत्र के दसवें स्थान मे, सुकाल—दुष्काल के दस बोल बताये गये हैं । पाचवे स्थान मे सक्षिप्त कर पाच बोल कहे गए है । उनमे दो बोल प्रकृति से सम्बन्धित और तीन बोल मनुष्य की दृष्टि से बताये है । असमय मे वर्षा होना और समय पर नही बरसना ये दो भविष्य की अशुभता के चिन्ह है । तीसरा असाधुजनो की पूजा और सत्कार हो तथा गुणवान् साधु पुरुषो की पूजा—महिमा नही हो । एव गुरुजनो पर अज्ञानवश मिथ्या भाव हो तो समझना चाहिए कि आने वाला समय अच्छा नही है ।

इसमे समय पर वर्षा नही होने और विना समय घनघोर वर्षा होने से, जनजीवन असुरक्षित हो सकता है । ऐसे अपूज्यो की पूजा और पूज्य पुरुषो के तिरस्कार से, सामाजिक स्थिति मे गिरावट

आना सभव है । मानव की रीति-नीति और व्यवहार ही समय को अच्छा एव बुरा बनाने का कारण है । वर्धमान महावीर और गाँधी ने जनबल पर ही युग बदला । अत यह समझना कि जमाना मनुष्य को बदलता है, ठीक नही । कहा भी है—

"लोग कहते है कि जमाना है बदलता अक्सर ।
मगर मर्द वो होते है, जो जमाने को बदल देते हैं ।"

स्वाति नक्षत्र के स्वच्छ जल की बूद, सीप के मुह मे पडकर, मूल्यवान् मोती बनता है । ऐसे वीतराग-वाणी, योग्य हृदय मे पडकर, त्याग-विराग मे परिणत हो जाता है । हमको सीप की तरह अपना मानस बनाकर वीतराग वचन रूप स्वाति-जल, उसमे धारण कर, उसे मोती जैसा तेजस्वी बनाकर जन-जीवन को उजागर बनाना चाहिये ।

**स्वच्छ मन मे त्याग विराग के मोती बनते देर नही**

विश्वभूति ने इतने बडे परिवार एव राजकीय साहिबी को क्षण भर मे कैसे छोड दिया ? यह देखकर आपको आश्चर्य होता है, हो सकता है ? परन्तु यह आश्चर्य की बात नही । उसने वीतराग-वाणी को अपने हृदय मे धारण किया था । आप भी उनकी तरह अपने स्वच्छ मन मे त्याग की प्रक्रिया अपना सकते है । अभी आपने मन का कचरा दूर नही किया, अत भोग्य पदार्थों के त्याग की बात आपकी समझ मे नही आती । परन्तु जब मन का कचरा दूर कर लिया जाता है, तो सहज ही भोगरुचि हट जाती है । और रुचि हटते ही भोग्य वस्तु के त्याग मे विलम्ब नही होता—देर नहीं लगती है । भोग के छोडने और नही छोडने मे, मूल कारण मन का बदलना है । मन दो कारणो से बदलता है एक अप्रीति के वश होकर और दूसरा ज्ञान पाकर । अप्रीतिवश त्याग के उदाहरण तो आपको अपने जीवन मे भी कई मिलेंगे । कभी आपको अपने दोस्त से, साझीदार से, ब्याही लोगो से या अन्य सम्बन्धियो से मन फट गया, किसी बात को लेकर मन मे खटास आ गया । वैसे तो आप उनके साथ हर जगह जाते और

एक जीव होकर रहते। पर अभी उनके यहा खाना-पीना है, सगाई का अवसर है, फिर भी आप नही पहुँच पा रहे है।

कभी लडके के यहा बाप के नही जाने का नमूना भी देखा होगा। बाप-बेटे के पास और बेटा-बाप के पास नही जाता। क्या ? इसको त्याग वैराग्य कह दे। स्त्री और पुरुप जो खास निकट के सम्बन्ध वाले है, परस्पर मे अतिगाढ स्नेह होता है। स्त्री के कारण पुरुप अपने मा-बाप को छोडकर भी अलग रहता है, मगर मन के फटने पर वह प्राण-प्यारी पत्नी भी कडवे तु वे की तरह खारी हो जाती है। आदमी कहता है—यह मेरी नही और मैं इसका नही। वोलना मिलना ही नही बन्द होता, वरन् आपसी सम्वन्ध छेद के लिए—तलाक के लिए, कचहरी मे मामले भी चल पडते है। और दोनो से दोनो आकाश एव जमीन की तरह सदा-सदा के लिए दूर हो जाते हैं।

इस प्रकार ,दीर्घ काल के आपसी मधुर स्नेह को तोडने मे कितनी देर लगी ? यह स्नेह और भोग कैसे छोडा ? कारण मन वदल गया। दृष्टि बदली और सारी की सारी सृष्टि बदल गयी। यह अप्रीतिवश त्याग का स्वरूप है। बन्धुओ! आपके बीच कई ऐसे साझीदार हैं, जिनके वर्षो तक धन्धे मे—व्यापार मे—साझा रहा। पता ही नही चलता कि ये सगे भाई नही हैं। दोनो एक-दूसरे को देखे विना चैन नही पाते। साथ ही खाते और साथ की नीद सोते थे। परन्तु मन फटने पर वह साझीदारी समाप्त हो गयी। अच्छे प्रेमी और व्याही के रूप मे, वर्षो साथ-साथ रहकर भी बेराजी से अलग हो गए। इस प्रकार की जुदाई को त्याग नही कहा जा सकता और न इससे धर्म-पुण्य ही होता।

**वेरागी बनकर छोड़ने का मजा, बेराजी छोड़ने मे नहीं**

वेराजी होकर तो छोडते आए हो, ऐसे उदाहरण अनेक है। अज्ञानी प्राणी भी वेराजी होकर गृह छोडने का नाटक तो खेलते

रहते है। परन्तु वेरागी होकर छोड़ने की और बात है। वेराजी होकर तो आप भी छोड देते हो। मारवाड मे बहुत से ऐसे गाव है, जहा पहले किसी की, गाव के ठाकुर से रजिश हो गई तो वहा की अपनी हवेली, जमीन सब कुछ छोडकर चल दिये। कारण एकमात्र गाव के ठाकुर से नाराजगी। अक्सर पत्नी पति से लड झगडकर, बाल-बच्चे परिवार सबको छोडकर कही चली जाती और दूसरा घर बसा लेती है। मगर ऐसे वेराजी के त्याग मे मजा नही है। मजा तो वैरागी होकर छोडने मे है। ज्ञानपूर्वक समझ-बूझकर छोडो तो धर्म होगा—कर्म कटेगे। वैरागी होकर छोडने की स्थिति कब आती है? जब वीतराग-वाणी की दो बूदे, हृदय सीपी मे पडकर मोती का रूप धारण करती है। एक छोटी-सी बूद की तरह थोडे से वचन भी मन को उजागर कर देते है। इसका नमूना देखिये महावीर के पूर्व जीवन मे।

### विश्वभूति का त्यागपूर्ण जीवन

विश्वभूति के जीवन पर जरा गहराई से सोचने की आवश्यकता है। वेराजी से छोडने का पहला उदाहरण तो आपके सामने कदम-कदम पर है। परन्तु दूसरा उदाहरण, जिसमे वैरागी बनकर धन से, परिवार से, मोह हटा कर वैराग्य से छोडा जाता है। इससे आपके भव-बधन कट जायेंगे। परन्तु व्याहीजी से लेन-देन मे गडबडी होने पर, आना-जाना बन्द करना, लडकी को नही भेजना, सम्बन्ध तोड लेना आदि से तो पाप कर्मो का बन्ध होगा, निर्जरा नही। वैराग्य जगने से यदि कोई ज्ञानपूर्वक छोडे तो उसमे आनन्द है, मजा है। किन्तु मन पर चोट लगे बिना, वैराग्य भी नही जगता है।

बगीचा छूटने से, चाचा के विषम व्यवहार से विश्वभूति को भी वैराग्य हो गया। उन्होने विचार किया—क्षणभर चिन्तन के पश्चात् निर्णय किया कि दुख और क्लेश का मूल कारण परिग्रह है। इसी के कारण राजा कपट कर रहा है। और इसी मोह के कारण मुझे शोक होता है। अत राजा के व्यवहार पर मैं शोक करू

तो यह ठीक नही। कारण वह तो स्वय मोह की मदिरा से भान भूला हुआ है। किसी ने भूल से भंग का लोटा पी लिया हो तो उसका शिर बराबर काम नही करता। वह कभी ऊँचा-नीचा बोल दे तो समझदार उस पर नाराज नही होता। बल्कि यह समझ कर दया करता है कि अभी इसको भान नही है। इसी तरह राजा भी मोह के अधीन होने से दया का पात्र है। मुझे इस पर दया कर, अपने आपका उद्धार करना चाहिये, मेरे लिए यही श्रेयस्कर है। ऐसा सोचकर विश्वभूति ने देखते ही देखते अपना मन मोड लिया। क्रोध की जगह उसके मन मे क्षमा उमड आयी। फलस्वरूप विश्वभूति बेराजी के स्थान पर बेरागी हो गया।

उसने अपने निकलते-निकलते सोचा कि मैंने क्रोध मे आकर इस झाड को हिलाकर वनस्पति के कितने जीवो का अनिष्ट कर दिया। यह तो मेरा मोह का ही चक्कर है। अब मुझको वैरागी होकर, कृत कर्म के प्रायश्चित स्वरूप, यह भवप्रपच छोड़ देना चाहिये। यही मेरे लिये श्रेयस्कर है।

ऐसा निश्चय कर विश्वभूति ने अपनी रानियो से कहा कि अब तुम मुझसे कोई आशा नही रखना। हमारा तुम्हारा सयोग इतने ही दिनो का था। हम जब तक रहे, परस्पर परम प्रीति-रीति से रहे। सदा सबको प्रसन्नता के लिए, सब कुछ सोचते रहे। मगर अब मैं तुम सबसे सदा-सदा के लिए विदा ले रहा हूँ। मेरी इस विदा का अर्थ मरना नही, किन्तु तुम लोगो से अलग होकर, गुरु-चरणो मे आत्म-कल्याणार्थ जाना है। तुम सबके लिए खाने-पीने के पदार्थो मे कुछ भी कमी नही है। खाना-पीना और बन पडे जहाँ तक सत्कार्य मे मन को लगाना। इस प्रकार अपनी प्रियाओ को समझा-बुझाकर विश्वभूति वहाँ से निकल पडा।

विश्वभूति भगवान् महावीर का जीव है। और नयसार के भव से वह सोलहवाँ भव बिता रहा है। अपनी रानियो से विदा लेकर वह आगे निकल पडा और आचार्य सम्भूतिविजय के पास पहुँचा।

सम्भूति विजय उस समय के परम त्यागी-विरागी और ज्ञान-क्रिया-निष्ठ श्रमण थे। उनके चरणो मे जाकर विश्वभूति ने कहा—भगवन्! मुझे इस असयम से सयम मे रमण करने को, ममता की बेडी काटकर समता की वरमाला पहनाइये। मैं समता के सागर मे गोते लगाकर आनन्दित होना चाहता हूँ।

सम्भूति विजय की कृपा से विश्वभूति सर्वथा पापो का परित्याग कर मुनिधर्म मे दीक्षित हो गये। विश्वभूति किस तरह साधना-पथ पर आगे बढेंगे—यह सुनने पर आगे विदित होगा। आप मन मे जरा मनन कीजिये और निर्मलता के साथ गुरु-वचन की बिन्दु को मोती बनाइये। यदि सम्यग्ज्ञान और दर्शन की ज्योति भर सकोगे तो निश्चय अजर-अमर पद के अधिकारी बन सकोगे।

●●

# ११

# गति का शत्रु प्रमाद

### कल्याण पाने और अकल्याण से बचने के उपाय

बन्धुओ ! साधना के क्षेत्र मे, गतिमान कल्याणकारी मानव को, साधना के साधक-बाधक कारण और विघ्नो का ज्ञान होना आवश्यक है। जो भी व्यक्ति अपना कल्याण चाहता है, वह साधक चाहे भ० महावीर के युग का हो अथवा उससे भी प्राचीन युग का हो, उसको यह चिन्तन करना होगा कि कल्याण के साधन क्या है ? तथा आगे बढने मे रोकने वाले बाधक कारण या विघ्न क्या है ?

इन दोनो का सम्यक् विचार करके कल्याण साधना के जो उपाय है, साधन है, उस ओर यदि वह अपने प्रमाद को—आलस्य को हटाकर गति करेगा तो अवश्यमेव उसकी साधना कल्याणकारी सिद्ध होगी। और वह अपने लक्ष्य पर पहुँच जायेगा। एक ही गति के दो लक्ष्य हैं, एक तो बाधाओ से प्रगति विरोधी तत्वो से दूर होना और दूसरा सत्-साधनाओ की ओर आगे बढना। एक ही क्रिया के ये दो फल है।

### क्रिया एक और फल दो

एक ही क्रिया के दो फल, यह सुनने मे चाहे जैसा भी अटपटा लगे, परन्तु है बिल्कुल सत्य और दुरुस्त। आप अपने व्यावहारिक पक्ष की ओर कभी ख्याल करेंगे तो उसमे भी आपको ध्यान आयेगा कि एक ही क्रिया के दो फल होते हैं। क्रिया एक और फल दो, इस अटपटी बात को समझने के लिए आपको यह ध्यान मे लेना है कि कोई पथभ्रष्ट—मार्ग भूला हुआ व्यक्ति, किसी भयानक जगल मे, गोता

खा रहा हो और सहसा उसको भान हो जाय कि मैं अपना रास्ता भूल गया हूँ । इस तरह चलते हुए गतव्यस्थान तक पहुँचने मे समय और शक्ति का अपव्यय होगा—तो मुझे रुककर किसी जानकार से पूछकर सही मार्ग जान लेना चाहिये । इस तरह मन मे चिन्तन कर, जानकार से पता लगाया तो मालूम हुआ कि तू जिस ओर की पगडडी से चल रहा है—वह तुझे आगे नही पीछे की ओर ले जाने वाली है । तुम्हारे श्रम और शक्ति को व्यर्थ करने वाली है । तू मेरे बताये मार्ग की ओर बढ । यह मार्ग तुझे जल्दी और निर्विघ्नता-पूर्वक सही स्थान पर पहुँचा देगा ।

इस तरह मार्ग बताने वाले की सलाह और उसके सुझाव पर यदि वह पूर्व पकडे कुमार्ग से मुडकर एव उसके बताए सुमार्ग से चलेगा तो क्या होगा ? निश्चय ऐसा करने से उसका उलटमार्ग का चक्कर घटेगा और वह इष्ट स्थान की ओर बढ जायेगा । वह जो दो चार खेतो का चक्कर खा गया था, सही रास्ता पकडने से अब वह चक्कर घटेगा और मूल मार्ग की ओर बढता रहेगा ।

इसी तरह इस जीव के लिए बात है कि जो ससाररूप अटवी मे विषय-कषाय के चक्कर मे गोते खा रहा है, अपने जन्म मरण को बढा रहा है, भव शृ खला को बजाए घटाने के और ज्यादा कर रहा है । यदि उसको मार्ग और कुमार्ग का ज्ञान हो गया और इस ज्ञान के चलते वह कुमार्ग छोडकर, सुमार्ग की ओर कदम बढाया तो इसके भी दो फल होगे । एक तो भव भ्रमण बढाने के कारणो से बच गया तथा दूसरा गन्तव्य की ओर आगे बढा । परन्तु यह कब हुआ ? जानने भर से नही हुआ । हाँ, जानना पहला साधन है, फिर मार्ग कुमार्ग का परिज्ञान करके, उस पर चलना-सम्यक् क्रिया है । क्रिया को सम्यक् बनाने के लिए, ज्ञान की आवश्यकता होती है । फिर क्रिया के लिए, शक्ति और सामर्थ्य होते हुए, उसे प्रगट करने की आवश्यकता है ।

## हर प्राणी मे सिद्ध बनने की शक्ति है

भ० महावीर ने किसी भी जीव को कमजोर नही माना है। उन्होने कहा—हर प्राणी मे, हर मानव मे, सिद्धत्व की शक्ति है। इसमे आश्चर्यचकित होने की बात नही। वहुत बार आप बोलते है कि—

> "सिद्धा जैसो जीव है, जीव सोही सिद्ध होय।
> कर्म मैल को आँतरो, बूझे विरला कोय॥"

वन्धुओ! जीव मे और शिव मे, आत्मा और परमात्मा मे अतर क्या है? महापुरुषो ने कहा कि मूल मे दोनो एक है। परन्तु जरा सा अन्तर है। 'सिद्धा जैसो जीव है' अर्थात् यह जीव भी सिद्धो जैसा है। यहा जैसे का मतलब यह कि जैसा परमात्मा का स्वरूप है, ऐसा ही अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन और अनन्तशक्ति आदि गुणो से युक्त जीव है। अर्थात् वे सारे गुण आप मे और हम मे भी मौजूद हैं। परन्तु कोई कहे कि वृक्ष जैसा ही बीज है तो यह कथन आप मे से किसी को नही जचेगा। आप सोचेंगे कि कहा वृक्ष की लम्बाई, मुटाई, वडी-वडी डालिया, फूल-फल-पत्ते और कहा एक नन्हा, लघुरूप बीज! दोनो की एकरूपता सहसा गले उतरने जैसी बात नही है। परन्तु यदि आप ऐसा कहने के भाव को ध्यान मे लेगे तो समझ जायेगे कि जो वृक्ष का विस्तार है, वृक्ष मे जो भाव है, रूप है, कोमलता और कर्कशता आदि वे सारे के सारे गुण, वीज मे मौजूद हैं। यदि वीज मे ये गुण नही होते तो निश्चय वृक्ष मे भी उन-उन गुणो के दर्शन नही होते।

न्याय शास्त्र का सिद्धान्त है कि—"कारण-गुणा हि कार्य-माश्रयन्ति"। याने कारण के गुण ही कार्य मे आश्रय पाते हैं। अन्तर इतना है कि वीज मे जो गुण मौजूद हैं, वे शक्ति रूप मे, मूलरूप मे है। प्रकट रूप मे प्रत्यक्ष रूप मे नही है। वीज और वृक्ष का यह अन्तर स्पष्टतः समझ में आ सकता है। वैसे ज्ञानी ज्ञान से, जीव और

शिव का अन्तर समझ लेते, परन्तु अज्ञानियो को प्रत्यक्ष होते हुए भी समझ में नही आता।

## प्रगति का बाधक प्रमाद

नीतिज्ञ विद्वानो ने कहा है कि मनुष्य सुखी क्यो नही बनता ? गरीबी के दु खो से मुक्ति क्यो नही पाता ? कोई मूर्ख क्यो रहता है ? पण्डित क्यो नही बनता है ? इन सारे प्रश्नो का उन्होने एक ही सक्षिप्त और सही उत्तर दिया—जवाब दिया कि मनुष्य मे आलस्य बैठा हुआ है—प्रमाद घुसा हुआ है। इसी कारण मनुष्य धनी नही बनता, पडित और ज्ञानी नही बन पाता है और न साधना करके सिद्ध ही हो पाता है। यदि वह आलस्य और प्रमाद को छोड दे तथा पुरुषार्थपूर्वक साधना मे लग जाय तो साधक से सिद्ध होते देर नही लगे। सिद्धि मे रुकावट डालने वाला आलस्य ही तो है, जो मानव का परम शत्रु है।

## आलस्य ही शत्रु और पुरुषार्थ ही मित्र

व्यवहार जगत् मे शत्रु मित्र की परिभाषा अलग रूप मे की जाती है। जैसे कोई किसी का नुकसान कर दे, हानि पहुँचा दे तो वह शत्रु। और समय पर सहायता कर दे, लाभ पहुँचा दे तो वह मित्र बन जाता है। नीतिकारो ने कहा है—

> "आलस्यं हि मनुष्याणा, शरीरस्थो महान् रिपु·।
> नास्त्युद्यम समो बन्धु, यत् कृत्वा नावसीदति ।।"

याने मनुष्य के शरीर मे रहने वाला, आलस्य नाम का एक बडा शत्रु है। और उद्यम-पुरुपार्थ के समान एक बन्धु भी है, जिसको करके वह कभी दु खी नही होता है। आलस्य ऐसा शत्रु है जो किसी भी प्रकार की प्रगति नही होने देता। पद-पद पर बाधा पहुँचाता है। सासारिक सिद्धि में भी जब उससे बाधा खडी होती है तो आध्यात्मिक सिद्धि की तो बात ही क्या ? हमारा बाहरी शत्रु जितना

घातक और अपकारी नही, उससे बढकर यह शरीरस्थ आलस्य शत्रु है। दूसरी ओर पुरुषार्थ से बढकर अपना कोई मित्र नही—बधु नही है, जिसका कि आश्रय ले मानव दु खी नहीं होता। ये दोनो शत्रु और मित्र हमारे अन्तर के है—अपने है । बाहर के और पराये नही । अत इनसे बचने और काम लेने मे भी सूझबूझ की अपेक्षा है।

**समय और सत्संग का सुअवसर**

मनुष्य जीवन निस्सन्देह एक वरदानी जीवन है। कहा भी है—"जो फरिश्ते कर नही सकते, उसे इन्सान करते है।" याने जो देवदूतो से भी नही हो सकता, उस काम को इन्सान अच्छी तरह से कर लेता है। आवश्यकता है सत्पुरुषार्थ के द्वारा समय के सदुपयोग की। बहुत से लोग ऐसे है, जिनको स्वस्थ शरीर, धनधान्य की समृद्धि, सत्सग और समय खाली मिलता है। वाणिज्य क्षेत्र मे, राज्य द्वारा साप्ताहिक-अवकाश दिन मनाया जाता है। इनमे कोई विशिष्ट कार्य होना चाहिये। सत्शास्त्र के पठन-पाठन और धर्म-ध्यान की स्थापना से, समय को सफल किया जा सकता है। पर अवसर पाकर भी दिन भर हाय हाय करते रहे और सघ-समाज एव देशहित का कोई कार्य नही कर सकते तो उन्हे क्या कहना चाहिये ?

बहुत से लोग ऐसे है जो छुट्टी के दिन और अधिक प्रमादी हो जाते। और दिनो मे पाच बजे उठने वाले, अवकाश के दिन आठ नौ बजे उठते। और इधर-उधर घूमने मे समय को गुजार देते। भला ! ऐसे बुद्धिमानो से आत्मसाधन और समाज सेवा की और क्या आशा की जा सकती ? बुद्धिमानो को सोचना चाहिये कि अवकाश काल मे भी यदि शास्त्र, स्वाध्याय और पौषध आदि सत् क्रिया की आराधना नही कर पाये, आलस्य-प्रमाद मे समय गवा दिया तो कितना पश्चात्ताप होगा ? शास्त्र मे भी कहा है—

जाजा वच्चइरयणी, न सा पडिनियत्तइ।
अहम्म कुणमाणस्स, अफला जति राइओ ॥

अर्थात् जो जो रात्रिया जाती है, वे फिर लौटकर नही आती। अधर्माचरण करने वाले की राते व्यर्थ जाती है। अत प्रमाद को छोड, समय का सदुपयोग करना चाहिये।

**पुरुषार्थ से कर्म काटे जा सकते हैं**

मनुष्य अपने मन मे बसे आलस्य को निकालकर, जब पौरुष को जगाता है, चेतना मे प्राणशक्ति फूँकता है, उत्साह एव लगन को प्रदीप्त करता है, तो वह सब कुछ करने के योग्य हो जाता है। वास्तव मे मनुष्य कोई भी अयोग्य नही है, हर व्यक्ति योग्य है, समर्थ है। एक कहावत भी है—"अयोग्य पुरुषः नास्ति।" याने कोई पुरुष अयोग्य नही होता। जिसमे पुरुषार्थ की क्षमता है—योग्यता है, भला! वह अयोग्य कैसे रहेगा?

हम ही साधु बनने की और कर्म काटने की योग्यता रखते है और आप नही, ऐसी बात नही है। आप मे भी योग्यता है, औरो मे भी है। आप भी इस मच पर बैठ सकते है, प्रवचन दे सकते है, साधना कर सकते है, ब्रह्मचारी बन सकते है। आप भी योगी, साधु एव त्यागी सब कुछ बन सकते हैं। परन्तु क्या कसर है फिर! आप आलस्य एव प्रमाद से ग्रस्त है। आप चल सकते है और पुष्कर की घाटी पार करके, पुष्कर पहुँच सकते है। परन्तु कदम बढायेगे, चलेंगे तभी तो पहुँच सकते हैं। अगर एक कदम नही बढायें तो यहाँ से बाजार तक पहुँचने का सवाल नही रहेगा।

ज्ञानियो ने कहा कि—मानव! तुमको मनुष्य भवरूप यह बहुत ऊँचा अवसर मिला है। अत "उट्ठिए नो पमायए।" उठो और प्रमाद मत करो। भ० महावीर ने मानव-कल्याण की भावना से कहा—बहुत मुश्किल से एक-एक इन्द्रिय का विकास होता है। तेरे को तो पाच इन्द्रिया मन और दस बोलो की योग्यता प्राप्त हुई है। ऐसी स्थिति मे गफलत या प्रमाद छोडकर, कर्म काटने मे, भव प्रपच त्यागने मे पुरुषार्थ कर। पौरुष करने से ही बेडा पार होगा। कर्म

बाधने का पुरुषार्थ तो अनन्तकाल से, बिना किसी के कहे और समझाये भी मनमौजी से करता रहा। इस प्रकार के पुरुषार्थ करते अनन्तभव और कालचक्र पूरे हो गए—दिन, महीने और सम्वत्सर की तो बात ही क्या ?

आलस्य शत्रु इतना बुरा है कि कर्म तोडने के मार्ग मे लगे हुए को भी भटका देता है, पुरुषार्थ हीन बना देता है। सचित अशुभ कर्म के उदय हो जाने से, मानव आलस्यवश, नई साधना कर नही पाते और चालू की हुई मे भी पीछे रह जाते है। भ० महावीर ने अपने पूर्वजन्मो के अनुभवो से बताया कि—यदि मानव सम्यक् पुरुषार्थ नही करे तो वह भवसागर के किनारे पहुँचकर भी गोते खा जाता है—सब कुछ गवा देता है।

### विश्वभूति के रूप में प्रभु का चिन्तन

जरा भगवान् महावीर के सोलहवे भव की बात देखिये और उस पर विचार कीजिये। प्रभु ने कहा—जब मैंने विश्वभूति के रूप मे एक राजघराने मे जन्म पाया। उस समय परिवार की सुख समृद्धि को पाकर मुझे विषय कषायो मे उलझने के बहुत मौके मिले थे। परन्तु पूर्वजन्म के सस्कार और पुरुषार्थ की सजगता ने मदद की। फलत विशाखभूति भ्राता के द्वारा कपटपूर्वक आमोद-प्रमोद से रहनेवाले बगीचे से मैं हटाया गया। बाह्य निमित्त को देखते रागद्वेप बढने का अवसर था। मगर मैंने क्रोध को ज्ञानभाव से मार दिया।

सचित कर्म अवसर पाकर उदय मे तो सब को आता है। परन्तु ज्ञानी और अज्ञानी के भोग मे अन्तर है। ज्ञानी उदय मे आए कर्म को क्षण भर में काबू कर लेता और जहर के प्याले को अमृत समझकर पी लेता। अज्ञानी उसमे उलझ जाता है। ज्ञानी सोचता है कि मारना है तो क्रोध को मारो। बाहरी दुश्मन मारने से बढते रहेगे। उनको मारने से तुम्हारा भी मरण बढेगा। किन्तु विकारो को मारोगे तो तुम अमर हो जाओगे। इस प्रकार

सद्विचार के प्रकाश मे विश्वभूति ने सही सोचा और अपमानजन्य क्रोध को भुला दिया।

नीति के विद्वानो ने ठीक ही कहा है—

**"आयुर्वित्त गृहच्छिद्रं, मन्त्र मैथुन भैषजम् ।**
**तपो दानापमानञ्च, मतिमान् न प्रकाशयेत् ।।"**

अर्थात् आयु, धन, घर का भेद, मन्त्र, मैथुन, दवा, दान, मान और अपमान को प्रगट नही करना चाहिये। मगर इनको भूलना आसान नही होता! क्या किसी को कुछ दान देकर भूल जाओगे ? या किसी ने मान दिया या तिरस्कार किया, तो क्या उसे भूल जाओगे ? सभव, सहसा उसे भूल नही पाओगे। और कदाचित् भूल गए तो जन्म-मरण का चक्कर ही छूट जायेगा। मनुष्य ज्ञान की बात और दर्शन की बात भूल जायेगा। बचपन मे प्रतिक्रमण सीखा और धधे मे लगा तो पूछने पर कहता है कि महाराज! सब भूल गया। धन्धे की धुन मे धर्म का ध्यान ही नही रहा। कहावत प्रसिद्ध है कि–

"भूल गया राग-रग, भूल गया चकरी।
तीन बातें याद रही, तेल, लोण, लकडी।"

क्या करू ? माया का जाल एक बडा जजाल है। उसमे उलझने पर सब की होश खत्म हो जाती है। क्षमा करेंगे।

अभी व्याख्यान मे जो कुछ भी उपदेश दिया, वह आप सबको लक्ष्य करके ही दिया। मगर आश्चर्य है कि आप घडी भर के बाद उसे भूल जाओगे। मेरे इन सारे कहे को अनकहा कर दोगे और सब पर विस्मृति का पानी फेर दोगे। परन्तु इसी व्याख्यान सभा मे, किसी ने उठने-बैठने या किसी अन्य प्रसग पर, दो शब्द चुभते कह दिये तो क्या उन्हे भी भूल जाओगे ? नही, हर्गिज नही। आप अपनी बाह की कमीज को ऊपर उठाते हुए, शेर की तरह दहाडोगे कि जरा व्याख्यान से बाहर चलो तो मजा बतायेगे। इतना कहकर ही नही रहोगे। कदाचित् सामने वाला कमजोर रहा तो जैसे-तैसे भी उससे बदला चुकाने का प्रयत्न करोगे।

तो उपदेश की बात भूल गये और किसी के कहे प्रतिकूल दो शब्द भूल नही सके—सहन नही कर पाये ! ठीक ही कहा है किसी कवि ने—

"क्रोध न छोडा, लोभ न छोडा, सत्य वचन क्यो छोड दिया।
प्रभु-नाम रटन क्यो छोड दिया

इस तरह भूलने की बात तो नही भूलते और नही भूलने की बात भूल जाते हो। कैसी उलटी दुनिया है ?

### विश्वभूति का मनोनिग्रह

विश्वभूति ने चिन्तन करके क्रोध और वैर को भुला दिया। राजा और राजकुमार ने स्वार्थ-प्रेरित होकर जो धोखा दिया, तिरस्कार किया, वह यदि आज का व्यक्ति होता तो वर्षो न्यायालय मे लडता रहता। परन्तु विश्वभूति ने मन को मोड लिया, और रानियो तथा भोगोपभोग योग्य धन-धान्यो को छोडकर दीक्षित हो गया।

अगर वह अपनी हठ पर अड जाता तो क्या राजकुमार उसे बगीचे मे नही रहने देता ? क्या नागरिक जनो के साथ सम्बन्ध बनाये रखने मे कोई उसे रोकता ? और भोगोपभोग मे कोई उसे बाधा दे सकता था ? नही। परन्तु उसने समझा कि ये विषय-कषाय ही दु ख के कारण है। इनमे उलझा रहने वाला प्राणी कभी सुख और चैन से नही रह सकता है। इसी के कारण मेरे चाचा और भाई को मेरे साथ छल करना पडा। हाँ, तो पूर्ण मनोनिग्रह करके विश्व-भूति, सभूतिविजय के पास दीक्षित हो किस प्रकार ज्ञान और क्रिया का आचरण कर रहे है, देखिए !

"विनय सहित गुरु सेवा मे, तप साधन करते हैं,
मास क्षपण के पारण हित, मथुरा मे आते है।
राज भवन मे विशाखभूति, नगर निरखते हैं,
देख साधु को वैरस्मरण कर, रोष भराते हैं॥"

भ० महावीर की यह मगलमयी जीवन गाथा जन-जन को आज भी उसी तरह शिक्षा देने वाली है। जरा इस पर मन से चिन्तन करे तो यह हमारे जीवन-निर्माण मे सहायक सिद्ध होगी।

**भोगकाल मे योग का महत्व**

मुनिव्रत मे दीक्षित होकर एक हजार वर्षो तक विश्वभूति ने इन्द्रियो एव मन की वृत्तियो को वश मे किया। और उत्कृष्ट वैराग्य भाव से वे तप का साधन करने लगे। युवावस्था के भोग काल मे, ससार के लोग, जब शब्द, रूप, रस गन्धादि के विषयो के लिए छटपटाते है, ऐसे समय मे विश्वभूति पाच समितियो से समित, तीन गुप्तियो से गुप्त, पच महाव्रतो का पालन करते हुए, तप साधना मे तत्परता से जुट गए। जैसा कि कहा है—

**"पच महव्वय जुत्तो, पचहि समिओ, तिगुत्ति गुत्तो य।**
**सब्भितर बाहिरओ, तवो कम्मसि उज्जुओ॥"**

समाज मे कई ऐसे भी लोग है जो उम्र से परिपक्व है और कई बच्चे-बच्चियो के भी बाप-दादा हो चुके है। फिर भी अपनी पूरी अवस्था मे भी वासना पर नियन्त्रण नही करे तो कितनी शर्म और दु ख की बात है? तीस बत्तीस वर्ष की उम्र वाला नौजवान, जिसने कि सासारिक सुख सुविधा का अनुभव नही किया। और वह कहे कि कुछ समय के बाद योग ग्रहण करू गा तो समझा जा सकता है कि इसके अभी भोगावली कर्म विशेष बाकी है। परन्तु चिता के रथ पर चढने वाले, बूढो के मन से वासना नही निकले तो उनके लिए फिर साधना का समय कब आने का?

कोई भी व्यक्ति सब बाते सुनले और पढले, परन्तु उसे क्रिया के रूप मे परिणत नही करे तो क्या समझना चाहिये? पढ-लिखकर जिसने वस्तु का सम्यग्ज्ञान पा लिया तो उसे अपना रास्ता स्वय तय करना चाहिये। यदि सब कुछ जानकर भी, कदम आगे नही बढाता तो उसका सुनना और पढना किस काम का?

### समय पर कार्य करना ही समझदारी है

कोई लडका स्कूल मे भर्ती होकर, वर्षो शाला का कोर्स पूरा करे, फिर भी घर की आवश्यकता और पिता के कहने पर नौकरी आदि नही करना चाहे तथा कहे कि मै तो विद्यार्थी ही बना रहना चाहता हू तो कैसा समझा जायेगा ? कोई अपनी जिम्मेदारी और दायित्व को नही समझ, सदा विद्यार्थी ही बना रहना चाहे तो उसके पढने का क्या उपयोग समझा जायेगा ? क्या आप भी विद्यार्थी ही रहकर, जीवन गुजारना चाहते है या कोई व्यापार धन्धा भी पकडना चाहते है ! व्यापार धन्धे की तरह धर्ममार्ग मे भी, साधना के मार्ग मे भी आपको आगे वढना चाहिये। समय का क्या भरोसा ? काल की क्या प्रतीति ? काले नाग के मुँह मे दवे मेढक की तरह मानव का जीवन है। काल कब मुँह बन्दकर खेल समाप्त कर दे, कह नही सकते। विद्वानो ने कहा है कि काल विविध रूप धर कर खेलता है। दिन रात, सध्या, प्रभात, बसत, ग्रीष्म, वर्षा और शरद् आदि मे काल क्रीडा करता और अजलि के जल की तरह, आयु जा रही है, फिर भी नही चेते तो कब सम्भलेगे ! जैसे कि—

"दिनमपि रजनी सायं ., शिशिर बसन्तौ पुनरायात ।
कालः क्रीडति गच्छत्यायु , तदपि न मुंचत्याशा वायुः ।।"

आप समझते एव कहते हैं कि महाराज ने सुना दिया और हमने सुन लिया। अपनी हाजिरी भर दी। बहुत से तो ऐसे हैं जो हाजिरी भी नही देते, सुनने सुनाने की तो बात ही क्या ? गाव मे महाराज है, कभी दर्शन कर लेना ही पर्याप्त समझते है। उनका मन इसी मे भरा हुआ है कि हमारे गाव मे महाराज विराजमान हैं। यदि ऐसी स्थिति वनी रही तो जीवन का यह लम्बा मार्ग कैसे पार होगा ? क्योकि समय थोडा और रास्ता लम्बा तथा वह भी अज्ञात एव अस्वाधीन है।

### साधना मे गुरु सन्निधि आवश्यक

हजार वर्ष की उम्रवाले सयमी विश्वभूति ने सोचा कि ससार मे जीव को रुलानेवाले—भटकानेवाले तो ये विपय-कपाय ही है।

यो तो जीवन को मोडनेवाले अन्य भी कई कारण हैं, किन्तु विषय-कषाय मे सबका समावेश हो जाता है। बाहर के कारण तो विषय है और अन्तर के कारण कषाय। इन दोनो को काबू मे करने एव वश मे रखने के लिए साधना करनी चाहिये। बडी से बडी साधना गुरु के बिना ठीक नही होती। साधना की सफलता के लिए, अच्छे गुरु की देख-रेख आवश्यक है। कारण, बिना गुरु के साधक भटक जाता है—

**"भटक मुआ भेदू बिना, कौन बताये धाम।**
**चलते चलते दिन गया, पाव कोस पर गाम॥"**

एक छोटे से मत्र की साधना करनेवाला भी, यदि अच्छे गुरु की सलाह के बिना, साधना मे बैठ जाता है तो कभी-कभी लेने के देने पड जाते हैं। जब छोटी-सी साधना मे भी गुरु की सन्निधि चाहिये तो जन्म-मरण की बेडी को काटनेवाली साधना मे, भव-भ्रमण मिटानेवाली साधना मे, कितने बडे त्यागी और ज्ञानी सद्गुरु की सन्निधि आवश्यक होनी चाहिये।

**दोनो भाइयो का मथुरा मे मिलन**

इसी विचार से विश्वभूति ने सभूतिविजय आचार्य के चरणो मे, दीक्षा अगीकार की। और वे उनके सान्निध्य मे साधना और इन्द्रियो पर विजय करते हुए तपाराधन करने लगे। मास क्षपण तप के साथ विहार भी करते और साधना भी करते। गृहस्थ साधना करता है अपने घर मे बैठे और साधु साधना करता है, ग्राम, नगर, पुर, पाटन मे विचरण करते। वह घूमते हुए कभी नगर मे कभी जगल मे और कभी पहाडो की गुफा मे चला जाता है। विश्वभूति इसी प्रकार तप करते-करते एक समय घूमते हुए मथुरा नगरी आ पहुँचे। विश्वभूति जब मास क्षपण तप के पारणे मे मथुरा नगरी मे घूम रहे थे, उस समय विशाखभूति भी वही था वह किसी शादी के कारण से आया हुआ था। उसके नौकरो ने बाजार मे घूमते हुए

मुनि को देखा और राजा को सूचना दी। उसने स्वय झरोखे से नगर का अवलोकन करते मुनि को देखा और पहचान लिया।

**दर्शन मात्र से वैरभाव की जागृति**

विश्वभूति को देखते ही विशाखभूति की स्मृति मे वैर भाव सजग एव तीव्र हो उठा। अज्ञानी कर्म बन्धन काटने के साधनो को भी कर्म बाँधने का साधन बना लेता है। साधु के दर्शन जो पुण्य-बध और कर्म निर्जरा का साधन है, उनसे राग-द्वेष के भाव जागृत करना यह कर्म काटने के साधन से कर्म बाधना ही तो है! विशाखभूति के लिए यही हुआ। वह साधुरूप मे भी अपने भाई को देखकर, राग-द्वेष के विचारो मे, चक्कर खाने लगा। वैर की ठढी पडी आग उसके मानस मे धू धू कर जलने लगी। मुनि को क्या देखा, मानो क्रोध की ज्वाला मे अपने आपको जला बैठा।

यद्यपि मुनि विश्वभूति, भाई विशाखभूति के वैर को भूल चुके थे। याद तो उन्हे ही आनी चाहिये थी। कारण विशाखभूति के चलते ही उनको समस्त भौतिक सुख-सुविधाओ से विलग होना पडा और यह साधुता स्वीकार करनी पडी थी। मगर उन्होने तो विशाखभूति के किए गए अपकार को भी आत्महित मे उपकार मान लिया। मन से सब कुछ छोड देने पर उन्हे विशाखभूति का भय और वैर क्या होता! परन्तु मुनि के बदले उलटे विशाखभूति ही तवे की भाति मन ही मन जल रहा था। सच है, अज्ञान ही मनुष्य को भटका देता है। बुद्धि विपरीत कर देता है। इस अज्ञान को दूर करने के लिए, सत्सग और स्वाध्याय का विधान है। सत्सग पर के कल्याण का कारण और स्वाध्याय अपनी आत्मा के कल्याण का कारण होता है। स्वाध्याय दूसरे के मन को नही जगाता। परन्तु गुरु या साधु से सुनकर, और पाव घडी एकान्त मे बैठकर जब व्यक्ति चिन्तन करता और अपने अन्तर मे झाक कर देखता कि मुझमे यह कमी है तो वह अपनी आत्मा को तार देता है। आवश्यकता है कि हम इसके लिए आलस्य या प्रमाद को त्याग कर पौरुष का सहारा ले।

## दूसरे के भरोसे रहना भारी भूल

एक लघु कथा आपके सामने प्रस्तुत कर रहा हूँ। यदि आप उस पर गौर करेंगे तो यह आपके जीवन को सुधारने मे सहयोगी बन सकती है। उज्जैन मे, सोमदेव नाम का एक पडित रहता था। बुढापे मे अचानक उसकी नजर जाती रही। वह अधा हो गया। उसकी यह दशा देखकर, उसके कुछ कुटुम्बीजनो को बडी चिन्ता हुई। उसके आठ लडके और आठ ही बहुए थी। लडको ने कहा—पिताजी! आपकी आज्ञा हो तो हम सब आपकी आखो का आपरेशन करा देते है। इससे आपको दिखने लगेगा। इस तरह आप अपना सब काम पहले जसे स्वय करने लगोगे।

परन्तु सोमदेव को यह बात पसन्द नही आयी। उसने कहा—पुत्रो! मेरे कर्मोदय से ही आखे चली गयी। अगर आपरेशन के बाद भी फिर बिगड गयी तो क्या होगा? मुझे तो तुम सबकी आखो का भरोसा है। अपनी आखो के लिए व्यर्थ श्रम की क्या आवश्यकता? अपनी होगी भी तो मात्र दो ही आखे होगी और तुम सबकी तो बत्तीस हैं। इस तरह सोमदेव ने उन लडको के बहुतेरे कहने पर भी, आखे नही बनवायी। एक बार अकस्मात् उस गाव मे आग लग गई। आग लगते ही सारी नगरी मे भगदड मच गई। अपनी-अपनी जान बचाने के खातिर सब वहा से भाग गए। परन्तु पडित सोमदेव अधा होने के कारण अटक गया—भाग नही सका। उसको विश्वास था कि बेटे जान बचाने को आएगे। परन्तु कोई भी नही आए और उसको अपनी जान गवानी पडी। उसके बेटे और बहुओ की आखें, जिस पर कि वह पूर्ण भरोसा रखता था, समय पर काम नही आयी। वे सोमदेव को अग्नि देवता की भेंट होने से बचा नही पायी।

हमारे बहुतेरे भक्त ऐसे हैं, जो सोमदेव की तरह समझ बैठे हैं कि हमे तो महाराज है। जब महाराज स्वय ज्ञान की गगा घर मे बहा रहे हैं, तो मैं स्वाध्याय मे श्रम क्यो लगाऊ? हम तो अपने ज्ञानी-गुरु के सहारे बैठे है। हमारे तो महाराज की आखें हैं, फिर

हमे क्या चिन्ता है। जो स्वय स्वाध्याय करता है, वह बेभरोसा बनकर आखे बनाता है और जो महाराज की आखो पर निर्भर रहते है, वे सोमदेव की तरह बडी भारी भूल करते है और अपने जीवन के साथ भयकर खिलवाड करते है।

तो याद रखो, जैसे दूसरो पर भरोसा रखकर सोमदेव को भस्मीभूत होना पडा, वैसे ही ससारी आदमी भी स्वाध्याय से विमुख होकर, अपने ज्ञान चक्षु से वचित रहते है और जन्म-मरण का चक्र बढा कर अपने को बन्धन मे डाल लेते हैं। जो अपने जीवन मे स्वाध्याय करेंगे, धर्मसाधना मे कदम बढायेगे उनका लोक एव परलोक दोनो मे कल्याण होगा।

●●

## १२

# अशान्ति का मूल : क्रोध और लोभ

### असमाधि और उसके भेद

बन्धुओ ! अभी आपके सामने दशाश्रुत स्कन्ध का प्रसग चल रहा है। उसके पहले अध्याय मे भगवान् ने फरमाया है कि मानव के मन मे असमाधि किन-किन कारणो से पैदा होती है ? मन की अशान्त और चचल स्थिति को असमाधि कहते है। असमाधि की दशा मे मानव किसी भी काम को मन लगाकर नही कर पाता। कारण उसके मन मे चचलता और अशान्ति रहती है। अत शास्त्र-कार ने असमाधि से बचने की शिक्षा दी है।

असमाधि के कुछ बाहरी कारण होते और कुछ भीतरी कारण। काटा, कील, दड प्रहार आदि बाहरी और राग-रोप कलहादि आन्तरिक कारण, कभी असमाधि के हेतु हो भी सके और कभी नही भी बने। बाहरी कारण से होनेवाली असमाधि प्राय तन तक ही सीमित रहती है। परन्तु भीतरी कारण, तन, मन दोनो पर असर करते है—प्रभाव डालते है। भ० महावीर ने इन दोनो प्रकार की असमाधियो का प्रथम अध्याय मे विचार किया है। और साधक को इस बात के लिए सावधान किया है कि यदि वह असमाधि तथा असमाधि के कारणो से बचेगा, तो साधना मे सरलता से आगे बढ सकेगा।

असमाधि के दो प्रकारो मे एक को द्रव्य असमाधि तथा दूसरे को भाव असमाधि कहा गया है। अभी प्रस्तुत प्रसग मे मुनिजी ने भाव असमाधि का नमूना प्रस्तुत करते हुए, अपने कथन के प्रसग मे दो बाते बतायी—"कोहणे और सजलणे।" यो तो दोनो एक ही है,

परन्तु कषाय के भेदो के साथ दो बताये गये है। ये दोनो भाव असमाधि के कारण है। हम करीब-करीब द्रव्य असमाधि से बचने की बडी चिन्ता करते है। कभी पेट मे दर्द हो गया, कभी सिर मे दर्द हो गया, कभी चलते-चलते ठोकर लग गई, कभी पैर मे काटा लग गया तो उसका हमारे मन को बडा ख्याल आता है। और सोचते है कि इस पीडा को, दर्द को—वेदना को, किस तरह जल्दी से रफा-दफा किया जाय—किनारा लगाया जाय।

**द्रव्य से भाव-असमाधि बड़ी**

परन्तु सोचने की बात है। भगवान् महावीर कहते है कि मानव! यह बाहरी असमाधि तो कुछ भी नही है। जबकि तू इस असमाधि को इतना बडा महत्व का रूप दे रहा है और इसके लिए बडी चिन्ता कर रहा है तथा हाय-हाय मचा रहा है। अरे! यह बडी असमाधि नही है। बडी असमाधि तो कोई दूसरी है। जिस ओर तू लक्ष्य ही नही कर रहा है। वह असमाधि विकारो की है, कषायो की है। यदि क्रोध मन मे जाग रहा है, मान जाग रहा है, माया का जाल मन के भीतर बिछ रहा है अथवा लोभ सता रहा है या कुछ ऐसे ही दूसरे विकार खडे हो रहे है—इन विकारो की ज्वालाये उठ रही हैं तो जल्द सावधान हो जा। ये बडी असमाधि के कारण हैं। इनसे होनेवाले पतन या सर्वनाश को सहसा कोई नही बचा सकता।

इनको रोकने का, समाप्त करने का प्रयत्न करो। ये सारी भाव असमाधियाँ है। ये असमाधियाँ कब किसको, किस तरह पछाड देती है, इसके लिए शास्त्रो मे अनेको उदाहरण प्रस्तुत किये गये है। जिनमे भाव असमाधि के कटुक फल का चित्रण किया गया है। इनमे से एक उदाहरण आपके सामने चल रहा है और वह है भ० महावीर के पूर्वभवो मे सोलहवे विश्वभूति के भव का।

भ० महावीर ने अपने पूर्वभवो मे छोटी बडी साधना करते हुए, जीवन को ऊपर उठाया, साधना के अनुकूल सामग्री उपलब्ध

की। पहले खूब अटकाया और भटकाया भी। साधना जब ज्ञानभाव मे चलती है तो भटकना रुकता है। और अज्ञानभाव मे चलती है तो भटकना बढाती है। महावीर कहते है कि कर्मों का फल, किसी व्यक्ति विशेष के साथ पक्षपात नही करता है। कर्म के सामने कोई छोटा या बडा हो, अमीर या गरीब हो, राजा या रक हो, चाहे कोई अवतारी होनेवाला भी क्यो न हो, परन्तु कर्मों का फल उन्हे भी भुगतना पडता है। इसलिए समझदारी इसी मे है कि कर्मों का बँध करते सावधान रहो। यदि बध करते सावधानता नही रक्खी—चूक गये तो उनका परिणाम भयकर हो सकता है।

**साधना के दो शत्रु—क्रोध और लोभ**

बन्धुओ! आपको पूर्व का कथन ध्यान मे होगा कि विश्वभूति ने अपने सामने आये हुए, सासारिक प्रतिकूल वातावरण और भाई के द्वारा किये कपटपूर्ण व्यवहार को सहन कर लिया। उन्होने इसके लिए विशाखभूति राजकुमार से लडाई नही की, झगडा नही किया। घटित घटना से उग्ररूप धारण करने के बजाय, अपनी उग्र वृत्तियो का शमन कर लिया। आचार्य सभूति विजय के चरणो मे, साधना करते हुए, वे कर्म काटने मे लग गये।

परन्तु देखा जाता है कि कभी-कभी आगे बढने के सयोग, प्राणी के लिए प्रतिकूल भी बन जाते हैं। कहा गया है कि उन लुभाने-वाले और साधक को बीच मे रोकनेवाले भावो मे दो प्रमुख शत्रु है—बाधक है, क्रोध और लोभ। नीतिकारो ने भी कहा है कि—"क्रोध लोभाद् विनश्यति।" याने क्रोध और लोभ से धर्म नष्ट होता है। धर्मरूपी कल्पतरु सत्य से पैदा होता है, दयादान से बढता है, क्षमा से कायम रहता और क्रोध लोभ से नष्ट हो जाता है। जैसा कि कहा है—

"सत्येनोत्पद्यते धर्म., दयादानेन वर्धते।
क्षमया च स्थाप्यते धर्म, क्रोध लोभाद् विनश्यति॥"

आप उपवास आदि तपस्या कम कर सके या ज्यादा कर सके, यह आपकी शारीरिक अनुकूलता पर निर्भर है। परन्तु आप तपस्या करने के साथ-साथ इस तपस्या को भी ध्यान मे रखे कि मैं क्रोध लोभादि विकारो पर, जो अपने को हानि पहुँचानेवाले हैं, नियन्त्रण कर रहा हू या नही ? यदि हम बाह्य तपस्या करने मे ही रहे और इस बात को भूल गये। दिमाग की उत्तेजना को नही रोका एव मन के प्रलोभनो मे युग की हवा की तरफ ही बहते गये और ईर्ष्या एव रोष आदि को शमन नही किया तो हमारी तपस्या जो फलवती होनी चाहिये, कर्म काटनेवाली होनी चाहिये, भव बन्धनो से बचानेवाली होनी चाहिये, वह सार्थक नही बन पायेगी—भव बन्धन को नही काट सकेगी। प्रत्युत भव बन्धनो मे और जकडा देगी।

इसलिए असमाधि की चर्चा के प्रसग मे, भगवान् ने कहा कि मानव ! तू सज्वलन क्रोध मे जलता रहा, बात-बात मे उबलता रहा, तो तुम्हारे ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तपके गुण भीतर ही भीतर, भस्म होते जायेंगे—जलकर खाक हो जायेंगे। फिर तो तुम्हारा सारा किया कराया व्यर्थ हो जायेगा। फलस्वरूप तुम्हे भयकर मानसिक अशान्ति होगी। इसलिए प्रभु ने कहा कि पहले इस बडी असमाधि से दूर रहो।

**क्रोध से बचने का उपाय**

भाव असमाधि अर्थात् क्रोध से बचने का एक रास्ता तो यह है कि जिस किसी निमित्त को पाकर आपके मन मे क्रोध उत्पन्न होता हो, उससे अलग हो जाओ—दूर हो जाओ। यदि वहा खडे रहोगे तो आपके मन मे, उत्तेजन बढेगा। आवेश मे कभी कुछ बोल दिया तो दोनो ओर के मुकाबिले से झगडा हो जायेगा। अत जितना शीघ्र सभव हो, उस स्थान से दूर हो जाओ। दूसरा उपाय है, हटने के साथ दात बन्द कर लो—मुँह बन्द कर लो अर्थात् किसी को कुछ भी जवाब मत दो। मन ही मन यह सोचो कि मैं गूगा और बहरा बन

गया हूँ। मुझे कुछ देर तक भगवान् का ही नाम स्मरण करना है। ऐसा सोच कुछ समय तक मत बोलो।

यदि क्रोध आपको आया और आप उस निमित्त से दूर हो गए और दूसरे नम्बर का उपाय भी आपने काम मे लिया तो आप उस क्रोध की आग मे भस्म होने से वच जाए गे। साधनाशील व्यक्ति को, शान्ति के पुजारी को, इस ओर वडा ध्यान देने की आवश्यकता है। जो इस ओर ध्यान रखकर साधना करता है, उसकी छोटी साधना भी वडी वलवती हो जाती है।

आपने पर्यूषण पर्व के दिनो मे, कल्पसूत्र मे, ऐसा उदाहरण भी सुना होगा कि क्षुधा परीषह को सहन नही करने वाले, एक क्षुल्लक साधु ने, सम्वत्सरी के दिन भी उपवास नही किया और कही से लूखी खिचडी ले आया। उसे वह खिचडी दिखाने पर, अन्य साथियो से तिरस्कार भरे भावो मे, उपालम्भ के शब्द सुनने पडे और उसमे थूक भी दिया गया। परन्तु उसने किसी पर क्रोध नही करते हुए भोजन मे घी समझकर उस खिचडी को खा लिया। पश्चात् उसने अपनी आत्मा का अवलोकन किया और गल्तियो के लिए धिक्कारा। इस प्रकार धिक्कारते-धिक्कारते ही उसे केवल ज्ञान प्राप्त हो गया। इसमे ऐसी क्या वात थी ? तो उसने असमाधि के बजाय, समाधि का उपाय सीख रखा था।

**गाय की टक्कर और राजा की हसी**

मास खमण के पारणे को, गोचरी मे घूमते हुए विश्वभूति के कृश और दुवले शरीर को देखकर राजा के मन में पूर्व का वैरभाव जग गया—जैसा कि आप सुन चुके हैं। न मालूम किसके कितने जन्म है और कौन कव, किसके प्रति, किसलिए कषाय वढाता रहता है ? उसका निर्णय साधारण आदमी के वश की वात नही है। विशाखभूति, मुनि विश्वभूति को देखकर, वैरभाव से जलने और उवलने लगा।

इधर तो उसका रोष करना और उधर मुनि को, भीड से चौक कर एक गाय ने टक्कर मार दी। गौकी टक्कर से मुनि बीच सडक पर धराशायी हो गए। यह दृश्य देखकर राजा का दिल बाग बाग हो गया—बासो उछलने लगा। उसे उस समय जो आनन्द प्राप्त हुआ, वह पूर्व के प्राप्त सभी आनन्दो से बढकर था। नीतिवचन है कि—

**गच्छतः स्खलनं क्वापि, भवत्येव प्रमादतः।**
**हसन्ति दुर्जनास्तत्र, समादधति सज्जना ॥**

चलते हुए कभी कोई आदमी असावधानी से ठोकर खाकर गिर जाता है, तो दुर्जन उसे देखकर हसते है। परन्तु सज्जन पुरुष उसका समाधान करते—यथायोग्य सेवा शुश्रूषा करते हैं। और उसके इस आकस्मिक पतन पर चिन्ता व्यक्त करते हुए सम्वेदना प्रगट करते है।

आज भी कदाचित् कोई आदमी प्रमाद वश या अन्य किसी कारण से गिर पडे, तो कुछ आदमी हसेगे और बोलेगे कि हा, ठीक हुआ। आख मीचकर चलने वालो को ऐसा ही मजा मिलता है। कुछ को यह हसो अच्छी नही लगेगी और वे उस गिरने वाले को, दिलासा देते हुए कहेगे कि भाई साहब! आपने तो पूरा ध्यान रखा, मगर यहा की भूमि ही ऐसी है। खैर, आगे से सभलकर चलिए, और चोट पर पट्टी बधवा लीजिए। इस तरह एक ही घटना पर, सज्जन और दुर्जन दोनो की दो मन स्थितिया देखी जाती है।

राजा का वैरभाव तो था ही, परन्तु गाय ने मुनि को गिरा दिया, यह देखकर उन्हे जोरो की हसी आ गई। जैसे कहा कि—

**"सहसा गौ की टक्कर से, मुनि भू गिर जाते हैं।**
**देख भूप खुश हो मुनिवर की, हसी उडाते हैं ॥"**

गौ की टक्कर से जब मुनि गिरे तो कुछ आदमी विचार करने लगे कि अरे! गुरु महाराज को गाय ने पटक दिया। आओ इन्हे यहा से अलग करे।

### क्रोध को सहना सरल नहीं

विशाखभूति ने जब झरोखे से, गाय की टक्कर से गिरते हुए मुनि को देखा तो वह बोलने लगा ओ हो ! ये तो अपने पौरुष के आगे, किसी को कुछ समझते ही नही थे। कभी द्वारपालो से भी बोलते थे कि चाहूँ तो कपित्थ फल की तरह, तुम्हारे सिर को भी धड से अलग कर दू। तो क्या यही इनकी जवामर्दी का हौसला है, जो एक साधारण गाय की टक्कर भी बर्दाश्त नही कर सके।

विशाखभूति ने जब विश्वभूति मुनि की, इस तरह हसी उडाई—चुटकी ली और व्यग्य वचन कहे तो मुनि को गाय की टक्कर से जो चोट नही पहुँची उससे भी अधिक गहरी ठेस लगी। अन्तर्मन मे क्रोध भडक उठा। साधना के पौरुष पर किया गया यह कुटिल प्रहार, सुप्तभावावेग को जगा दिया और वे क्रोध से भर उठे।

भगवान् महावीर ने दसवैकालिक सूत्र मे कहा है कि—दुर्वचन के प्रहार कान मे पडकर मन को दूषित करते है। जो जितेन्द्रिय और शूर साधक धर्म समझ कर, उनको सहन करता है, वही पूज्य और उत्तम है। शास्त्र कहता है—क्रोध को गालिये, तर्जना को सहन कीजिए, जो कि मानव हृदय के लिए काटे के समान है, शूल के तुल्य है। बाहर का काटा सहना आसान है। परन्तु अन्दर के काटे को सहना बडा कठिन है। लेकिन जो इन्हे सहन कर लेता है, वही श्रेष्ठ है। साधना की दो दशाये है, एक प्रमत्त और दूसरी अप्रमत्त। हम साधक लोग जब प्रमाद भाव मे आ जाते हैं, तो हमारा ज्ञान हल्का हो जाता है। उस समय हमारे ज्ञान की ज्योति मन्द पड जाती है। ज्ञान यदि मन्द और मलिन हो गया तो उसकी शक्ति एव तेजस्विता भी कम हो जाती है।

### विश्वभूति क्रोध के वश मे

विश्वभूति गिरने से जरा आर्तभाव मे थे। उस समय अचानक यह आवाज कान मे पडी और दिल मे तीर की तरह चुभ गई।

शास्त्र मे ठीक ही कहा है कि—"दुर्वचन के दुरुद्धर काटे वैरानुबन्धी और अतिशय भयकर होते है। उसने आख उठाकर ऊपर देखा तो विशाखभूति दिखाई पडा। मन मे वैर जागृत हो गया। ओ हो! यह मेरा पीछा अभी भी नही छोड रहा है। ससार दशा मे मुझे हैरान कह रहा था, तब तो मैने ससार छोडा। राजभवन व प्रिय परिवार का परित्याग कर साधु बन गया। अब भी यह मेरा पीछा कर रहा है। अत मुझे भी इसको इसका प्रतिफल बताना चाहिये। सहने और बर्दाश्त करने से बात आगे बढी हुई है।

यद्यपि मुनि की दीर्घकालीन तपस्या बडी थी। परन्तु उस बडी तपस्या मे आया हुआ, यह छोटा-सा रोष का भाव, मनोभर दूध मे काजी का काम कर गया। मुनि के मन मे, यह कलुषित भाव आया कि मैं तपस्या से कमजोर भी हो गया हूँ, फिर भी तुमसे भिड सकता हूँ, मजा चखा सकता हूँ। शेर कमजोर भी हो जाये, तो भी सियार से कम तो नही होता। कहावत प्रसिद्ध है—"टूटा तो टोडा—और भागी तो गुजरात" टूटा हुआ भी टोडा कुम्हार के बडेरो के लिए तो काफी है।

मुनि ने मन ही मन कहा कि मुझको कमजोर समझकर क्यो हँस रहा है ? मेरे बल को देख! ऐसा कह चट से गाय के सीग पकडे और उसको ऊपर उठाकर घुमा दिया। देखनेवाले चकित हो गए। सब कहने लगे—क्या पौरुष है इनका! शरीर तो ऐसा दिख रहा है कि हवा के झोके से गिर जाये। परन्तु अभी भी इनमे इतनी ताकत है! मुनि ने भावावेश मे ही कहा कि मत समझना कि मैं तपस्या कर रहा हूँ और दुर्बल हो गया हूँ। नही! नही!! अब भी मुझमे वही ताकत है। मैं तुम्हारे लिए काफी हूँ। परन्तु तपी हू, साधु हू। इस प्रकार तपस्वी मुनि क्रोधवश आत्मभान भूल गये।

### वैर का बदला वैर से नही

क्रोध मे भान भूलकर न जाने मुनि क्या मे क्या चिन्तन कर गए और बोल गए। उन्हे क्रोध ने इस तरह झकझोर दिया कि वे

मुनि प्रकृति से बहुत दूर हट गए थे। जब थोडा भान आया तो उन्होने सोचा—अरे ! मै तो मुनि हूँ। कोई कुछ भी कहे—पृथ्वी के समान मुझे सब कुछ सह लेना चाहिये। क्रोध से तो मेरी, वर्षो सचित तपस्या और साधना भस्म हो जायेगी। क्या कभी आग से आग बुझती है? क्या वैर से वैर का बदला लिया जा सकता है? जाओ हमने तुमको क्षमा कर दिया। तुम मेरी कल्याण साधना मे अन्तराय बने। अब मै फिर से अपने साधना पथ का पथिक बनने जा रहा हूँ। यह कहकर वे वहाँ से चले गए और अपनी तप साधना मे पूर्ववत् लग गए। परन्तु लगे दोषो की शुद्धि नही की।

आप बहुमूल्य उज्ज्वल कपडा पहनते हो, तो उस पर धब्बा लग सकता है। यह सम्भव नही कि उस पर कभी गन्दा धब्बा लगे ही नही। धब्बा लगना उतना बुरा नही जितना कि उस धब्बे को दबाए रखना बुरा है। ऐसे ही साधक के सयमी जीवन पर दोष लगे हो नही, यह सम्भव नही। तपस्वी मुनि को निमित्त मिला, उत्तेजना आई और बोल गए। परन्तु उसकी आलोचना करके, पश्चाताप की आग मे, कषाय के मैल को धो लेते तो भटकते नही, किन्तु वे धोना भूल गये।

## शुद्धि के प्रकार

भगवान् महावीर ने कहा कि साधक ! साधना करने वाले से, आराधना के रास्ते चलते चलते भी विराधना-व्रत मे चूक हो सकती है। विराधना के भय से कोई अराधना के रास्ते ही नही चले तो यह ठीक नही। चलने वाला मार्ग से इधर-उधर हो जाय तो उसको रास्ते लगाना सरल है। ऐसे साधना मार्ग पर चलते कोई गल्ती हो जाये तो उसे कहा जायेगा कि पश्चात्ताप करो और भूल का प्रायश्चित्त कर शुद्धि कर लो।

शुद्धि के दस प्रकार है। "आलोयणा" गुरु के सामने दोषो को प्रकट करना, यह शुद्धि का पहला उपाय है। दूसरा "पडिक्कमणे"

मिथ्या दुष्कृत देकर दोष के लिए, पश्चात्ताप करना। याने फिर ऐसी गल्ती नही करूगा" कहकर "मिच्छामि दुक्कड" देना। तीसरा आलोचना करके बाद मे गुरु के सामने मिथ्या दुष्कृत स्वीकार किया जाये। इसका नाम तदुभय है। चौथा विवेक प्रायश्चित्त है। जैसे किसी त्याग की हुई वस्तु का भूल से ग्रहण हो गया। फिर स्मरण आते ही उसको तत्क्षण त्याग देना, यह विवेक प्रायश्चित्त है।

हम साधुओ के लिए कहा गया है—कि अगर कोई वस्तु साधु के लिए बना कर देवे और मालूम हो जाये कि वह हमारे लिए बना है तो पहले तो उसे लेना ही नही। यदि कभी अनजान मे ले लिया तो मालूम होते ही उसे परठ देना। चाहे वह वस्तु कितनी भी अच्छी से अच्छी क्यो न हो। यह प्रायश्चित्त है आधाकर्मी आदि भोजन का।

पाँचवी बात है, भावो मे कुछ मलिनता आगई। सपनो मे कुछ विकार आ गए तो इसके लिए कहा गया कि नींद भग होने पर, कायोत्सर्ग करो, "लोगस्स" का स्मरण करो। इस तरह से शुद्धि के पाच उपाय हो गए। इसके बाद तप के लिए कहा गया, विशिष्ट दोषो की शुद्धि के लिए तपस्या की जाती है, एकाशन, उपवास, वेला आदि। इनसे भी दोषो की शुद्धि होती है। एक 'छेदार्ह' होता है। इसमे दीक्षा पर्याय का समय छेद-कम कर दिया जाता है। आठवे मे "मूल" है अर्थात् मूल से ही दीक्षा दी जाती है। अगर श्रावक है तो उसे फिर से व्रत स्वीकार करवाया जावे। नवमे और दसवे मे भी फिर से दीक्षा दी जाती है। इस भाँति दस प्रकार से पापो की शुद्धि की जाती है।

### आलोचना बिना मृत्यु

विश्वभूति की तपस्या मे जो दोष आ गया—कषाय की कालिमा लग गई, उसका यदि वे आलोचना-प्रायश्चित कर लेते, प्रतिक्रमण कर लेते, तो दोषो की शुद्धि हो जाती। परन्तु सावधानी रही नही और घटी वज गई—कूच का नगाडा वज गया। काल की घटी तो सवकी वजेगी। सावधान रहेगे तव भी वजेगी और

अत इससे बचने के लिए—रक्षण पाने के लिए, कोई अनुकूल साधन अपनाना चाहिये और वह साधन है ज्ञान की गुटिका। वीत-राग-वाणी की गुटिका, कषाय के विप को, राग के जहर को दूर कर देगी। परन्तु जिनके पास यह साधन बराबर नही होता अथवा जो साधन होते हुए भी इसका उपयोग करना भूल जाते या उपयोग की ओर दुर्लक्ष्य कर जाते, तो वे आत्मगुणो को, आत्मविकास को और आत्मा की ऊर्ध्वगति को गवा बैठते है। वे इस अनमोल और अपूर्व लाभ से वचित हो जाते है।

इसलिए भगवान् ने साधना के साथ यह लक्ष्य दिया और कहा कि कल्याण कामिन्! यदि तुम इस बात को ध्यान से निकाल दोगे तो तुमको अपनी अच्छी से अच्छी क्रिया का जो फल मिलना चाहिये कर्मो की बेडी काटने का, वह फल तुम्हे नही मिलेगा। उसको पुन पाने मे तुमको बहुत देर लग जायेगी और फिर कदाचित् वह प्राप्त भी नही हो सके। इसलिए कहा कि साधु! साधना मे हमेशा प्रमाद-रहित होकर रहो। जो अप्रमादी है, सावधान और सदा जागरूक है, वह किसी भी भय से कभी भयभीत नही होता। कहा भी है कि—"अप्पमत्तस्सनत्थि भय।" यानी अप्रमादी को भय नही होता।

परन्तु प्रमादी जरासा चूका नही कि अधिक से अधिक फिसल जायेगा-नीचे चला जायेगा। शास्त्र कहता है कि—"सव्वओ पमत्तस्स भय।" अर्थात् प्रमादी को सब ओर से भय है। प्रमादी जरासा चूकते ही वर्षों की साधना, तपस्या और जीवन मे किया हुआ जप, तप, एव साधना को क्षीण कर देता है। उदाहरण के रूप मे भ० महावीर के पूर्वभव के जीव विश्वभूति आपके सामने है।

आपको ध्यान होना चाहिये कि उसने साधना के मार्ग पर, कदम बढाकर, हजार वर्ष का तप किया, सयम की साधना की, व्रत की आराधना की। और वह भी कोई छोटी-मोटी मदगति से या रोते-खीजते नही। परन्तु बडे उल्लास एव उमग के सग हँसते-हँसते

किया। उनके उस उत्कट तप का देखकर, साधारण व्यक्ति का तो हृदय ही हिल जाता। महीने-महीने का अनशन करना, साथ ही विहार करते जाना, ध्यान करते रहना, स्वाध्याय और चिन्तन करना विचरण करते हुए भव्यात्माओ को प्रतिबोध देना आदि सारे कार्य-क्रम को विधिपूर्वक चलाते हुए, तप का सिलसिला बनाये रखना, कुछ सहज एव सरल नही है।

आज की तरह, उनके मास खमण के तप पर तेल की मालिश या चन्दन का विलेपन नही होता। नये साधको के लिए सुख-सुविधा के नूतन-नूतन साधन है, जो तप मे भी आराम पहुँचाने के नाम पर किए जाते है। वे साधुरूप मे अभिग्रह धारण किए हुए चल रहे थे। उनको मालिश की सेवा तो दूर, थक कर थोडी देर तक दिन मे लेटना और विश्राम भी नही करना था। इस प्रकार की अविराम तपस्या, कहने को जितनी सरल दिखती है, करने को उतनी सहज नही।

**द्रव्य टक्कर से वचन टक्कर भयंकर**

तपस्वी मुनि विश्वभूति मास खमण के पारणा हेतु मथुरा नगरी पहुँचे। वहा विशाखभूति के मर्मवेधी शब्दो की टक्कर लगी। दूसरी ओर गाय की टक्कर लगी जो द्रव्य टक्कर थी। गाय की टक्कर से तपस्वी मुनि गिरे और तुरन्त उठ गए। परन्तु विशाखभूति राजा ने जो वचनो का बाण मारा, वह मार बडी भयकर थी। उसके द्वारा यह कहना कि—वाह जी वाह! देखी तुम्हारी शक्ति! सुभटो के सिरो को कपित्थ फल की तरह गिरानेवाला, वह तुम्हारा पौरुष और बल आज कहा गया? एक छोटी-सी गाय की टक्कर मे ही गिर गए—चारो खाने चित्त हो गए!

वचन-बाण का यह निशाना अचूक और अमोघ रहा। राजा के द्वारा कही गई, परिमित अक्षरो की यह शब्दावली, इतनी दुखाने वाली बनी कि जिसकी टक्कर से वे खडे भी नही रह सके। किसी

विशिष्ट धनुर्धारी के हाथ से चलाये गए तीर की तरह, वह वचन की मार मर्मभेदी एव गभीर घाव करने वाली सिद्ध हुई। ऐसे विराट् तपस्वी ने अपने ज्ञानवल, दर्शनबल और चारित्रवल सबको भुला दिया। और गाय को पकड कर आसमान मे घुमा दिया तथा विशाखभूति को लक्ष्य करके बोले कि तुम्हारी इन वातो का करारा जवाब दिया जा सकता है। परन्तु मैं मुनि मर्यादा का ध्यान कर चुप हूँ। तुम कभी यह मत समझना कि कारणवश कमजोर हुआ सिंह सियार से कभी कम हो सकता है ?

इस तरह क्रोध और अभिमान से तप्त होकर मुनि वहा से मुड चले। मगर उनके मन पर विशाखभूति का वह शब्द-बाण इतना तीखा और गहरा लगा कि वे फिर साधना मे स्वस्थ मन से खडे नही हो सके। कहा भी है कि शस्त्रो के घाव तो भर जाते है लेकिन वचनो के घाव जल्द नही भरते। इस तरह प्रतिशोध का भाव मन मे दसाये उन्होने अपनी आयु पूर्ण की। और वे सातवे स्वर्ग मे चले गए। सभव है, आयु-बध पहले हो गया हो। यदि आर्त और रौद्र मे आयु का बध होता तो वह रोष मे बधी हुई आयु, स्वर्ग मे भी आगे नही बढने देती। परन्तु रोष के द्वारा उनके अन्दर जो रौद्र विचार आया, उसका फल पहले नही मिलकर, शुभकर्म का उदय पहले हो आया। कहा भी है—

**"सराग सयम से साधक, सुरपद को पाते है।**
**तप से होते कर्म क्षीण, भव भ्रमण मिटाते हैं।।"**

कहावत है कि "सुचिण्णा कम्मा, सुचिण्णा फला भवति, दुचिण्णा कम्मा दुचिण्णा फला भवति।" अच्छे कर्मो के फल से प्राणी स्वर्गीय सुखो का अनुपम फल प्राप्त करता। और अशुभ कर्मो से नारक आदि के कटु-अशुभ फल पाता है। नारक जीव के शरीर, अत्यन्त तीखे शाल्मली वृक्ष के पत्तो से टुकडे-टुकडे किए जाते है। उससे उन नारकी जीवो को असीम वेदना होती है। शाल्मली वृक्ष के वे असिपत्र सीमित वेदना करते है, पर कटुवाणी के तीखे निशान,

मस्तिष्क सब को हिला दिया। वे क्रोधावेश मे निदान कर बैठे कि मेरे तप की शक्ति हो तो इस वैर-भाव का बदला लेकर रहूँ।

**देवलोक मे उत्तरोत्तर वासना की कमी**

देवगति मे जाने के अनेक कारणो मे सराग-सयम, श्रावकधर्म, बालतप और अकाम निर्जरा कहे गये है। उनमे सराग सयम भी एक कारण है। तप और त्याग के साथ रहा हुआ राग का अश देवभव के भोग की उपलब्धि का कारण होता है। देवलोक मे विषय-वासना कम है। देव-देवियो का शारीरिक स्पर्श नही होता। कारण पूर्वभव मे सयम की उच्च साधना की जा चुकी है। जैसे-जैसे राग का अश कम होता है, वैसे स्वर्ग मे भी स्वर्गीय जीव राग से ऊपर उठते जाते है। यद्यपि मनुष्य लोक से स्वर्ग मे सुखोपभोग की सामग्रिया अधिक होती है। परन्तु उनमे सुखोपभोग की इच्छा उत्तरोत्तर कम हो जाती है। व्यन्तर जाति के देव और अनुत्तर विमान के देवो मे यही अन्तर है कि व्यन्तरो के पास सामग्री कम पर लालसा और वासना अधिक होती है। कहा भी है—"कमजोर मे वासना ज्यादा। चाहे मनुष्य हो या पशु कही देखिये, दुर्बल व्यक्ति कामना, वासना एव भर्त्सना के झोको को अधिक बर्दाश्त नही कर सकते। कमजोर को ब्रह्मचर्य-पालन करने को भी कहा जाय, तो वह उसके लिए मुश्किल होगा। मगर एक पहलवान को, बलवान् को, जिसके दिल मे, बदन मे ताकत है, उनको सदाचार का पालन भारी नही पडेगा।"

जहा कमजोरी होती है, वहा वासना का जीतना भारी होता है। कमजोरो मे वासना विजय की क्षमता कम हो जाती और उत्तेजना बढ जाती है। तपस्या के साथ यदि निर्ग्रन्थभाव-वीतरागभाव को लेकर बढा जाता है तो स्वर्ग मे भी, जहाँ वासना कम होती है, वैसे वैसे लोक मे जाता है। व्यन्तरो मे वासना तो ज्यादा है, परन्तु सामग्रिया कम है। परन्तु इससे ऊपर वाले देवलोको मे सामग्रिया बढी-चढी होती है, मगर वासना बहुत कम है। और बारहवे देवलोक और इससे आगे मैथुन सज्ञा नाम मात्र की है। यानी कामभोग के

स्मरण मात्र से उनकी वासना शान्त हो जाती है। अनुत्तर विमान वाले देव तो वासना वाले ही नही होते है। उनको उवसत कामा कहा है। विश्वभूति अपने सत्रहवे भव मे, ऐसे देवलोक मे पहुँचा, जहा—भोग नही होता।

## विश्वभूति वासुदेव के भव मे

साधना मे विकार रह जाने के कारण, विश्वभूति सप्तम स्वर्ग के देव होकर भी, विशिष्ट सम्मान नही पा सके। कारण अन्त समय मे आलोचना नही की थी। आत्मा मे तीन बडे शल्य होते है—माया, निदान और मिथ्या दर्शन। विश्वभूति को भी निदान का शल्य रह गया। अत इतने बडे साधक को भी चक्कर खाना पडा। वे अठारहवे भव मे, प्रजापति राजा के यहा जन्मे। शरीर की विशिष्ट रचना को देख, उनका नाम त्रिपृष्ठ रखा गया। आगे ये प्रथम वासुदेव होनेवाले है। जो कि ऐतिहासिक पुरुष और अपने अद्भुत कृत्यो के कारण, लोक मे बहुचर्चित व्यक्ति माने गए हैं।

भारतीय लोक जीवन पर वासुदेव की अमिट छाप होती है। सभव ही कोई ऐसा हो, जो वासुदेव को नही जानता और न मानता हो। अधिकाश व्यक्ति पितृजीवी होते है। किन्तु तेजस्वी पुत्र पितृ-जीवी न होकर स्वयजीवी होता है। त्रिपृष्ठ का जीवन भी ऐसा ही था। जिसका परिचय आपको आगे सुनने को मिलेगा।

## कर्म शृखला और जैन शासन

जैन शासन मे कर्मो की शृ खला जन्म-जन्मान्तर से सम्बद्ध और अत्यन्त मजबूत मानी गयी है। बडा से बडा साधक भी जरा सा विषय कषाय मे टकरा गया तो वह भारी कर्मो से बध जाता है। बध और भोग की परम्परा ऐसी चल पडती है जैसे साहूकार और आसामी का लेन देन चलता रहता है। यद्यपि साहूकार और आसामी का लेन देन, एक जन्म मे ही पूरा हो जाता है। परन्तु किये कर्मो का यह कर्जा, अनेक जन्मो तक भोग कर भी पूरा नही होता।

जिन शासन मे कर्म के कर्ज को कैसे चुकाया जाये, इस पर गहराई से विचार किया है। आप सबको वीतराग की वाणी सुनने का अवसर मिला है तो यह जरूर ध्यान देना चाहिये कि हमारी आत्मा कर्मो से भारी न हो जाय। क्योकि हमारे अन्दर इतनी शक्ति नही है और फिर साधना भी कमजोर है। अत' सचित कर्म के प्रवल उदय मे भटक जायेगे। इसलिए ज्ञानियो ने कहा—अपनी आत्मा का ख्याल करके कर्मबन्धन से बचते रहो। कारण कर्मबन्धन के निमित्त तो पग-पग पर मिलते रहते हैं। परन्तु कर्म काटने का निमित्त तो यही सत्सग मे मिलता है। घर-दुकान और बाजार कही जाते, तो हिंसा-मृषा आदि से कर्म बाधते रहते हो। इधर-उधर से कुछ समय बचे तो सोचो कि वीतराग-वाणी सुनने को चले, सत्सग मे बैठे। क्योकि सत्सग और धर्म करनी मे आकर जितने समय तक बैठोगे, कर्म वन्ध से बचोगे। कर्जा सिर पर नही चढेगा। और कर्म नही चढा तो चुकाने के लिए, अधिक कष्ट नही देखना पडेगा। इस तरह ज्ञान भाव को आत्मा मे उतारा जाये। ज्ञान भाव को अन्तर मे उतारने का सत्सग अच्छा साधन है, उपाय है। सत्सग की सत्प्रेरणा से ज्ञान, अनायास जीवन मे उतर पाता है।

### पूर्व के और आज के लोगो के भिन्न-भिन्न विचार

पहले के लोगो को साधना के लिए वडी चिन्ता रहती थी। वे अपने वच्चो को गुरासाह के पास या आश्रमो मे जीवन सुधारने के लिए पढने पढाने को रखा करते। ताकि वच्चे सदाचारी और अच्छे सस्कार वाले वन सकें। मगर आज तो वच्चो को प्रारभ से ही, मिशनरी स्कूल मे रखना श्रेयस्कर माना जाता है। आज के लोग गौरव के साथ वोलते हैं कि महाराज ! हमारा वच्चा मेयो कालेज मे पढता है। जहा उसके सौ रुपए मासिक कालेज फीस लगते हैं।

पहले जहा राजा महाराजा के लडके पढते थे, वहा आज अपने वच्चो को भेज कर आप गर्वानुभव करते और अपने को राजा महा-राजा की श्रेणी मे समझते, हर्ष का अनुभव करते हैं। जो मेयो कालेज

मे अपने बच्चे को नही पढा सकते, वे भी दूसरे दूसरे कालेजो मे पढाते है। परन्तु कोई भी माई का लाल यह हिम्मत करके नही कहता कि हम अपने बच्चो को साधुसग एव सतो की सेवा मे, सस्कार निर्माण के लिए ज्ञान गोष्ठी मे भर्ती करवा देगे। ऐसी हिम्मत किसी की नही होती। सतो का मन प्रसन्न रखने के लिए कह देगा—महाराज! थोडा बडा होने पर आपके पास भेजेंगे। जबकि बच्चा सब प्रकार से अनुशासनहीन हो जाता है, तब यदि कोई आये भी तो क्या सफलता पाये!

होना तो चाहिये कि हर क्षेत्र मे साधु-साध्वियो के साथ, कुछ समय के लिए अपने बच्चो-बच्चियो को रखकर, अभ्यास कराया जाय तो वे धार्मिक सस्कारवाले हो सकते है। यदि ऐसी आदत हो जाये तो बच्चे-बच्चियो के जीवन-निर्माण मे, कितना सहयोग मिल सकता है? कभी-कभी शुभ कर्म का उदय होता है और पुण्यवानी जोरदार होती है तो एकाध व्यक्ति ऐसा भी मिलता है जो अपने बच्चे-बच्ची को शासन सेवा मे भेज देता है। पालासनी के भाई जेवन्तराज ऐसा ही एक गुरुभक्त व्यक्ति है, जिसने एगारह वर्ष वयवाले अपने पुत्र को, धर्मज्ञान मिलाने के हेतु सतो की सेवा मे छोड रखा है। ऐसे बडे त्याग के लिए अपना मोह छोडना पडता है। भाई स्वय लम्बी तपस्या और धर्म नही कर पाते, तो पुत्र को धर्ममार्ग मे लगाकर भी महालाभ मिला सकते हैं।

शास्त्र मे धर्म करने के तीन प्रकार बताये है। स्वय करना, कराना और अनुमोदन करना। जो स्वय नही कर सकता है, वह अपने पडोसी, मुनीम एव आश्रित वगैरह से कराके लाभ मिला सकता है। यह उसकी दलाली है। तीसरा प्रकार है अनुमोदन का। त्याग, तप एव साधना करनेवालो के गुण कीर्तन करना, यथायोग्य सहयोग कर उसके सत्कर्म मे, मन को बढावा देना, यह भी लाभ मिलाने का सरलतम रास्ता है।

श्रीकृष्ण और श्रेणिक ने कर्मकार्य मे प्रेरणा कर तीर्थंकर गोत्र जैसे उच्च पुण्य का उपार्जन कर लिया। तो स्वय करने की जिनमे शक्ति नही हो वे भी उपरोक्त अन्य दो प्रकार से लाभ मिलाना न भूले।

जैसे धर्म करने के तीन प्रकार है, वैसे पाप करने के भी तीन प्रकार हैं। विवेकी श्रोता को चाहिये कि धर्म साधना करने और कराने मे कदाचिन् समर्थ न हो तो, कम से कम, सत्कर्म करनेवाले को, बाधा तो भूलकर भी न दे। क्योकि इससे चारित्र मोह का वध होता है। जो जन्म-जन्म तक भटकाते रहता है। जरासी भूल से विश्वभूति कैसे भटक गया, इसको आगे त्रिपृष्ठ के परिचय मे सुनेगे और ज्ञान पाकर अपने आपको पाप से वचायेगे। जैसे कि कहा है—

**"सम   ार संसार मे,   झू टाले दोष।**
**समझ स   कर जीवड़ा, गया अनन्ता मोक्ष॥"**

इस प्रकार जो करेगा, लोक परलोक मे, शान्ति प्राप्त करेगा।

●●

# १४

# र्म : दुः ा ु

### दु ख का कारण कर्म-बन्ध

बन्धुओ ! वीतराग जिनेश्वर ने, अपने स्वरूप को प्राप्त करके, जो आनन्द की अनुभूति की, उससे उन्होने अनुभव किया कि यदि ससार के अन्यान्य प्राणी भी, कर्मों के पाश से मुक्त होकर, हमारी तरह स्वाधीन, स्वरूप मे स्थित हो जाये तो वे भी दु ख के पाश से बच जायेंगे। यानी दु ख से उनका कभी पाला नही पडेगा। दु ख, अशाति, असमाधि या क्लेश का अनुभव तभी किया जाता है, जबकि प्राणी के साथ कर्मो का बध है।

दु ख का मूल कर्म और कर्म का मूल राग-द्वेष है। ससार मे जितने भी दु ख हैं, वेदनाये है, वे सब कर्ममूलक ही है। कोई भी व्यक्ति अपने कृत कर्मों का फल भोगे बिना नही रह पाता। कर्म जैसा भी होगा, फल भी उसी के अनुरूप होगे। प्रश्न होता है कि यदि दु ख का मूल कर्म है तो कर्म का मूल क्या है? दु खमूलक कर्म क्या स्वय सहजरूप मे उत्पन्न होता है या उसका भी कोई कारण है? सिद्धान्त तो यह है कि कोई भी कार्य, कारण के बिना नही होता। फिर उसके लिए कोई कर्त्ता भी चाहिये। कर्त्तापूर्वक ही क्रिया और क्रिया का फल कर्म होता है।

### कर्म और उसके कारण

परम ज्ञानी जिनेश्वर देव ने कहा कि कर्म करना, जीव का स्वभाव नही है। स्वभाव होता तो हर जीव कर्म का बध करता और सिद्धो के साथ कर्म लगे होते। परन्तु ऐसा नही होता है। अयोगी-

केवली और सिद्धो को कर्म का बध नही होता। इससे प्रमाणित होता है कि कर्म सहेतुक है, अहेतुक नही। कर्म का लक्षण करते हुए आचार्य ने कहा—"कीरइ जिएण हेउहिं।" जो जीव के द्वारा किया जाय, उसे कर्म कहते है। व्याकरण वाले क्रिया के फल को कर्म कहते हैं। खाकर आने पर उससे प्राप्त फल-भोजन को ही कर्म कहा जाता है। खाने की क्रिया से भोजन मिला, इसलिए भोजन कर्म कहाता है। सत्सग मे आकर कोई सत्सग के सयोग से कुछ ज्ञान हासिल की, धर्म की बाते सुनने को पायी, तो यहा श्रवण-सुनने को भी कर्म कहा, जैसे "श्रवण कर्म"। पर यहा इस प्रकार के कर्मो से मतलब नही है। यहा आत्मा के साथ लगे हुए कर्म से प्रयोजन है। कहा है—"जीएण हेउहिं, जेए तो भण्णई कम्म"। यानी ससार की क्रिया का कर्म तो स्वत होता है। परन्तु यह विशिष्ट कर्म स्वत नही होता। यहा तो जीव के द्वारा हेतुओ से जो किया जाय, उस पुद्गल वर्गणा के सग्रह का नाम कर्म है।

कर्म विषय पर कर्मग्रन्थो मे बहुत विशद एव विस्तृत विचार किया गया है। उन पर यदि प्रकाश डाला जाये और सुना जाये, पढा जाये तो घडिया नही, दिनो नही, परन्तु महीनो के महीने पूरे हो सकते है। यदि वर्ष भी कह दू तो कोई अतिशयोक्ति की बात नही होगी। इतने विस्तार के साथ कर्मो के बाबत विचार किया गया है—इतनी बृहद्-सामग्री, आचार्यो ने कर्म के विषय मे सभाल कर रखी है। कर्म की मुख्य चार दशाए होती है, बध, उदय, उदीरणा और सत्ता।

**कर्म के भेद और व्यापकता**

कर्म के सक्षेप मे तीन भेद है—द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म। प्रस्तुत प्रसग मे इस तरह का विचार शास्त्रीय बन जायेगा और इसमे रस लेने वाले व्यक्ति बहुत नही मिलेगे। फिर भी सक्षेप मे समझें कि—कार्मण वर्गणा का आना और कर्म पुद्गलो का आत्म प्रदेशो के साथ सम्बन्धित होना, यह द्रव्य कर्म है। द्रव्य कर्म के ग्रहण करने की

जो राग द्वेषादि की परिणति है, वह भावकर्म है। और नोकर्म क्या है? कार्मण शरीर।

आपने ज्ञानियो से द्रव्यकर्म की बात सुनी होगी। द्रव्यकर्म कार्य और भावकर्म, कारण है। यदि आत्मा की परिणति, राग द्वेपादिमय नही होगी तो द्रव्यकर्म का सग्रह नही होगा। आप और हम बैठे हुए भी निरन्तर प्रतिक्षण कर्मो का सग्रह कर रहे है। परन्तु इस जगह, इसी समय, हमारे और आपके बदले कोई वीतराग-पुरुष बैठे हो तो वे सापरायिक-कर्म एकत्रित नही करेंगे। क्योकि उनके कषाय नही होने से, ईर्यापथिक कर्मो का सग्रह है। सिद्धो के लिए भी ऐसी ही स्थिति है।

लोक का कोई कोना खाली नही है, जहा कर्मवर्गणा के पुद्-गल नही घूम रहे हो। और ऐसी कोई जगह नही, जहा शब्द लहरी नही घूम रही हो। इस होल के भीतर कोई बच्चा रेडियो (ट्राजिस्टर) लाकर वजाये अथवा उसे आलमारी के भीतर रखकर ही बजाये तो भी शब्द लहरी वहा पहुँच जायेगी और सगीत लहरी पास मे सर्वत्र फैल जायेगी। इस शब्दलहरी से भी अधिक बारीक-सूक्ष्म, कर्म-लहरी है। यह आपके और हमारे शरीर के चारो ओर घूम रही है और सिद्धो के चारो तरफ भी घूम रही है। परन्तु सिद्धो के कर्म, चिपकते नही और हमारे आपके चिपक जाते है। इसका अन्तर यही है कि सिद्धो मे वह कारण नही है, राग-द्वेषादि की परिणति नही है।

**कर्म का मूल राग और द्वेष**

ऊपर कहा जा चुका है कि हेतु से प्रेरित होकर जीव के द्वारा जो किया जाय, वह कर्म है। और कर्म ही दु खो का कारण है—मूल है। कर्म का मूल बताते हुए कहा कि—"रागो य दोसो, वीय कम्म बीय।" यानी राग और द्वेष दोनो कर्म के बीज है। अब दु खो का मूल कर्म है तो आपको दु.ख निवारण के लिए क्या मिटाना है? क्या काटनी है, दु ख की बेडी। वह कब हटेगी, जब कर्मो की बेडी

हटेगी—दूर होगी। और कर्मों की बेडी कब कटेगी, जब राग-द्वेष दूर होगे।

बहुधा एकान्त और शान्त स्थान मे अनचाहे भी सहसा राग-द्वेष आ घेरते है। एक कर्म भोगते हुए, फलभोग के बाद, आत्मा हल्का होना चाहिये, परन्तु साधारणतया इसके विपरीत होता है। भोगते समय राग-द्वेष उभर आते या चिन्ता शोक घेर लेते तो नया बध बढता जाता है। इससे कर्म परम्परा चालू रहती है। उसका, कभी अवसान—अन्त नही हो पाता। अत ज्ञानी कहते है कि कर्म भोगने का भी तुमको ढ ग-तरीका सीखना चाहिये। फलभोग की भी कला होती है। और कला के द्वारा ही उसमे निखार आता है। यदि कर्मभोगने की कला सीख जाओगे तो तुम नये कर्मों का वन्ध नही कर पाओगे। इस प्रकार फलभोग से तुम्हारी आत्मा हल्की होगी।

**कर्म फलभोग आवश्यक**

शास्त्रकारो का एक अनुभूत सिद्धान्त है कि—"कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि।" तथा—"अवश्यमेव भोक्तव्य, कृत कर्म शुभाशुभम्।" यानी राजा हो या रक, अमीर हो या गरीब, महात्मा हो अथवा दुरात्मा शुभाशुभ कर्म फल सब जीव को भोगना ही पडेगा। कभी कोई भूले-भटके सन्त प्रकृति का आदमी किसी गृहस्थ के घर से, ठढाई कहकर दी गई थोडी मात्रा मे भी ठढाई के भरोसे भग पी गये। फिर पता चला कि ठढाई मे भग थी। यह जानकर पछतावा होता है मगर वह भग अपना असर दिखाए विना नही रहेगी। बारम्बार पश्चात्ताप करने पर उस साधु प्रकृति को भी नशा आये विना नही रहेगा। नशा यह नही समझेगा कि पीनेवाला सन्त है। और इसने कल्पनीय ठढाई समझकर अनजान मे इसे पी लिया है तो इसे भ्रमित नही करना चाहिये। नही, हर्गिज ऐसा नही होगा। कारण, बुद्धि को भ्रमित करना उसका स्वभाव है। अत वह नशा अपना रग लाये विना नही रहेगा। बस, यही हाल कर्मो का है।

भगवान् महावीर कहते है कि मानव ! सामान्य साधु की तो बात क्या ? हमारे जैसे सिद्धगति की ओर बढने वाले जीव भी कर्म-फल के भोग से बच नही सकते। मेरी आत्मा भी इस कर्म के वशीभूत होकर, भव भव मे गोते खाती हुई कर्मफल भोगती रही है। मैंने भी अनन्तकाल तक भवप्रपच मे प्रमादवश कर्मों का बध किया जो आज तक भोगना पड रहा है। कर्म भोगते हुए थोडा सा प्रमाद कर गया तो दूसरे कर्म आकर बध गए—चिपक गए।

वे कर्म कैसे बधे ? इसका स्पष्टीकरण करते हुए प्रभु ने अठा-रहवे भव की बात बताई। मतलब यह कि कर्मो का सम्बन्ध बहुत जबर्दस्त है। इस बात को अच्छी तरह समझ ली जाये कि हमारे दैनिक व्यवहार मे, नित्य की क्रिया मे कोई, कोई भूल तो नही हो रही है ? नये कर्म बाधने मे मैं कितना सावधान हू ? कर्म भोगते समय कोई नये कर्म तो नही बध रहे है ? इस तरह विचारपूर्वक काम करने वाला, कर्मबध से बच सकता है।

**बदले की भावना और कर्मबध**

विश्वभूति के कर्मफल का भोग शेष था। उसको भोगते तपस्या करते करते उन्होने विशाखभूति का योग पाया और वे परस्पर मे टकरा गये। जिससे उनके तपस्वी जीवन मे भी कषाय का उदय आ गया। क्रोध के वश होकर उन्होने गाय को ही नही घुमाया वरन् विशाखभूति पर भी वे जल उठे। उन्होने विचार किया कि जब तक इससे बदला नही लू तो मैने तपस्या ही क्या की ? मेरी तपस्या का फल हो तो मै इसके वैर विरोध का बदला लू। इस तरह अपने मन मे आए हुए दुर्विचाररूप कषाय का, अन्तिम क्षण मे बिना आलोचना—प्रायश्चित्त किए वे मरकर देवलोक मे गए। और वहा का समय पूर्ण कर, फिर अठारहवें भव मे यहा मनुष्य रूप मे आए। जैसा कहा भी गया है—

**"निदानवश अष्टादश मे, त्रिपृष्ठ तन धरते हैं।**
**प्रजापति के साथ साथ, क्रम बल से बढ़ते है।"** शासन....

सत्रहवा भव महाशुक्र कल्प का पूरा किया। दीर्घकालीन बडी तपस्या से, उनके विषय हल्के हो गए थे। कषाय भावना भी दवी हुई सत्ता मे थी। सयोगवश एक निमित्त मिला और दवा हुआ कषाय भाव दहक उठा। विषयभाव तो उनका बहुत हल्का था। मधुर से मधुर शब्द-लहरी सुनकर भी, उनके मन मे राग नही आता था। किसी सुन्दर रूप को देखकर भी उनके मन मे मोह नही होता। अच्छे स्वादिष्ट पदार्थो की तरफ भी, उनकी जीभ नही ललचाती। पर कषाय मे, क्रोधभाव भीतर दवा बैठा था। अत थोडी सी ठेस लगते ही वह उफान मे आ गया।

जैसे किसी के शरीर मे कोई फोडा है और उसमे मवाद भरा हुआ है। सहज मे थोडी सी ठेस लगते ही, फोडे को फूटते देर नही लगती एव उसके फूटने पर घाव से पीप निकलने लगती है। इसी तरह हमारे अन्दर मे, कषाय का जो फोडा भरा पडा है। उसमे मवाद की तरह जो कषाय भाव की सडाध भीतर मे है, वह इधर उधर की टक्कर नही लगे तब तक तो ठीक दवी है। परन्तु ज्योही ठेस लगी कि फोडे वाला हाय हाय कर चिल्लाने लगता और मेरा प्राण निकला, जीव निकला आदि कहने लगना है।

फोडा तो ठेस लगने और मवाद निकलने पर ही ठीक हो जाता है—दर्द हल्का हो जाता है। परन्तु कषायरूप फोड़ा ठेस लगने पर हल्का होने के वजाए, भारी हो जाता है। हा, तो उस मुनि ने कषाय के रग मे रग कर विचार किया कि इसके वैर का वदला लू। क्योकि यह राजमद मे वेभान हो रहा है। यह सत्ता के नशे मे कुछ नही समझ रहा है। इसको शिक्षा देना आवश्यक है। इसी भाव में मर कर वे सातवे देवलोक मे उत्पन्न हुए और वहा से च्यवन करके अठारहवें भव मे राजा प्रजापति के यहा जन्म लिये।

**ः भूति त्रिपृष्ठ के भव मे**

पुण्यशाली व्यक्ति, अपने पुण्य के अनुकूल द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की सामग्री भी तदनुकूल प्राप्त करते है। ससार मे तीन प्रकार

के उत्तम पुरुष माने गए, जो धर्म उत्तम पुरुष, भोग उत्तम पुरुष और कर्म उत्तम पुरुष के भेद से वताये गए है। दूसरी तरह से चौवीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ वासुदेव तथा नौ प्रति वासुदेव ऐसे श्लाघ्य पुरुष के रूप से तिरसठ श्लाध्य पुरुष कहे गए है। जो तिरसठ शलाका पुरुष के नाम से भी कहे जाते है। उनमे वासुदेव और प्रति वासुदेव भी श्लाघ्य पुरुष है।

त्रिपृष्ठ पूर्वजन्म के निदान के कारण, राजा प्रजापति के घर मे, वासुदेव के रूप से जन्म धारण करता है। वासुदेव आदि के जन्म काल मे, उनकी माताओ की क्या स्थिति होती और वे कितनी तरह के कितने स्वप्न देखती, इसका सक्षिप्त परिचय आगे सुनने पर ज्ञात होगा।

### कर्मो की धूप-छाह

त्रिपृष्ठ की बढती पुण्यकला और तेजस्विता को देख राजा प्रजापति, हर्ष, सुख और गौरव का अनुभव कर रहे थे। परन्तु ससार का नियम है कि सुख के साथ दु ख और साता के साथ असाता का भी चक्र चलता रहता है। यह कभी नही हो सकता कि शुभाशुभ कर्म प्रकृतिओ मे मात्र एक ही प्रकृति उदय मे रहे और दूसरी उसके साथ नही आये। ज्ञानियो ने प्रतिक्षण शुभाशुभ कर्मो का बध और उदय चालू रहना बतलाया है। दृष्टान्तरूप से देखिए, अभी उस जाली के पास जहा आप धूप देख रहे है, घटेभर के बाद वहा छाया आ जायेगी। और अभी दरवाजे के पास जहा आपको छाया दिख रही है, कुछ देर के बाद वहा धूप आ जायेगी। इसका मतलब यह कि धूप और छाया वरावर एक के पीछे एक आते रहते है। धूप-छाह परिवर्तन का द्योतक एक आम प्रचलित शब्द है। जिसका मतलव प्राय॰ प्रत्येक समझ जाता है कि यहा कोई भी वस्तु एकरूप मे चिरकाल तक नही रह सकती।

जव मकान मे धूप की जगह छाया और छाया की जगह धूप आ गई तो आपके तन, मन मे साता की जगह असाता और असाता

की जगह साता आ जाये तो इसमे नई बात क्या है ? सयोग की जगह वियोग से आपका पाला पड़ा तो कौनसी बडी बात हो जायेगी ! ज्ञानी कहते है कि इस ससार मे आए हो तो समभाव से रहना सीखो। सयोग मे जरूरत से अधिक फूलो मत। और वियोग के आने पर आकुल व्याकुल नही बनो, घबराओ नही। यह तो सृष्टि का नियम है–कायदा है। हर वस्तु समय पर अस्तित्व मे आती और सत्ता के अभाव मे अदृश्य हो जाती है। इस बात को ध्यान मे रखकर सोचो कि जहा छाया है वहा कभी धूप भी आयेगी जहा अभी धूप है, वहा छाया भी समय पर आये बिना नही रहेगी।

अभी दिन है—सर्वत्र उजाला ही उजाला है। छ बजे के बाद सूर्योदय हुआ। परन्तु उसके पहले क्या था ? सर्वत्र अधेरा ही तो था। किसी को कुछ भी दिखाई नही देता था। यह परिवर्तन कैसे हो गया ? अन्धकार की जगह प्रकाश कहा से आ गया ? तो जीवन मे भी यही क्रम चलता रहता है। जिन्दगी एक धूप-छाह ही तो है ! प्रजापति के हर्ष और सुख के बीच शोक एव दुख का निमित्त आ गया।

## हर हालत मे खुश और शान्त रहो

ससार के शुभ-अशुभ के क्रम को, व्यवस्था को, ज्ञानीजन सदा समभाव या उदासीन भाव से देखते रहते है। उन्हे जगत् की अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियाँ चचल अथवा आन्दोलित नही कर पाती। वे न तो अनुकूल परिस्थिति के आने पर हर्षोन्मत्त और न प्रतिकूलता मे व्यथित एवं खिषण्ण बनते हैं। सूरज की तरह उनका उदय और अस्त का रग एक जैसा और एक भावोवाला होता है। वे परिस्थिति की मार को सहन कर लेते है, पर परिस्थिति के वश रग बदलना नही जानते। जीवन का यही क्रम उनको सबसे ऊपर बनाये रहता है। अपनी मानसिक समता बनाये रखने के कारण वे आत्मा को भारी बनाने से बच पाते है। और जिनमे ऐसी

नही होती और इस तरह का व्यवहार नही बना पाते, वे अकारण ही अपनी आत्मा को भारी-बोझिल बना लेते है।

त्रिपृष्ठ के जीवन को जिसकी चर्चा आगे आनेवाली है, यदि आपने भी अपनी आत्मा को हल्का रखने का सोचा और इससे मिलने-वाली शिक्षा को ग्रहण किया तो आपकी आत्मा भी, इसलोक व परलोक मे सुखी बन सकती है।

●●

# १५

# क ा ि य ही आत्मि य

## जीवो की परतन्त्रता और सत हृदय

बन्धुओ ! ससार के जितने भी जीव है वे स्वाधीन नही है। अपने रूप मे यानी अपने भाव या स्वभाव मे नही है। ससार के जीव सबकेसब पराधीन हैं, पररूप मे है और परतन्त्रता की दशा मे जीवन बिता रहे है। उनकी यह परतन्त्रता, आकुलता, किसी दूसरे के द्वारा नही की गई है, बलात् थोपी या लादी हुई नही है। परन्तु इस परतन्त्रता मे, पराधीनता और परभाव मे, रहने का अपनी-स्वय की भूल ही कारण है। एक मकडे की तरह स्वत जालो को सृजन कर जीव स्वेच्छा से उसमे ही उलझे हुए हैं—फसे हुए हैं। अपनी भूल से ही ससारी प्राणी, स्वभाव मे, अपने घर मे और अपने स्वत्व मे रहने के बजाय, पराधीनता की जिंदगी गुजार रहे हैं।

ज्ञानियो ने ससारी जीवो की यह विषम दशा देखकर, परम करुणाभाव से द्रवित होकर चाहा कि मानव को इस स्वकृत दु ख-दशा से मुक्त होने के लिए, कोई ऐसा अनुभूत मार्ग बताया जाय, जिस पर चलकर वे इन उलझनो से मुक्त हो सके—बन्धन से छूट सके। सतजनो का यह स्वभाव होता है कि वे पर दु ख को देर तक देख नही सकते। वे पराये दु ख को देखते ही, दु ख निवारण के लिये सचेष्ट हो जाते हैं। वे जैसे प्राणियो के शारीरिक, मानसिक पीडा से मुक्ति चाहते, ऐसे दु खो के कारण आध्यात्मिक दोषो के निवारण की भी प्रेरणा करते है। यह उनकी परमदया है। तुलसी ने भी कहा है—

**"सत हृदय नवनीत समाना, कहा कविन पर कहिहि न जाना।**
**निज परिताप द्रवहि नवनीता, पर दुःख द्रवहि संत नीता॥"**

**द्रव्यदया और भावदया**

शास्त्रो मे दया के अन्य अनेक भेदो को बताते दो भेद प्रमुख बतलाये है—एक द्रव्यदया और दूसरी भावदया। कोई दयालु पुरुष, किसी पक्षी पकडने वाले को देखता है जो तोते या अन्य पक्षियो को, युक्ति से पकड लेते, पाच दस पक्षियो को एक पिंजरे मे बन्द कर लेते। खुले आकाश मे वे स्वेच्छाविहारी पक्षी, एक सीमित दायरे के पिंजरे मे, बन्द होकर, तडफते है, छटपटाते है और पिंजरे से निकलने की भरसक कोशिश करते। परन्तु चाहकर भी वे उससे निकल नही पाते है। इस पराधीन दशा मे, मरणासन्न उन पक्षियो को देख कर, दयालु हृदय कोई करुणाभाव से उनको छुडाना चाहे तो उसको समझाकर या कुछ धन देकर भी वह उन्हे छुडाता है। तो यह उस दयालु पुरुष की द्रव्य दया हुई। परन्तु यह वीतराग देव की भावदया नही है।

वीतराग प्रभु ने ससारी प्राणी को पिंजरे के तोते की तरह, ससार रूप पिंजरे मे उलझा हुआ फसा हुआ और जकडा हुआ देखकर सोचा कि इनको इस पिजरे से निकालने का भान नही है। तोते तो तडफते थे, अकुलाते थे मगर यह तो मदमत्त की तरह ससार की रग रेलियो मे रगा हुआ, डूबा हुआ तथा कर्त्तव्य और स्वरूप को भुलाये बैठा है। इसको अपना बन्धन, बन्धन प्रतीत नही होता और न यह इससे मुक्त ही होना चाहता है। एक छोटा सा पछी तो मुक्ति चाहता है। मगर मानव जैसा विशिष्ट प्राणी, चुपचाप ससार के जाल मे फसा हुआ भी, और अधिक उलझना चाहता है। यह बडी विषम स्थिति है। इसको अपने बधन का भान तथा उससे मुक्त होने का रास्ता बता कर इसका कल्याण करना चाहिये। तो प्रभु की यह प्राणि मात्र के प्रति परमकारुणिक भावना, अनन्त अनन्त दया ही भावदया कहाती है। आप और हम छोटी मोटी दया करते है, जोकि अत्यन्त सीमित होती है। साथ ही इस द्रव्य दया मे, दोष की भी सभावना रह सकती है। परन्तु वीतराग देव की दया शुद्ध एव अनुपम होती हे।

### सुख दुःख और बधमुक्ति अपने हाथ

सासारिक उलझनो मे उलझे प्राणियो को प्रभु ने कहा–मानव! यह तेरी पराधीनता परकृत-दूसरो के द्वारा की हुई नही है। यह स्वकृत यानी अपने से ही की हुई है। ये बन्धन जिसमे तुम दृढता-पूर्वक बधे हुए हो, यह किसी दूसरे की क्रिया नही है। यानी किसी और ने तुमको बाधा नही है। और इस वन्धन का छेदन भी किसी और को नही करना है। वध-छेदन भी तुम्हारे अपने हाथ की ही वात है। तू इस बात की चिन्ता मत कर और इसके लिए, किसी के पास फरियाद भी नही कर। क्योकि कर्म करने की तथा फल भोगने की व कर्म काटने की सारी जिम्मेदारी तुम्हारी अपनी है। सुख हो या दु ख, वध हो या मुक्ति, सब तुम्हारे अपने हाथ मे है।

प्रभु ने बताया कि जो भोला जीव यह समझता है कि जीव को कर्मफल कोई दूसरा दिलाता है। राजा की तरह अपराधी को जेल मे कोई दूसरा डालता है, दु खी करता है। अपराधी का बन्धन भी कोई दूसरा ही काट देता है, ऐसा समझना, भोले जीव की भूलभरी ना समझी है, अज्ञानता है। ज्ञानी जन कहते है—इसका निपटारा करने वाला, कोई दूसरा व्यक्ति नही है। तू ही अपना राजा महाराजा, और बन्धन मे बाधने वाला तथा काटनेवाला भी स्वयही है। तू इसे बराबर ध्यान मे बनाये रख कि—

> **"अप्पा कत्ता विकत्ता य, सुहाण य दुहाण य।**
> **अप्पामित्तममित्त च, दुपट्ठिअ - सुपट्ठिओ ॥**

मानव! दु.ख के बन्धन का निर्माण करने वाला तूही और काटने वाला भी तूही है। कुमार्ग स्थित आत्मा ही शत्रु और सुमार्गस्थ आत्मा ही मित्र है।

### विविध रूपो मे भी मौलिक एकता

बचपन से आज तक के कितने वर्ष गुजारे! किसी के पचास-साठ तो किसी के सत्तर-अस्सी वर्ष गुजर गये। परन्तु इतने वर्ष

गुजरने पर भी क्या आपकी आत्मा जो पहले वर्ष मे थी, वही बाद के बढते वर्षो मे है या दूसरी बन गई है। आत्मा वही है उसमे कोई भी परिवर्तन नही हुआ है। मात्र उसके रूप बदल रहे है। कहिए, आज आप शरीर से कितने बदल गए? पचीस वर्ष पहले आप बदन से, बल से, कैसे दीखते थे? उस समय सुन्दर और सबल एक प्रसन्नमुख नौजवान दीखते थे। आपके हाथ पैरो मे, अग प्रत्यग मे, कैसा बिजली की तरह जोर उछल रहा था? जरा-सा बाहर जाना होता किसी कार्यवश या किसी के पुकारने पर तो आपके पैर कैसे उछलते थे, उस जगह पर जल्दी मे जाने के लिए।

मगर आज क्या हालत है? कही जाने का मन ही नही करता? मन चाहता भी तो तन जगह छोडकर उठना ही नही चाहता। जहा बैठे मिट्टी के माधो की तरह, वहा से उठने का नाम ही नही लेते। तो पहले की अपेक्षा अब क्या बदला? ये तन के रूप-रूपान्तर बदले। इसी तरह मन के रूप-रूपान्तर भी बदलते है। तन का बदलना कमजोरी के कारण खराब है। वह अपनी उच्च दशा से हीन दशा की ओर जाता है। बल-वीर्य की वर्धमान दशा के बजाय, हीन दशा मे जाता है और एक बार बदलकर फिर अपनी पुरानी दशा मे चाहकर भी, नही आ सकता। मगर मन को तो हीन दशा से वर्धमान दशा मे ले जा सकते हैं। और उसको ऊँचा से ऊँचा उठाकर, आत्म-कल्याण की ओर अग्रसर कर सकते है। इस तरह यह सिद्ध है कि विविध रूपो के परिवर्तन एव अनेकताओ मे भी मौलिक एकता एक जैसी रहती है। आत्म द्रव्य वैसा ही असख्य प्रदेशी और चेतना सम्पन्न रहता है। द्रव्य की अपेक्षा आत्मा एक, असख्य प्रदेशी, भाव से अमूर्त और गुण से उपयोग, दर्शन और शक्ति सम्पन्न होता है। ये चार भेद द्रव्य-गुण की अपेक्षा से हैं, जो सब स्थिति मे पाये जाते है। योग, कषाय, ज्ञान, चारित्र ये चार विभाव और स्वभाव दशा के द्योतक है।

## आत्मा के भेद और उसकी विविध दशा

आत्मा आठ प्रकार की बताई गई है । द्रव्य आत्मा, कषाय आत्मा, योग आत्मा, उपयोग आत्मा, ज्ञान आत्मा, दर्शन आत्मा, चारित्र आत्मा और वीर्य आत्मा । यहा यह प्रश्न उठता है कि क्या आत्मा एक है या आठ ? आत्मा एक है और यहा आठ बताई गई है, तो इसका मतलब यह रहा कि आत्मा की बदलती हुई स्थितियो मे, जिस भाव की मुख्यता रही, उस भाव की अपेक्षा, आत्मा को सम्बोधित किया गया है ।

इस तरह द्रव्य, उपयोग और दर्शन आत्मा सब दशाओ मे रहती । सिद्ध अवस्था मे भी ये उपयोग एव दर्शन विद्यमान रहते है । आत्मा के गुण धर्म होने से चाहे वह ससारी अवस्था मे हो या मुक्त अवस्था मे, उपयोग आदि सबमे कायम रहने वाले है । सिद्ध की अवस्था मे भी जीव द्रव्य विद्यमान है । कारण जीव कभी अजीव नही होता और अजीव जीव नही होता । क्योकि जीव का लक्षण बताया गया है "जीवो उवओग लक्खणो ।" यानी जिसमे उपयोग है, वह जीव है । निगोद दशा के अव्यक्त चेतनावाले जीवो मे भी, उपयोग का अश विद्यमान् है ।

परन्तु आत्मा के इस उपयोग को किधर लगाना चाहिये ? यह स्वविवेक पर निर्भर है । अगर इसका सही दिशा मे उपयोग किया जाय तो काम बन सकता है—आत्म-कल्याण सम्भव हो सकता है । किन्तु बीच मे एक उन्मादी का प्रवेश हो जाता है, जिसका कि नाम कषाय है । यह कषायात्मा आत्मा का विकृत रूप है । ऐसी विकृत आत्मा का उपयोग, दर्शन और वीर्य भी बजाए स्वरूप की ओर बढाने के विभाव-परभाव यानी भोगभाव की ओर बढाता है । आत्मा के शुद्ध स्वभाव से हटाकर विकारो की ओर उसे धकेल देता है । इस तरह आत्मा का स्वरूप ही बदल जाता है । कषाय और योग आत्मा ही संसार मे भटकाने वाले तथा कर्म बन्धन के मूल कारण हैं ।

## कषाय और योग विजय ही आत्म विजय

आत्म-कल्याण के लिए ज्ञानियो ने कहा कि कषाय आत्मा और योग आत्मा को जीतो। इन दो को जीतना है और दो से अर्थात् ज्ञान एव चारित्रभाव से जीतना है। कषाय और योग ये दो ही आत्मा को बन्धन मे डालने वाले है। इसलिए इन दोनो को ज्ञानात्म-भाव से और चारित्रभाव से जीत लिया तो दु खो से मुक्ति कठिन नही होगी। कहा भी है कि— 'अप्पणाचेव अप्पाण, जिणित्ता सुह-मेहए।" अर्थात् ज्ञानपूर्वक चारित्र आत्मा से कषाय आत्मा को जीतकर आनन्द प्राप्त किया जाता है। इसतरह भव-बन्धन से छूटकर आत्मा परमात्मभाव को प्राप्त करता है।

पहले कह चुका हूँ कि जीव का यह बन्धन परकृत नही है, स्वकृत है। कषाय आत्मा स्वय ही स्वय का बन्धन तैयार करती और असमे आत्मा को बाधती है। कषाय की उग्रता-प्रबलता ही आत्मा के लिए, बन्धन कारक बनती है। परन्तु उदयभाव को यदि क्षयोपशम कर दिया जाये, उपशम एव क्षायिक भाव मे बदल दिया जाये तो ये सारी कर्मो की स्थितियाँ समाप्त हो सकती है।

## अपने को समझना ही सब कुछ सीखना है

भगवान् महीवार ने अनन्त-अनन्त करुणा करके कहा कि मानव ! अपने बन्धनो को स्वय समझो और काटो। सूयगडाग सूत्र मे प्रभु नें कहा है—"बुज्झिज्ज तिउट्टिज्जा, बधरण परिजाणिया।" यानी आत्मा का बोध करो। यदि तुमने दुनिया भर को जान लिया परन्तु अपने आपको नही जाना तो जानना एव जीवन व्यर्थ है—बेकार है। तुम किस कारण से भव-बन्धन मे पडे हो और बन्धन को कैसे काटा जाता है ? यदि यह नही जाना तो चाहे लाखो करोडो मिलाना सीख गये, राज्य करना, हुकूमत करना, परिवार बढाना आदि बहुत-सी व्यावहारिक बाते सीख गये तो भी आत्महित की दृष्टि से कुछ भी नही सीखा। आत्मा का बन्धन कैसे काटना, भव-

प्रपच से अपने को कैसे अलग करना, यदि इसकी जानकारी नही पायी तो सब सीखा हुआ बेकार है।

अतएव उन दूसरी-दूसरी बातो को सीखने की अपेक्षा अब यह सीखना जरूरी है। और सीखकर उन्हे सतत ध्यान मे बनाये रखना भी आवश्यक है। कई बार ऐसा होता है कि सीख तो लिया पर ध्यान मे नही रहा। इसलिए बध और मोक्ष के कारणो को सम्यक् जानकर, ध्यान मे रखने का यत्न करना चाहिये।

### अवसर चूका तो सब चूका

भगवान् महावीर ने दया करके बताया कि मानव! याद रखो कि विश्वभूति जैसे महान् तपस्वी ने सीखा था कि बन्धन कैसे काटना? और वे इस रास्ते पर लग भी गये, परन्तु जब मौके पर विशाखभूति ने जरा शब्दो का तीखा प्रहार कर दिया तो बेभान हो गए। और उससे घायल होकर अपने ज्ञानभाव से चूक गए तथा कषायभाव मे आ गए। साथ ही उन्होने निदान कर लिया कि इससे बदला लिए बिना नही रहूँगा।

तो एक हजार वर्षो तक तपस्या करने वाली आत्मा भी भटक गयी। और फिर से ऐसी जगह चली गयी, जहा से नर्क गति का बन्ध करना पडता है। कहावत है कि—"राजेश्वरी सो नरकेश्वरी"। यह यहा खरी उतरती है। प्राय करके राजेश्वरी नरकेश्वरी होता है। राजा का पद लेकर, भार लेकर और आरम्भ परिग्रह को अत्यधिक सेवन करने वाला, वह राज पद पर रहता हुआ शक्ति सम्पन्न भी नर्क मे जाता है। क्योकि उसमे रौद्र ध्यान रहता है।

देखे, आर्तध्यान वाला प्राय करके पशुगति और रौद्रध्यान वाला नर्क गति प्राप्त करता है। अत ज्ञानियो ने कहा कि मानव! अपने आपको भटकाने से बचाना है तो आर्त और रौद्रध्यान मत करो। मौके पर परिस्थितिवश आर्त और रौद्रध्यान भी आ सकता है। परन्तु उस समय सोचना कि मैं इनसे अलग हूँ और ये मुझ से

अलग है। इनके वियोग और सयोग से मेरी न तो कोई हानि है और न कोई लाभ है। अगर इस बात को अच्छी तरह समझ लोगे तो आर्त और रौद्रध्यान का शिकार नही होगे।

**कर्म उदयदशा मे प्रभावक होता है**

विश्वभूति का जीव जब अठारहवे भव मे आया तो अपने बल से आगे बढता रहा। क्योकि पुण्य का तेज उसके साथ था। जो पुण्य का तेज लेकर आता है तो उसे पर की सहायता अपेक्षित नही रहती। राजा प्रजापति के घर मे त्रिपृष्ठ के रूप मे वह और उसका तेज भी बढने लगा। जैसे कि कहा है—

**"तेज पराक्रम से बालक, जग ख्याति बढ़ाते हैं।**
**अश्वग्रीव तब तीन खण्ड का, नाथ कहाते है ।।**
**अश्वग्रीव भावी वेत्ता से, पृच्छा करते हैं।**
**कहो मरण मम कैसे होगा, शास्त्र बताते हैं ।।"**

बन्धुओ ! मैं बता रहा था कि कषाय और योग से सचित कर्म, चार दशाओ से गुजरता है। जैसे—बध, उदय, उदीरणा और सत्ता। किसके कैसे कर्म सचित है, यह उदय मे आने पर ही मालूम होता है। कोई भी कर्म तभी असर करता है, जबकि वह उदय मे आता है। सत्ता के कर्म बैंक मे जमा रकम की तरह है। जैसे किसी श्रीमन्त के पास लाखो की पूजी है, पर वह हाथ मे नही, बैंक मे जमा है। तो बैंक मे जमा वाला करोडपति और साधारण झोपडी वाला गृहस्थ, क्रय-विक्रय के स्थान मे बराबर दर्जे वाला होता है। यदि किसी करोडपति की भी रकम बैंक मे जमा है और गरीब के पास कुछ भी नही है, तो बाजार मे दोनो बराबर होगे।

इसी तरह शुभ कर्म भी जब तक सत्ता मे रहते है, तब तक कोई लाभ नही देते। भले ही एक प्राणी की तीर्थंकर नाम कर्म की सत्ता है और वह अभी नर्क मे पडा है। अगले भव मे नरक से निकल कर तीर्थंकर बनेगा, यानी पहली चौबीसी का तीर्थंकर। मगर वह श्रेणिक का जीव अभी नरक मे बैठा है, तो उसे नरक गति के दुःख

ही प्राप्त होगे। कारण उदय निरय का है। तो नर्क मे पडे हुए को वह शुभ नाम कर्म क्या काम आया ? वह सत्ता मे है, परन्तु अभी उदय मे नही है। कहने का मतलब है कि दशाये दो है, एक सत्ता की और दूसरी उदय की। कर्म जब उदय मे आता है, तभी अच्छा या बुरा फल देता है, पहले कभी नही।

### साता सबको प्यारा

जो कर्म साता रूप शुभ फल देता है, वह आपको प्यारा लगता है, भला लगता है, और आप सदा मन से चाहते है कि शुभ फल देने वाला कर्म बना रहे तो बहुत अच्छा है। परन्तु असाता का उदय आ जाये तो मन की बेचैनी बढ जाती है। उस समय आप कहने लगते है कि पहले के दिन कितने अच्छे बीत रहे थे। पत्थर भी हाथ मे लेते तो वह भी हीरा बन जाता था। भगवान् सदा साता ही बनाये रहे। इस तरह अच्छे कर्म का उदय, प्राणी हर समय बनाये रखना चाहता है। और आसाता-अशुभ कर्म का उदय कभी नही चाहता है। क्योकि उसकी वेदना प्रतिकूल होती है।

जन साधारण यह नही जानता कि कर्म का उदय सदा एक जैसा नही रहता है। चक्र की तरह कर्म की गति बदलती रहती—ऊपर नीचे होती रहती है। इसलिए जब कभी भी अच्छे कर्मो के उदय का मौका हाथ लगे तो उस समय कुछ ऐसा कर्म कर लेना चाहिये कि जिससे पुण्य का बध हो और अशुभ कर्म के बन्धन कट कर आत्मा हल्की हो। अच्छे कर्म का परिणाम भी पुण्य रूप और निर्जरा रूप से दो प्रकार का होता है। पुण्य रूप होते है तो शुभ सामग्री के बढाने मे सहायक होते है। और निर्जरा रूप होते है, वे कर्म बन्धन को तोडने मे सहायक होते हैं। देवादिभव और उत्तम कुल पुण्य का प्रतिफल है।

### त्रिपृष्ठ की माता और शुभ स्वप्न

कहा जा चुका है कि विश्वभूति का जीव, अपने अठारहवें भव मे, माण्डलिक राजा प्रजापति के यहां उत्पन्न हुआ। उसके गर्भ मे

आते ही माता ने सात स्वप्न देखे। तीर्थंकर और चक्रवर्ती की माता चौदह शुभ स्वप्नो को देखती है। जबकि वासुदेव की माता सात स्वप्न देखती है। और बलदेव की माता चार स्वप्न देखती है। ऐसे ही कोई सामान्य माण्डलिक या पुण्यशाली होता है तो उसकी माता मात्र एक स्वप्न देखती है। कभी शेर को देखले तो कभी हाथी को देखले, या कभी चन्द्र सूर्य को देखले। इस तरह का स्वप्न-दर्शन स्वस्थ दशा मे हो तो प्रशस्त, शुभ और श्रेयस्कर माना जाता है।

सात स्वप्नो को देखकर माता ने उसको जन्म दिया। यदि वह कोई साधारण माता होती तो शेर को देख भयभीत होकर भाग खडी होती। आज की माताए बिल्ली और चूहो की आवाज से डर जाती हे। परन्तु त्रिपृष्ठ की माता तेज व ओज वाली थी। ऐसी वीर-माता की कुक्षि से जन्म पाने वाला बालक, ओजस्वी, तेजस्वी एव बलवान् हो तो आश्चर्य ही क्या ?

**अश्वग्रीव को त्रिपृष्ठ से आशका**

महाराज प्रजापति की तेजस्विनी महारानी से जन्म पाकर त्रिपृष्ठ दूज के चाद की तरह बढने लगे। कहावत है कि—"होनहार बिरवान के होत चिकने पात।" जो होनहार होता है, वह छिपाये नही छिपता और न दबाये दवता ही है। त्रिपृष्ठ के जीवन मे विद्युत की तरह तेजस्विता एव ओजस्विता देखकर आस पास के सामन्त राजा कहने लगे कि प्रजापति का पुत्र तो बडा होनहार व भविष्णु है। इस प्रकार उसकी शूर-वीरता की हवा चारो ओर फैल गयी।

उस समय राजाधिराज अश्वग्रीव थे जो तीन खण्ड के नाथ कहला रहे थे। वे उस समय के प्रतिवासुदेव थे। वर्तमान मे उनके मुकाबिले मे कोई बडा राजा नही था। अत वही सर्वेसर्वा थे। उन्हे भी इस पराक्रमी बालक के पराक्रम और तेज बल की कहानिया यदा कदा सुनने मे आईं। इस पर उन्होने मन ही मन विचार किया कि मेरा भी मुकाबिला करने वाला और टक्कर लेने वाला कोई माई का लाल हो सकता है क्या ? शास्त्र कहता है कि प्रतिवासुदेव की

हत्या, वासुदेव के हाथो से होती है, तो क्या कोई मेरे अतिरिक्त भी वासुदेव हो सकता है ? शास्त्री लोगो की बात का कोई प्रमाण है ? इस प्रकार की चिन्ता मे अश्वग्रीव निरन्तर चिन्तित रहने लगा। उसको ज्ञानियो की शिक्षा का स्मरण होने लगा। जिसमे कहा गया है कि—"सपद पदमापदाम्।" अर्थात् सम्पदा विपदा का स्थान और सुख दु ख की खान है।

## सुख का अतिक्रमण, दु ख का निमन्त्रण

इन्द्रिय जन्य सुख के पीछे दु ख की प्राप्ति निश्चित है। आप अच्छा खाइये, पहनिये, इन्द्रिय के किसी अन्य सुख का उपभोग कीजिए। जरा भी उसमे अतिक्रमण किया तो रोग के शिकार हो जायेगे। नीतिकार भर्तृहरि ने ठीक ही कहा—"भोगे रोग भय, कुले च्युतिभय, वित्ते नृपालाद् भय।" यानी भोग मे रोग का भय, उत्तम कुल पाकर सुख मानने मे प्रतिष्ठा जाने का भय और धन मे राज्य भय बना रहता है।

पैसा इकट्ठाकर लखपति से करोडपति बनने मे मन खुश रहता है। पैसे के लिए तो मनुष्य मद्रास, कलकत्ता आदि बडे-बडे नगरो मे घूमता है। मगर द्रव्य के सचय मे भय है या निर्भयता ? करोडपति की हवेली के नीचे तल घर मे एक साधारण हरिजन रहता है और सेठजी ऊपर में रहते है। जरा विचार कीजिए, भय ऊपरवाले को ज्यादा है या नीचेवाले को ? एक किरायेदार गरीब हरिजन जो मजदूरी करके गुजर करता है। उसके पास सम्पदा कम है तो भय और भीति भी कम है। और लखपति सेठ के पास सम्पत्ति अधिक है तथा करोडपति के पास उससे भी अधिक। तो लखपति की अपेक्षा भय करोडपति को ही ज्यादा होगा।

ऐसे ही करोड़पति से बढकर किसी अरबपति को, जिसकी बीसो मीले चलती हैं, उसको इन सबसे अधिक दु ख है। क्योकि धन के पीछे राजा का, चोर-डाकुओं का भय तथा भाई-भतीजो की भी

नजर लगी रहती है। पिता के बँटवारे मे एक भाई को अधिक मिल गया तो कम पानेवाले भाई की टक्कर बनी रहती है। इस तरह जो भौतिक सुखो की सीमा का अतिक्रमण कर जाते, उसका परिणाम दु:खद होता है। वे अपने ही हाथो अपने लिए दु ख को आमन्त्रित करते है।

**अश्वग्रीव एव निमित्त ज्ञानी**

आनेवाली आपत्ति की आशका से अश्वग्रीव आतकित हो ही रहा था। सयोगवश एक बार उस प्रति वासुदेव—अश्वग्रीव की राजसभा मे एक भविष्यवेत्ता चला आया। भविष्यवेत्ता लोग ऐसे ही राजा, महाराजा एव धनवानो के पास आते-जाते रहते हैं। किसी मिनिस्टर साहब की कुर्सी हटनेवाली हो तो वे भी उसके पीछे घूमते हुए मिलेगे तथा पूछना चाहेगे कि मेरी यह कुर्सी कायम रहेगी या चली जायेगी ? आप सेठ लोग भी पूछते रहते है कि ज्योतिषी जी ! अभी राज का मामला टेढा चल रहा है तो हमारी इज्जत मे कोई बट्टा तो नही लगेगा।

हा, तो महाराज अश्वग्रीव जो तीन खण्ड के नाथ तथा अपने युग के प्रति वासुदेव थे। उनको किसी भी बात की कोई कमी नही थी। धन, बल, कोष-कोठार, अस्त्र-शस्त्र और सैन्य सब परिपूर्ण थे। मगर किसी शास्त्री के मु ह से सुन लिया था कि प्रतिवासुदेव की मृत्यु वासुदेव के हाथ से होती है। अत वे शका ग्रस्त बने रहते थे कि मेरी मृत्यु किसके हाथ से होगी ? अचानक निमित्त ज्ञानी को राज सभा मे आया देख कर उनकी इच्छा उससे अपने भविष्य जानने की हुई।

**शास्त्र सच्ची आख है**

ज्ञानियो ने शास्त्र को आख कहा है। जैसे कि—

**अनेक सशयोच्छेदि, परोक्षार्थस्य दर्शकम् ।**
**सर्वस्य लोचनं शास्त्र, यस्य नास्त्यन्ध एव स ॥**

यानी अज्ञान एव सशय का उच्छेद करने वाला तथा भूत, भविष्य और दूरस्थ अर्थ को दिखाने वाला शास्त्र सब का नयन है। जिसको शास्त्र रूपी नयन नही है, वही अधा है।

आप लोगो ने कुर्सी की कद्र की है, पैसे की भी कद्र की है। आपके घर मे नोटो की गड्डिया सजी हुई मिल सकती है। परन्तु शास्त्र सजे हुए नही मिलेगे। क्योकि शास्त्रो के प्रति आप सबकी अभिरुचि और आदर नही के बराबर है। आपके यहा अन्य वस्तुओ का उपयोग होते हुए देखा जायेगा। परन्तु धर्म ग्रन्थो का, उपयोग कम ही होता होगा। किसी ने अच्छा समझकर कोई धर्म ग्रन्थ उपहार मे भी दे दिया तो उसको आप गादी के नीचे दवा कर रख देगे। और वह तभी निकलेगा, जब कभी गादी की सफाई की जायेगी।

अहमदाबाद मे आगम समिति का काम चला। पूज्य घासी लाल जी म० के पास जो भी बडे बडे सेठिया गए और समिति के सहायक तथा आगमो के ग्राहक बने, सभव ही उन्होने कभी कोई शास्त्र उठाकर पढा होगा ? एक भाई के पास अहमदाबाद के मुद्रित शास्त्र मिले, जिसे उदई खा गई थी और वे सड गए मगर अभी तक ऐसा कोई सेठ नही मिला, जिसकी नोट-गड्डी को उदई खा गई हो ? क्या आप मे से किसी के तिजोडी के नोट कीडे लगने से बर्बाद हुए या सड गए ? ऐसा भी कभी मौका आया है ? नही ! क्योकि आप बराबर उसकी सार-सभाल करते है। क्या घर मे और पास के भण्डार मे पडे हस्तलिखित शास्त्रो की भी कभी सभाल करते है ?

इस तरह देखा जाता है कि आपके हृदय मे नोटो की जो इज्जत है, वह शास्त्रो की नही है। परन्तु याद रहे ! शास्त्र आख है। आज के बडे बडे वैज्ञानिक, ताज्जुव करने योग्य विज्ञान के तथ्यो का प्रकटन किसके सहारे करते है ? उन्होने जो बेतार के तार निकाले, आदमी की आवाज को पकडने वाले टेप निकाले, रेडियो और टेली-वीजन का आविष्कार किया, पनडुब्बी, हवाई जहाज, मिसाइल,

न्यूट्रान बम्ब आदि एक से एक बढकर अस्त्र शस्त्रादि तैयार कर लिए ये सब उन्होने कहा से सीखी ? मानना पडेगा कि शास्त्रो से ही उन्होने यह ज्ञान-विज्ञान प्राप्त किया। आप चाहे इन शास्त्रो के प्रति जो बेकद्री दिखाये, किन्तु जर्मन, जापान और इगलैण्ड, तथा अमेरिका वाले, आपके इन शास्त्रो के प्रति कद्र करते है एव इनसे लाभ उठाते आ रहे है। मगर आपके हृदय मे, घरो मे उन नयनरूप शास्त्रो का कोई मोल नही, आदर नही, और वे शास्त्र बिना सभाल के सडते गलते दिखाई देते है।

**निमित्त ज्ञानी द्वारा भविष्य कथन**

मेरे कहने का मतलब यह कि अश्वग्रीव को उस समय धन पर उतना ध्यान नही रहा। उसको लगा कि पृथ्वी पर शास्त्र से बढ कर और कुछ नही है। शास्त्र ही मनुष्य का वास्तविक नयन है। वह हमारे भूत, भविष्य, और वर्तमान की छिपी बात भी बताता है। ऐसी धारणा मन मे धारण कर उसने निमित वेत्ता से पूछा कि मेरा मरना किसके हाथ मे है ?

अश्वग्रीव के मुह से यह बात सुनकर, निमित्त ज्ञानी ने सोचा कि आज मेरी विद्या के उपयोग का उपयुक्त समय आया है। अगर किसी साधारण व्यक्ति को विद्या का प्रयोग बताता तो वहा मेरी क्या कद्र होती ? यह तो महाराज है, सब तरह से समर्थ है। अत इसको अवश्य अपनी विद्या का चमत्कार बताना चाहिये। ऐसा मन मे विचार कर उसने शास्त्र मे ध्यान लगाया और कहा—महाराज ! एक नौजवान व्यक्ति जो अभी-अभी बडा हो रहा है, यदि आपके दूत चन्द्रमेघ को, प्रजापति के यहा पहुँचने पर मारपीट कर निकाल देगा और तुगगिरि पर्वत पर शेर को पछाड देगा तो समझ लेना कि वही आपके सिर को धड से उडाने वाला है। इस प्रकार निमित्त ज्ञानी ने अश्वग्रीव को मरण का भेद बताया।

इस पर अश्वग्रीव ने विचार किया कि मरना तो सबको होता है। मगर मैं एक साधारण आदमी के हाथ से मरू, यह ठीक नही

है। रोग और शत्रु को उठते ही समाप्त कर देना चाहिये। उस नीति के अनुसार अश्वग्रीव—पानी आने से पहले पाल बाधने की बात सोचने लगा। अश्वग्रीव किस तरह मरने से बचने की कोशिश करेगा यह आगे सुनने से ज्ञात होगा।

याद रखो कि मनुष्य लाख यत्न करे परन्तु सचित कर्म के उदय के सामने चाहे कोई राजा हो या महाराजा-चक्रवर्ती हो, सभी को कर्म का फल तो भोगना ही पडता है। इसलिए ज्ञानियो ने कहा कि बधन काटना है तो दूसरे को मत देखो। दूसरा कोई मदद नही करेगा। तेरी आत्मा ही तेरी मदद करने वाली है। कषाय आत्मा और योग आत्मा को वश मे करो एव ज्ञानात्मा तथा चरित्रात्मा को जगाओ। यदि ये दोनो जागृत रहेगे तो कषाय और योगात्मा अपना बल नही बता सकेगे। इस तरह दोनो को वश मे करने से आपके कर्म बन्धन कट कर, सिद्ध, बुद्ध बनने मे भी देर नही लगेगी।

इस प्रकार वीतराग प्रभु की इस आध्यात्मिक शिक्षा को, अपने शुद्ध अन्त करण मे जो भी व्यक्ति सहजभाव से धारण करेगा—अगीकार करेगा तो इस लोक और परलोक मे सुख-शान्ति का अधिकारी बन सकेगा।

●●

# १६

# अ माधि के मूल कारण ` चें

**तन, मन, वचन ही दण्ड एवं निधान**

बन्धुओ ! अभी शास्त्र के प्रकरण मे, असमाधि और स
का वर्णन चल रहा है। यह व्यवहार के लिये भी शिक्षा सूत्र है
पारमार्थिक हित के लिए भी। व्यवहार की असमाधिया तो अ
कालीन होती है। परन्तु परमार्थ की असमाधि, चिरकाल के ि
होती है। भगवान् ने केवल असमाधि का ही ख्याल नही किया, पर
असमाधि के कारण भी बताये।

शास्त्र मे तीन प्रकार के दण्ड बताये गए हैं। ठाणाग सूत्र ः
तीसरे ठाणे मे कहा है कि प्राणी दण्ड क्यो पाता है, दु ख और कष्ट
क्यो पाता है ? तो इसके उत्तर मे कहा कि—"तिविहे, दडे पण्णत्ते
त० मणदडे, वयदडे, कायदडे।" अर्थात् तीन प्रकार के दण्ड विविध
दु खो के कारण हैं—मनदण्ड, वचनदण्ड और कायदण्ड। फिर सुख के
कारण बतलाते उसी ठाणाग सूत्र के तीसरे ठाणे मे कहा कि—
"तिविहे सुप्पणिहाणे प० त मण सुप्पणिहाणे, वय-सुप्पणिहाणे, काय
सुप्पणिहाणेय"। जो दण्ड है, दु ख देने वाले है, उन्हो को मोड दो,
परिवर्तन कर दो तो वे ही सुख के खजाने—भण्डार बन सकते है।

दण्ड की तरह सुमार्ग पर लगाये गए मन, वचन और काया
ही सुख का निधान है– खजाना है। एक ही साधन के ये दो फल हैं।
अन्तर इतना ही है कि इनका सुलटा—सही ढग से उपयोग किया
तो सुख है और उलटा उपयोग किया तो दु ख ही दु ख है। जैसा कि
कहा भी है—

"मन एव मनुष्याणा, कारण बन्ध मोक्षयोः । गी०

यानी मन ही मनुष्यो के बन्ध और मोक्ष का कारण है। सुख और दु ख कही बाहर से नही आते। किसी और के द्वारा ये निर्मित नही होते। हम स्वय इसके निर्माता है, कारण है। जैसे कि कहा है-

"आपदा कथित पन्था, इन्द्रियाणामसयम ।
तज्जय सपदा मार्गो, येनेष्ट तेन गम्यताम् ॥

अर्थात् इन्द्रियो का असयम आपदाओ का मार्ग है और इन्द्रिय जय सम्पत्ति का मार्ग है—यह जानते हुए आपको जो मार्ग पसन्द हो उससे चले।

## सुख और दु.ख इनके प्रयोग पर निर्भर

इनमे तारने और मारने दोनो की सामर्थ्य है। किसी कवि की यह वाणी सर्वथा सच है कि—"तुम मार भी सकते हो क्षण मे, तुम तार भी सकते हो पल मे। दु ख और अमृत का भरा हुआ, भण्डार तुम्हारे हाथो मे। आवश्यकता है हमारे सही उपयोग की।

भगवान् महावीर ने कहा कि शरीर मे कोई फोडा है, फु सी है या पीडा-दर्द है, तो लोग उसको ही असमाधि मानते हैं। परन्तु असमाधि के असली मूल को नही ढू ढते। अभी मुनिजी ने जिस मन, वचन और काया की, इस प्रसग पर चर्चा की, उनमे एक 'वचन' भी है। वचन यदि सावद्य बोलोगे—पापयुक्त बोलोगे, कर्कश-कठोर बोलोगे, और पर पीडाकारी बोलोगे तो वह वचन तुम्हारी असमाधि-अशाति का कारण होगा। इसलिए ऐसा वचन, वाचक के लिए दण्डरूप है। यद्यपि वचन मे असमाधिरूप दृष्ट नही होता, मगर दण्ड पाने मे वह कारण होकर चलता है। और फल उससे मिलने वाली असमाधि है।

देखा जाता है कि ससार मे जो सावद्य यानी झूठ बोलता है, समाज मे उसका विश्वास उठ जाता है। लोग उसकी बातो की प्रतीति नही करते। कहावत प्रसिद्ध है कि—"जिसने अपना विश्वास गवा दिया, उसने कुछ भी नही रखा, सब कुछ गवा दिया। वस्तुत

# १६

# असमाधि के मूल कारण ` चें

**तन, मन, वचन ही दण्ड एव निधान**

वन्धुओ ! अभी शास्त्र के प्रकरण मे, असमाधि और समाधि का वर्णन चल रहा है। यह व्यवहार के लिये भी शिक्षा सूत्र है और पारमार्थिक हित के लिए भी। व्यवहार की असमाधिया तो अल्प-कालीन होती है। परन्तु परमार्थ की असमाधि, चिरकाल के लिए होती है। भगवान् ने केवल असमाधि का ही ख्याल नही किया, परन्तु असमाधि के कारण भी बताये।

शास्त्र मे तीन प्रकार के दण्ड बताये गए है। ठाणाग सूत्र के तीसरे ठाणे मे कहा है कि प्राणी दण्ड क्यो पाता है, दु ख और कष्ट क्यो पाता है ? तो इसके उत्तर मे कहा कि—"तिविहे, दडे पण्णत्ते त० मणदडे, वयदडे, कायदडे।" अर्थात् तीन प्रकार के दण्ड विविध दु खो के कारण हैं—मनदण्ड, वचनदण्ड और कायदण्ड। फिर सुख के कारण वतलाते उसी ठाणाग सूत्र के तीसरे ठाणे मे कहा कि—"तिविहे सुप्पणिहाणे प० त मण सुप्पणिहाणे, वय-सुप्पणिहाणे, काय सुप्पणिहाणेय"। जो दण्ड है, दु ख देने वाले है, उन्ही को मोड दो, परिवर्तन कर दो तो वे ही सुख के खजाने—भण्डार बन सकते है।

दण्ड की तरह सुमार्ग पर लगाये गए मन, वचन और काया ही सुख का निधान है– खजाना है। एक ही साधन के ये दो फल हैं। अन्तर इतना ही है कि इनका सुलटा—सही ढग से उपयोग किया तो सुख है और उलटा उपयोग किया तो दु ख ही दु ख है। जैसा कि कहा भी है—

**"मन एव मनुष्याणा, कारण बन्ध मोक्षयो: । गी०**

## असमाधि के मूल कारण से बचो

शास्त्र कहता है कि इस प्रकार मिथ्या विचार, मिथ्या आचार और मिथ्या उच्चार, असमाधि के मूल कारण है। इन भीतरी कारणो से व्यक्ति को तत्काल असमाधि मिले या नही मिले, परन्तु समय पाकर उसका फल उत्पन्न हुए बिना नही रहेगा। कहावत प्रसिद्ध है—

"जब लग तेरे पुण्य का, पहुचे नही करार।
तब लग तुमको माफ है, अवगुण करो हजार।।"

अत प्रत्येक इन्सान का यह कर्तव्य है कि वह असमाधि के मूल कारण से अपने को वचाये रखे।

असमाधि के मूल कारणो से वचने वालो के कर्मो की धूल-गदगी नही लग पायेगी। आशातना से बचने पर, आत्मा के ज्ञानादि विमल गुण, मलिन नही होगे। अतएव प्रभु ने कहा—"अप्पमत्तो परिव्वएज्जासि।" प्रमादरहित होकर विचरो। सुमेरु की चोटी से फिसलनेवाले को, उतना खतरा नही, जितना साधना मे प्रमाद करने वाले को है। अत शास्त्रकार ने कहा—"अप्पाहु खलु सयय रक्खियव्वो।" यानी आत्मगुणो की सदा सावधानी से रक्षा करो। ऐसा न हो कि भावावेश मे, कही बाजी हार कर खाली हाथ लौटना पडे।

## क्षणिक वैराग्य से लाभ नहीं, पर क्षणिक कषाय से विनाश

मनुष्य के मन मे बहुतोबार, दुष्कृत से बचने की लहर उठती है—शुभ भावो के विचार उत्पन्न होते हैं। ससार मे व्यर्थ बैठा हुआ व्यक्ति भी, ऐसी अच्छी बातो का कई वार विचार करता है। मगर वे सागर की लहरो के समान अस्थिर एव चचल होते है। क्षणिक वैराग्य की लहरे, सागर तरगो की ही तरह आती और चली जाती है। ऐसे क्षणिक वैराग्य से, पल भर के मोह भग से, आत्मा को अपेक्षित शाति नही मिलती, आराम प्राप्त नही होता। कारण, वैराग्य की भाति

वहा आराम भी क्षण पल मे ही चला जाता । मनुष्य को दु ख के समय और श्मशान मे क्षणिक वैराग्य आता है, पर इस प्रकार का मशानिया वैराग्य किस काम का ?

दु ख के समय सत और भगवान याद आते है। पर उसका लाभ क्षण भर का पुण्यबध करनेवाला होता है। मगर राग क्षणभर का भी भयकर होता है। प्रमाद और कषाय की लहर, क्षणभर के लिए भी मन मे आ गई तो वह आत्मगुणो की बहुत वडी हानि कर बैठेगी। देखो! विषय और कषाय की लहर तो क्षणभर की भी मिले, लाभ को खत्म कर सकती है—विनष्ट कर सकती है। परन्तु वैराग्य की लहर क्षणभर मे आत्मा को स्थायी लाभ नही पहुँचा सकती। इन दोनो का यह अन्तर कितना महान् और विशाल है! विषय-कषाय की क्षणिक लहर भी, उस प्रदीप्त तूलिका की आग की तरह है, जो घास-फूस के घरो पर जाकर क्षण पल मे भी सर्वनाश कर देती है, किन्तु वैराग्य की लहर, जल की उस मन्द धारा की तरह है, जिसका कभी कोई अता-पता ही नही चलता। इस पर चिन्तनपूर्वक सोचोगे और महापुरुषो की जीवनियो पर विचार करोगे तो मालूम होगा कि किस तरह से, वैराग्यपूर्वक पाले हुए, हजार वर्षो का तप, त्याग और साधना के उत्कर्ष को क्षण भर के लिए आया हुआ भी दुर्भाव, नष्ट कर देता है—भस्मसात् कर देता है। बडी से वडी लम्बी अवधि वाली साधना को क्षण-पल मे पलटते देर नही लगती। किसी अनुभवी ने ठीक ही कहा है—

"कष्टेन हि गुण ग्राम, प्रगुणी कुरुते मुनि ।
ममता राक्षसी सर्वं, भक्षयत्येक हेलया ॥"

**कषाय आत्मा के सब गुणो को नष्ट कर देता है**

कहा गया कि मुनि, साधक या तपस्वी वडे कष्ट से, वडी तकलीफ सहन करके, गुणो के समूह को, चिरदिनो में इकट्ठा करता है। मगर वह सव का सव घडी पल में विनष्ट हो जाता है। तप-त्याग की वह पू जी, क्लेश-पूर्वक एकत्रित किया वह माल, किसी

सटोरिये के हाथ से, बाप-दादो की कडी मेहनत से उपार्जित सम्पत्ति की तरह, घडी भर भी उसके जाते देर नही लगती। तो जैसे जुआरी का लडका, सटोरिया का लडका, बाप-दादा की लाखो-करोडो की पूजी को, सट्टे की एक दाव पर चढाकर नष्ट कर देता है, ऐसे ममतालु जीव, क्षणभर के कषाय भाव मे, चिर सचित तप को नष्ट कर देता है।

समाज मे ऐसी कई करोडपतियो की पेढिया मिलेगी, फर्मे देखने को मिलेगी कि जिनके गाव, परगावो मे, कई इमारते थी और सात पीढी तक खावे तो भी पूजी नही खुटे, इतनी बडी सम्पत्ति थी। किन्तु उनके लडके जूए-सट्टे मे ऐसे लगे कि सारी सम्पत्ति एव कोठी-बगले सब नष्ट कर दिए। जैसे जूए-सट्टेवाले, क्षणभर मे सब नष्ट कर देते है—ऐसे ही प्रमाद और कषाय भी गुणो के समूह को नष्ट कर देते है।

अभी एक छोटा सा नमूना विश्वभूति के जीव त्रिपृष्ठ का आप सबके सामने है। मुनि ने हजार वर्ष तक तपस्या की पर भाई की कषायपूर्ण एक बात ने क्षणभर मे समस्त तप-बल को क्षीण कर दिया। त्रिपृष्ठ के रूप मे उसने तन-बल, धन-बल और शस्त्रादि का सब बल पाकर भी आत्मिक बल को गवा दिया।

**आध्यात्मिक प्रगति की दिशा मे**

विश्वभूति वासुदेव तो हुए, लौकिक पुण्यवानी भी पायी। परन्तु आत्म-सद्गति के अधिकारी बनने की दिशा मे अयोग्य सिद्ध हुए। यह कषाय दूषित पुण्यवानी उनकी आत्मा के लिए गुणो मे हानि का कारण बन गया। यद्यपि भौतिक सम्पदा मिलने मे कोई कमी नही थी। धन-वैभव, कोष-कोष्ठागार एव सुख-समृद्धि सब तरह से बढी-चढी थी। परन्तु आत्मिक गुणो की हानि होती रही। वह निदान के कारण सम्यक्त्व गुणो से, श्रावकपन से, साधु और सं[illegible] भाव से वचित हो गया।

कहा तो पूर्वकाल का तपस्तेज और अनुपम त्याग-वैराग्य और कहा यह छल-प्रपचयुक्त भोगसुख, नदी के दो तटो की तरह बिल्कुल एक-दूसरे से अलग-थलग, मिलने मे मजबूर। वह राज्यश्री को पाकर आत्मश्री से इतना वञ्चित हो गया कि जिसकी कुछ हद नही। अब एक ओर तो इनका जीवन और दूसरी ओर प्रतिपक्षी का जीवन—यानी बदला लेने के लिए शेररूप मे उत्पन्न हुए विशाखभूति का जीवन। दोनो आकुलता, व्याकुलता और भय-शोक से घिरे बैठे है।

**अश्वग्रीव की चिन्ता**

उस समय का राजाधिराज प्रतिवासुदेव के रूप मे, तीन खण्ड का नाथ अश्वग्रीव था। जन्म-जन्मान्तरो के सस्कारो से, उनका भी वैरानुबध चल रहा था। भविष्यवक्ता के वचन से उसने सुन रखा था कि वह एक आदमी के हाथ से मारा जायेगा। उसके मन मे इस बात की चिन्ता घरकिए बैठी थी। वह सोचने लगा कि मेरा घातक, बल, वीर्य और धन आदि मे मुझसे आगे ताकत दिखानेवाला बन रहा है। यह मौत का भय राजा अश्वग्रीव के मन को सता रहा था।

सासारिक साधन-सम्पदाये—धन, परिवार और हुकूमत एव प्रभाव की उसको कोई कमी नही थी। परन्तु एक चिन्ता घुन की तरह उसके मन को काट रही थी कि मरना पडेगा और वह भी किसी पराये के हाथो से। इससे उसका मन बहुत दुःखी था। भविष्यवेत्ता ने कहा, जो आपके भेजे गए दूत को मार-पीटकर भगा देगा और तुगगिरि पर्वत पर उत्पात करनेवाले बाघ को मारेगा, वही आपका प्राण लेगा। जैसे कि कहा—

"वही भूप तव घातक है, यो निमित्त गाते हैं।
सच्चाई निर्णय हित भूपति, दूत भिजाते हैं॥
प्रजापति की राजसभा मे, शोर मचाते हैं।
देख कुवर को रोष हुआ, घर पकड पिटाते हैं॥"

### जो पापमुक्त नही, वह भयमुक्त नही

तीन खण्ड का नायक होकर भी अश्वग्रीव भय के मारे काप रहा है। कहिए, भय किसको होता है ? जो पापमुक्त नही, वह भय-मुक्त भी नही हो सकता है। जो पापमुक्त और दोपमुक्त होता, वह भय से भी मुक्त हो जाता है। यह छोटी-सी परिभापा याद रखने और जीवन मे उतारने योग्य है। अश्वग्रीव के इस कापने का कारण, उसका क्रोध है, झूठ है, अन्याय हे और दूसरो को परेशान एव पीडा देने की भावना है। कहावत प्रसिद्ध है कि—

"दु ख दिया दुःख होत है, सुख दिया सुख होत।
जो तू हणे न और को, तोको हणे न कोय ॥"

किसी को ऐसा मालूम हो जाये कि तुमको एक लडका खत्म-कर देगा। तुम्हारी सेना एक ओर पडी रह जायेगी। तुम्हारा बल व्यर्थ सावित होगा, और तुम मारे जाओगे ! तो फिर वह आदमी भयभीत और चिन्तित क्यो नही होवे ? निमित्तवेत्ता ने—शकुन-शास्त्री ने कहा—महाराज ! हमारा शास्त्र साफ कहता है कि तु ग-गिरि के पास जो शेर मारेगा वही आपको मारनेवाला है। भविष्य-वेत्ता भी जैसा समझ मे आता है, कह देता है। कहने मे कुछ सकोच नही करता। अश्वग्रीव मृत्यु के भय से सत्रस्त हो गया, अनुभवी सतो ने कहा—"मरणसम नत्थि भय।" अर्थात् मृत्यु के समान कोई भय नही है। कहा भी है—

**"काल बेताल की धाक तिहुलोक मे, देव दानव घर रोल घाले।**
**इ द नरिंद वाका बड़ा जोध, पण काल की फोज को कौन पाले ॥**
**शील सतोष अवधिकर मुनिवर, काल को सांकडे घेर गाले।**
**जठे जन्म-जरा रोग शोक नहिं, वहां सुखा मे जाय म्हाले ॥**
**जठे काल को जोर कछु नहीं चाले ॥"**

### अश्वग्रीव को मृत्यु का भय

भाई ! काल से कौन डरता है ? मृत्यु से कौन डरता है ? त्यागी या रागी ? यो तो मृत्यु का भय सबको होता है। परन्तु त्यागी

जन रागियो की अपेक्षा मृत्यु के भय से त्रस्त नही होते । आप तो कोठी मे, बगले मे, बाल-बच्चो और बीबी के बीच मे मोह-ममता लगाये बैठे है। इन सबके प्रति आपकी इतनी अधिक ममता है कि इनके बिछुडने की बात से ही आप उद्विग्न हो उठते है—दु खी हो जाते है। किन्तु त्यागी इन सब मे, ममता का सम्बन्ध छोड कर किनारा कर बैठा है। वह सोचता है कि अब मैं इनका नही और अब ये मेरे नही ! मैं तो भगवान् के चरणो मे हू। ऐसा सोचकर वह सबसे भयद मृत्यु से भी भय नही खाता—घबराता नही है। कोई अगर किसी त्यागी से कह दे कि महाराज ! सास की गति तेज है, अब तैयारी करलो। आपका समय नजदीक आगया है। तो वे बोल उठेगे तैयारी कैसी ! मैं तो तैयार ही बैठा हू। मुझे यहा क्या लेना-देना और मेरा किससे नाता-रिश्ता ! कहा भी है—

**"शूली ऊपर घर करे, विष का करे आहार।**
**वाका काल कहा करे, जो आठो पहर होसियार ॥"**

अश्वग्रीव मृत्यु के लिए तैयार नही था। वह तो अठारह ही पापो मे लगा रहता था। मृत्यु के शब्द को सुनते ही उसका कलेजा कापने लगता। उसने सोचा कि शत्रु को खुला छोडना उसमे देर करना अच्छा नही। परीक्षा ही क्यो न करलू ! उसने चन्द्रमेध दूत को बुलाया और कहा कि प्रजापति राजा का लडका बडा तेजस्वी है। उसकी शूरता, वीरता तथा तेजस्विता की कहानिया चारो तरफ फैल रही है। अतएव जाकर पता लगा कि बात क्या है ?

### चन्द्रमेध का त्रिपृष्ठ से मुकाबिला

अश्वग्रीव ने मन ही मन सोचा कि कही प्रजापति का लडका ही तो मेरा काल बन कर नही आया है ? अथवा कोई दूसरा है, यह तो परीक्षा से ही पता चलेगा। उसने जाते हुए चन्द्रमेध से कहा कि तुम उसके यहा जाकर अपना राजकर वसूल करो। वह देने मे देरी या कुछ बहाना करे तो सख्ती दिखाने मे सकोच मत करना।

आदेश के अनुसार दूत रवाना होकर प्रजापति की सभा मे आया। उस समय प्रजापति की सभा मे आमोद-प्रमोद का वातावरण चालू था। कुछ सगीतज्ञ और काव्य-कुशल विद्वान् भी वहा आए हुए थे। प्रमोदपूर्ण वातावरण के बीच सङ्गीतज्ञो का कार्यक्रम था। सुनने और सुनाने की अच्छी व्यवस्था बना रखी थी। ऐसे आमोद-प्रमोद एव राग-रग भरी सभा मे दूत पहुँचा। वडे घर के दूत होने तथा स्वामी का कटु-सकेत पाने के कारण वह वेहूदे ढग से वाते करने लगा। राजनियमो के कारण दूत का अपमान करने मे, सकोच किया जाता है। आज भी वडे पदाधिकारियो का कोई विशेष दूत आता है तो लोग घवरा जाते तथा सोचने लगते है कि यह क्यो आया है? विविध सशय और आशकाओ का जाल सा विछ जाता है।

उस समय आमोद-प्रमोद के प्रसग मे, सगीत लहरी के मोहक मधुर वातावरण मे, इस दूत के वोलने से विक्षेप आने लगा तो राजकुमार ने सोचा—यह कैसा दूत है? एक तो यह सूचना दिये विना चला आया और दूसरा ढग से बात करने का भी इसे ध्यान नही। आखिर मेरे पिताजी भी राजा है। भले वह किसी वडे की अपेक्षा से छोटे हो। मगर दूत को तो राजा का सम्मान करना ही चाहिये। यह तो उद्दण्ड और गवार के जैसे व्यवहार कर रहा है। सभव इसको अपने अधिकार का कुछ अधिक घमण्ड है। अभी इसको यहा से निपटने दो—वाहर आयेगा तो देख लेगे। यह अपनी करनी का फल पाये विना आज यहा से नही जा पायेगा।

ज्योही दूत उस राज्य सभा से अपनी उटपटाग बात कहकर विदा हुआ कि राजकुमार त्रिपृष्ठ को इसकी सूचना हो गयी। भरी जवानी एव शरीर मे पूर्ण वल होने से, उन्होने झट से उसका हाथ पकडा और बाहे ऊची कर वोले कि किसके भेजे हुए एव कैसे आए हो! तुम्हे समय और बेसमय का भी कुछ ख्याल नही, फिर तुम कैसे दूत हो? पिताजी कार्य मे लगे हुए थे, तो तुमको घडी भर

रुकना चाहिये था—धैर्य से काम लेना चाहिये था। तुम तो दिमागी सन्तुलन खोए किसी पागल की तरह प्रतीत होते हो। यह कहकर त्रिपृष्ठ ने उसको बुरी तरह पीटा और वहाँ से धक्का मारकर भगा दिया। जाते समय उससे कहा कि चुपचाप चले जाओ। याद रखना यहा की कोई बात वहा मालूम नही हो। अभी तो तुम्हे जिन्दा छोड दिया है, किन्तु वहा जाकर यदि तुमने यहा की कुछ भी बाते कह दी, तो आगे हाथ आने पर जीवित नही छोडू गा।

**प्रजापति का चन्द्रमेघ को समझाना**

जब यह बात महाराज प्रजापति को मालूम हुई तो उनका कलेजा हिल गया। अश्वग्रीव-प्रतिवासुदेव का प्रभाव एव कोप उनकी आँखो के आगे नाच उठा। वे दूत-अपमान की भावी-आशका से दहल उठे। उन्होने मन ही मन विचार किया कि मेरा पुत्र वडा शैतान है। यह बिना विचारे ऐसा भयकर कार्य कर गया जिसका कि परिणाम अप्रिय और दु खद हो सकता है। अपने से बडो से झगडना नीतिज्ञो की दृष्टि मे अच्छी बात नही मानी गयी है। हम अश्वग्रीव के आगे मे बहुत छोटे है। वह धन, वल, प्रभाव सब मे हम से वहुत आगे है। उससे अकारण वैर बढाना और प्रतिद्वन्द्विता करना विपदा को निमन्त्रण देना है। ऐसा सोच–विचार कर उन्होने दूत को अपने पास वापिस बुलाया और उसको मधुर शब्दो मे समझाते हुए कहा कि अभी तुम्हारे साथ जो कुछ भी हुआ है, उसके लिए हमको वहुत दु ख है। तुमने हमारी सभा मे जो कुछ भी कहा वह सहने जैसी बात नही थी—फिर भी महाराज अश्वग्रीव की महत्ता तथा दूत की मान्यता के अनुकूल हम चुप ही रहे। मगर छोकरा अभी नादान है। भला-वुरा कुछ भी नही समझता है। इसमे जोश तो है परन्तु होश नही। तुम इसके द्वारा किये गए अपने प्रति व्यवहार को, वुरे भावो से नही देखना और न इसे बुरा ही मानना। मैं अभी इस घर का जिम्मेदार हूँ और मैंने तुम्हे कुछ भी नही कहा है। उल्टे तुम्हारे कटु शब्दो को मैंने चुपचाप सुन लिया, सह लिया। अन्त मे कुछ इनाम दकर, हृदय परिवर्तन कर प्रजापति ने दूत को वहा से रवाना किया।

## त्रिपृष्ठ सर्वथा निर्भय

राजा तो डर गए—पानी-पानी हो गए मगर दूत को मार कर भगाने वाले त्रिपृष्ठ को उसके लिए किसी प्रकार का दुःख और खेद नही था। उल्टे वह सोचता था कि उस उद्दण्ड दूत को उसकी क्रिया के अनुरूप दण्ड नही मिला। उसको तो ऐसी गहरी मार पडनी चाहिये थी कि जिसको वह जीवन भर नही भूलता, सदा याद करता। राजकुमार को अभी व्यावहारिक जगत से पाला नही पडा था। अत उस पर लागलपट का रग नही चढा था। वह न तो अपनी ओर से किसी के साथ अन्याय करना चाहता था और न किसी के द्वारा अन्याय किया जाना ही पसन्द करता।

वहा से विदा होकर दूत महाराज अश्वग्रीव के पास पहुँचा। वह कैसे अपनी सारी घटित घटना अश्वग्रीव की सेवा मे निवेदन करेगा, कैसे वे उसकी बात पर अनुमान लगायेंगे, अभी पूरी खबर न होने के कारण महाराज इस विषय मे पूर्ण निश्चिन्त नही हो पाये।

## अमरता के यात्री को किसका डर

सन्त कहते हैं कि अरे मानव ! अमर होने के अधिकारी होकर, तुम डरते क्यो हो ? अमरता प्राप्त करने का सुअवसर तो मनुष्य को ही मिलता है। किसी दूसरी योनि मे यह अपूर्व लाभ नही मिलता। तप और सयम की आराधना करने से अमरता प्राप्त हो सकती है। इसके बजाय धन, कोठी और बगले की आराधना करोगे तथा बाल-बच्चो के पीछे भागते फिरोगे एव कहोगे कि यह धन मेरा, यह कोठी मेरी, यह बगला मेरा, बाल-बच्चे मेरे, पत्नी मेरी, इस तरह मेरी मेरी मे ही यदि उलझे रहोगे तो जगल मे मैं मैं करने वाले बकरे को जैसे शेर पकडकर मार डालता है, वैसे ममता से मैं मैं करने वाले जीव को भी कालचक्र रूप शेर एक दिन दबोच लेगा और इन सारे मैं मैं के खेल को एक झटके मे ही खत्म कर देगा।

ऐसा मौका जिससे नही आए, अकस्मात् काल की दबोच मे नही पड पाओ, इसके लिए अपने आपको बचाकर भयमुक्त रास्ते मे लगे रहो तो निश्चय काल को जीत सकोगे ? इस तरह जो प्राणी शिवमार्ग की आराधना मे लगे रहेगे, वे इस लोक और परलोक मे आनन्द प्राप्त कर सकेगे ।

●●

रोष, विषय, कषाय एव भवप्रपच की वृद्धि होती है। फिर भी सुनने-वाले को सरल, मनोरजक एव रोचक होने से विकथा पसन्द आती है—मन को भाती है। धर्मवाचना या भगवद्वाणी की वाचना से, हम अनन्त-अनन्त काल के सचित जो भव रोग है, विकार है, मलिनता है, उसको दूर करने मे समर्थ होते है। इसलिए भगवद्वाणी ही वास्तव मे धर्मकथा और सुकथा है। वही कहने और सुनने योग्य है। कहा है कि—"सव्वाकहा धम्मकहा जिणाइ" अर्थात् सब कथाओ को धर्मकथा परिणाम की दृष्टि से जीतनेवाली है।

### सुकथा से कर्म निर्जरा

सुकथा के कहनेवाले कहते-कहते और भगवद्वाणी को सुनने-वाले सुनते-सुनते कर्म निर्जरा कर लेते है। इस तरह कहनेवाले और सुननेवाले दोनो को लाभ है—उपकार है। पहला लाभ तो जुबान का पवित्र होना और कानो का पवित्र होना है। यह तो तात्कालिक लाभ है। और फिर दूसरा लाभ है कर्म निर्जरा। भगवद्वाणी के श्रवण और कथन मे, यदि चित्त की एकाग्रता एव श्रद्धा है तो वह धर्मकथा कर्म काटनेवाली भी हो सकती है। ऐसी कथा सुनने और सुनानेवाले के राग-रोष घटते हैं। परन्तु हर प्राणी को ऐसी विशुद्ध कथा सुनने और सुनाने का अवसर नही मिलता। विना प्रवल पुण्योदय के शास्त्रवाणी के सुनने और सुनाने मे मन ही नही लग पाता।

### पुण्योदय के बिना धर्मरुचि नही होती

मानव का जव तक भाग्य अनुकूल नही होता, प्रवल पुण्य का उदय नही होता तव तक शास्त्र वचन सुनने और सुनाने मे मन नही लगता। एक कहावत प्रसिद्ध है कि—

"जैसे ज्वर के जोर से, भोजन की रुचि नाय।
ऐसे कुकर्म के उदय से, धर्म वचन न सुहाय॥"

वन्धुओ! शास्त्रवाणी मनुष्य को तभी अच्छी लगती है, जवकि उसके पाप कर्म का उदय कम होता है। जैसे किसी को जोर

## पुरुषार्थ के बिना शुभ कार्य नहीं होता

यह सच है कि एक ओर आत्मा को हल्की होने का सुलभ साधन प्राप्त है और आदमी लाभ उठाने की इच्छा भी रखता है। परन्तु जब तक अवरोधक कर्मों को, दूर करने का पुरुषार्थ नहीं किया जाए, तब तक यह शुभ कार्य नहीं हो सकता है। इसके लिए बहुत बडी साधना करनी पडती है—प्रबल पुरुषार्थ करना पडता है। जन्म जन्मान्तरो की साधना होती है, तभी मनुष्य अनुकूल मार्ग को पकड कर उस पर चल पाता है।

आप किसी भी महापुरुष के जीवन को देखिए, किसी भी तीर्थंकर, गणधर, चक्रवर्ती आदि के जीवन का निरीक्षण कीजिए। आपको पता चलेगा कि इनमे जो भी महापुरुष ऊपर आए है, ससार मे चमके हैं, आदर्श बने है, साधारण पुरुषो से आगे वढकर महापुरुष के रूप मे उपस्थित हुए हैं, वे ऐसे ही, अनायास नही हो गए हैं। वल्कि जीवन मे वडी साधना की, परम पौरुष से काम लिया। तव कही आगे बढ पाये। एक छोटा सा तू बा, जिस पर मिट्टी का गहरा लेप लगा हुआ हे, पानी मे डाल दीजिए—नीचे बैठ जायेगा। पर कुछ समय वाद, धीरे-धीरे मिट्टी गल जाने से वह सहज ऊपर आता है। वैसे यह जीव-भोग से कर्म दल के हल्के होने से कुछ उठता, पर विना पुरुषार्थ के दीर्घकाल से भी उतना ऊपर नही आता है। इसके लिए उसे जन्म-जन्मान्तरो मे अथक परिश्रम करना पडता है। तव कही उसकी महानता-विलक्षणता प्रगट होती है।

दुनिया के वहुत से आदमी ऐसे अकर्मण्य वृत्ति वाले मिलेगे जो कहते है—महाराज! कभी हमारा भी भाग्य जगेगा। कभी हमारे ऊपर भी भगवान् की कृपा होगी। और दूसरे भाग्यवानो की तरह प्रभु हमको भी हाथ पकडकर ऊपर खीचेगा। तो हम भी ऊपर आ जायेगे। तो मैं कहूँगा कि उनका ऐसा समझना और कहना कितने दीवानेपन का है? अरे! आदमी दो दिन का भूखा होने पर भी यह वात नही सोचता कि हमारे पेट मे अन्न कभी आपसे आप पहुँच जायेगा! भगवान् हमको भी खिला देगा!

भूख मिटाने के लिए, भूखे को भी कोशिश करनी पडेगी। कही से कुछ खाने की वस्तु मागकर लेनी पडेगी। कदाचित् कोई स्वेच्छा से ही उसको धर्म स्थान पर कुछ लाकर दे दे, फिर भी ग्रास मुह मे रखने का प्रयास तो उस भूखे को ही करना पडेगा। यह सच है कि भारतीय परम्परा मे, श्रद्धा से भगवान् के नाम से वैठनेवाले को भी दाना मिल जाता है। कोई भिक्षा के लिए नही गया और धर्मस्थान मे ही विश्वास लेकर वैठ गया तो उसको भी भर पेट खाने को मिल

## तदबीर के विना तकदीर व्यर्थ

तकदीर के भरोसे बैठे रहने वाले, भाग्य के सहारे चलने वाले यदि तदबीर-उद्यम नही करेंगे तो वे जीवन मे सफलता-सिद्धि हासिल नही कर सकेंगे। साधारण धरातल से कभी वे अपने आपको ऊपर नही उठा सकेंगे। ठीक ही है कि भाग्य को बनाने के लिए भी हर मनुष्य को मिहनत अवश्य उठानी पडती है। यह उर्दू जुबान वालो की बात है। परन्तु हिन्दी मे भी कहा है कि भाग्य के साथ पुरुषार्थ की भी अपेक्षा रहती है। दोनो की जोड के विना काम नही चलता। क्योकि एक-दूसरे के विना यानी दोनो के जुडे विना काम सिद्ध नही होता। एक के होने पर भी अगर दूसरे का साथ नही हुआ तो काम पूरा नही बन पायेगा। कहा भी है—

"काकतालीय वत् प्राप्तं, दृष्ट्वाऽपि निधिमग्रतः।
न स्वयं दैवमादत्ते, पुरुषार्थमपेक्षते ॥"

अर्थात् काकतालीय न्यायवत् आगे पडे हुए धन को देखकर भी, भाग्य स्वय उस निधि को नही उठाता, किन्तु पुरुषार्थ की अपेक्षा करता है।

कभी-कभी तो तकदीर-भाग्य का भी, उल्टा उपयोग हो जाता है। जैसे किसी ने अच्छे कुल मे जन्म लिया और पुण्य की सामग्री भी पायी। परन्तु यदि उसका पुरुषार्थ ठीक मोड पर नही लगता है तो वह पुण्यशाली भी दुर्गति का अधिकारी वन जाता है। अक्सर उल्टे पुरुषार्थ से हजारो घर बिगडते देखे गए है।

**कर्म प्रबल है**

भगवान् महावीर कहते है कि ये कर्म किसी के साथ लिहाज नही करते है—पक्षपात नही करते है। जो जैसा करेगा वैसा ही उसे भोगना पडेगा। उदाहरण के रूप मे आप देखिये कि भगवान् महावीर के पूर्वभव का जीव त्रिपृष्ठ के रूप मे एक शक्तिशाली और प्रतिभाशाली घर मे तेजस्वी बालक के रूप मे जन्मा। उसके तन मे बल है, कला है, ओज है, तेज और शक्ति है। एक प्रखर व्यक्तित्व के लिए जो कुछ भी अपेक्षित है, वह सब कुछ है। परन्तु है कुछ सस्कारो के रूप मे और कुछ वर्तमान पुरुषार्थ के रूप मे। उनको उल्टा निमित्त मिल गया। और निदान के कारण यह जीवन प्राप्त हुआ। क्योकि वासुदेव निदान के कारण ही बनते हैं।

त्रिपृष्ठ के जीव ने निदान किया कि मैं अगले जन्म मे ऐसा वलशाली बनूं कि जिससे विशाखभूति से बदला ले सकूं। निदान के कारण जन्म राजकुल मे हुआ और सगति भी ऐसी ही मिली जो बल मे जोर देनेवाली थी। जैसे महाजन घर का वातावरण पैसा मिलाने के अनुकूल वातावरणवाला, राजपूत के घर का वातावरण बल मिलानेवाला और ब्राह्मण के घर का जप-तप विद्याध्ययन से सम्बन्ध रखनेवाला होता है। जैसे जिस घर के सस्कार होगे, बचपन मे वैसा ही बालक पर असर पडेगा। फलत व्यवसायी कुल मे जन्म लेनेवाले

को झूठ का दोष अधिक लगता है। क्योकि उसके घर का सस्कार और वातारण वैसा ही होता है। क्षत्रिय कुल मे जन्म लेनेवाले को, हिंसा का दोष वैसे वातारण के कारण ज्यादा लगता है। क्षत्रिय परिवार के लोगो ने नर्माई से वात करना सीखा ही नही है। उनका खून भी गर्म और खान-पान तथा रहन-सहन भी गर्म होता है।

त्रिपृष्ठ राजकुमार के सामने एक ऐसा ही अवसर उपस्थित हुआ। एक वार अश्वग्रीव ने चन्द्रमेध नामक दूत को त्रिपृष्ठ की परीक्षा लेने प्रजापति राजा के पास भेजा। वह ऐसे समय मे आया जबकि राजसभा मे आमोद-प्रमोद एव सगीत लहरी चल रही थी। उसने वहा पहुँचकर रग मे भग कर दिया। यह देख त्रिपृष्ठ का मन बौखला गया। उन्होने अपने बडे भाई के सग मिलकर उसकी पिटाई की और उसे वहा से निकाल दिया जैसा कि पहले कहा जा चुका है। प्रजापति घबराये और दूत को समझा-बुझाकर भेजा। मगर उनके लडको को इसकी कोई परवाह नही थी। कारण घर भी ताकतवर फिर जवानी की अवस्था होने से दोनो के खून मे गर्मी थी। पिता ने कहा कि तुम्हारे इस काम से कही अश्वग्रीव रूठ गए तो लेने के देने पडेगे। परन्तु त्रिपृष्ठ ने कहा—पिताजी! जो होगा सो हम देख लेंगे। आप इसकी चिन्ता न करिये।

### अश्वग्रीव की कुटिलता

दूत अश्वग्रीव महाराज के पास पहुँच कर वहा की सारी वात वताकर बोला कि महाराज! आप सोचते होगे कि प्रजापति हमारा सामत है, आधीन रहने वाला है। किन्तु जहा तक प्रजापति का प्रश्न है, वहा तक आपका सोचना ठीक है। मगर प्रजापति के पुत्र वडे तेज है, तीखे है और वे तो शान्ति से भी वात नही करते हैं। मुझको तो उन्होने इतना पीटा, इतना पीटा कि जिसका कुछ पार नही। भाग्य अच्छा था—जिससे बच गया। ऐसे नौजवानो को आरम्भ से ही नियन्त्रण मे रखा जाये तो ठीक है। नही तो पीछे वे अधिकार मे आने वाले नही है।

दूत के वचन सुनकर राजा ने जो कुछ विचार किया उसे एक कवि वाणी मे सुने, जैसे—

"दूत वचन सुन त्रिखण्डपति, मन रोष भराते है।
राजकुमार को दडित करने, षड्यन्त्र रचाते हैं।।
तु गगिरि के पास, शालि की कृषि कराते हैं।
मृगपति से आतकित होकर, जन घबराते है।।
प्रजापति पर अश्वग्रीव, निज दूत भिजाते है।
शालि क्षेत्र की रक्षा का, आदेश सुनाते हैं।।" शासन

परिवार और वातावरण का जो प्रभाव मानव मन के ऊपर पडता है, उसका असर दूसरो पर भी पडे बिना नही रहता। जब अश्वग्रीव ने सुना कि छोकरे ने हमारे दूत को पीटकर भेज दिया तो उन्हे ज्योतिषी की कही बात याद आ गई कि तुम्हारे दूत को मारकर भगानेवाला ही तुम्हारी मृत्यु का निमित्त बननेवाला है। तुम्हारी निश्चित रूप से मृत्यु उसी के हाथ से होनेवाली है। बात मिलती देख अश्वग्रीव ने सोचा कि यह प्रजापति का पुत्र ही मेरी जान लेनेवाला है। अत मैं पहले ही इससे सावधान हो जाऊँ तो ठीक। पानी आने से पहले हो पाल बाधना श्रेयस्कर है। अब मैं ऐसा उपाय करूँ कि यह मेरी जान ले, उससे पहले मैं, उसकी जान ले लूँ।

ऐसा विचार कर उसने ऐसी योजना बनाई कि तु गगिरि की तलहटी मे चावलो की खेती करवाई जाय। क्योकि उस क्षेत्र मे शेर चीते और दूसरे जगली जानवर रहते जो इतने खू खार थे कि उस क्षेत्र के रहनेवाले जन, उनके भय से, त्रस्त बन रहते थे। राजा ने सोचा कि वहा पर रक्षक लोग अस्त्र-शस्त्र लेकर खेती की रक्षा करेगे। जिससे कि खेती नुकसान नही हो। मगर साधारण रखवालो के वश की तो यह बात नही थी। क्योकि तु गगिरि के आस-पास के क्षेत्र मे, एक उन्मत्त शेर रहता था, जो रखवालो पर हमला करता तथा कभी-कभी जान से भी मारने लगा। ऐसी सूचना राजा के पास पहुँच चुकी थी।

इस छोटे से निमित्त को लेकर उन्होंने उस प्रजापति के छोकरे से बदला लेने की बात सोची और मन मे निश्चय किया कि उन्ही छोकरो को उस धान की रखवाली के लिए रखना चाहिये। उससे खेत की रक्षा होगी तो होगी। नही तो कदाचित् शेर ने मार दिया फिर मेरी चिन्ता का काटा ही साफ हो जायेगा। ऐसा सोचकर अश्वग्रीव ने प्रजापति के नाम समाचार भेजे कि शालि-क्षेत्र की रखवाली के लिए, राजा ने आपको आदेश दिया है। वहा शेर का उपद्रव जोर पर है और वह नित्य एक न एक आदमी को मार रहा है। अत वहा एक-एक सामत की बारी रखने का निश्चय किया है। सामन्तो मे तुम भी ताकतवर हो और तुम्हारे लडके भी बलशाली है। तो उन्हे भेजकर या जैसे भी बन पडे, इन रखवालो की जान बचाना तुम्हारा काम है। तुम इस ओर उचित ध्यान दोगे, ऐसा विश्वास है।

## प्रजापति की चिन्ता एव त्रिपृष्ठ का साहस

यह सन्देश लेकर जब दूत राजा—प्रजापति के पास पहुँचा और सन्देश सुनाया तो प्रजापति समझ गए कि यहा बदला लेने की भावना प्रकट हो रही है। छोकरो ने जो गलती की, उसका नतीजा मुझको भोगना पडेगा। नीतिज्ञो ने कहा भी है—"शिष्यापराधे गुरुर्दण्ड्य तथैव पुत्रापराधेऽपि पिता दण्ड्य।" यानी शिष्य के अपराध पर गुरु और पुत्र के अपराध पर उसका पिता दण्ड का पात्र बनता है। गलती तो छोकरे की और दण्ड मुझको भोगना पडेगा। इस प्रकार भविष्य का विचार करते प्रजापति चिन्तित हो उठे।

अपने पिता को चिन्ता-मग्न देखकर लडको ने पूछा—पिता जी! आज आप इतने चिन्तित क्यो है? इस पर प्रजापति ने कहा—तुम्हारे ही बोए हुए ये काटे है। इनका फल तो पिता के नाते हमको भी भोगना पडेगा। इस पर लडको ने कहा—कि इसके लिए आपको घबराने की—चिन्ता करने की जरूरत नही है। रखवाली के लिए हम दोनो भाई जाएगे। त्रिपृष्ठ-वासुदेव के बडे भाई बलदेव

होते है। एक ही घर मे दोनो का जन्म होता है—ऐसा शास्त्र का सिद्धान्त है।

त्रिपृष्ठ ने जोर देकर महाराज प्रजापति से कहा कि आप हमे आदेश दीजिए। हम खेत की रखवाली करेगे और उस खूनी शेर से निपटेगे। अगर जान जाने वाली होगी तो चली जायेगी। और नही तो ऐसे कई खेल देखे है। इसमे घबराने और चिन्ता करने जैसी कोई बात नही है। बच्चो के लिए तो खिलौना चाहिये। हम भी शेर के साथ खेलना चाहते है।

प्रजापति ने सोचा कि बच्चे बडे उत्पाती है। अभी इनके शरीर मे बल है, जोश है तो उछाले भरना चाहते है। परन्तु परिणाम को सोचते नही है। यो ही मरने मारने को तैयार हो जाते है। इस तरह के चिन्तन के बाद भी प्रजापति के मन मे, उनके शुभ लक्षणो तथा भविष्य वेत्ताओ के कहने से दृढ विश्वास था कि मेरे लडके कभी पीठ दिखाने वाले—किसी से हार खाने वाले नही है। ये जहा भी जाएगे, विजयश्री इनके सग रहेगी।

**तकदीर और तदबीर के मेल से ही कार्य सिद्धि**

अश्वग्रीव को दूत का परिणाम जानकर आधा विश्वास तो हो गया कि मेरा वधिक यही प्रजापति का पुत्र है। फिर भी वह भाग्य के भरोसे पर नही रहा। उसने दूसरी तदबीर लगायी। उसने सोचा इससे पता भी चला सकता है और शेर के द्वारा उसके मारे जाने से अपनी रक्षा भी हो सकती है। आदमी को जब तकदीर और तदबीर दोनो का सयोग मिलता है तभी बाहरी और पारमार्थिक काम पूर्ण होते है।

ससार मे बन्धन बाँधने वाले तो बहुत होते है। परन्तु कर्म काटने वाले—भव प्रपच मिटाने वाले कम होते हैं। आप और आपके घर के नौजवान बच्चे, घर मे दो पैसे जुटाने वाले, सर्दी गर्मी सब कुछ सहन करते हैं। वे यह नही सोचते कि ऐसा करके हम लखपति

होगे या नही ? आप यही समझते है कि पुरुषार्थ करेंगे तो लखपति बनेंगे ही। ऐसे ही इधर—धर्म के विषय मे भी सोचे कि तकदीर से मनुष्य जैसा दुर्लभ-जीवन मिला है तो अब इस जीवन से धर्म कार्य मे पुरुषार्थ करेंगे तो अवश्य कर्म टूटेगे और बन्धन कटेगे। ऐसा सोचकर हर आदमी पुरुषार्थ करेगा तो कर्मो का बोझा हल्का करना मुश्किल नही है। निश्चय ही तकदीर और तदबीर का सम्मिलन अभीष्ट सिद्धि मे सहायक होता है।

### कर्म काटना सरल नही है

कर्म बाधने का काम जितना सरल है, उतना काटने का काम सरल नही है। अकृष्ट रस के निदान वाला जब तक निदान के कर्म को भोग नही लेता, तब तक उससे छुटकारा नही पाता। क्योकि निदान मे अपनी करनी बेच दी जाती है। निदान का लाभ बदले के द्वारा मिलता है। भगवान् महावीर कहते हैं कि मानव ! तुमको यहा करनी करने का अवसर मिला है तो हर्गिज इस करनी को बिक्री मत करो। इसको बहुत सभाल कर रखो। यह अन्त समय—मरण समय मे काम आने वाली वस्तु है। सब कुछ सुधारा और अन्त—मरण नही सुधारा तो जीवन बिगड जायेगा।

जीवन सुधारने के लिए यह जरूरी है कि अपने जीवन को विषय कषायो से हटाकर धर्मराग मे जोडा जाए। लोगो मे वश परम्परा से यह धर्म का अनुराग चला आ रहा है। समय समय पर जब कुटुम्ब वाले, परिवार वाले, राज ऋद्धि वाले, जीवन मे धर्म के महत्व को समझा, तभी तभी ससार के वैभव को, सुख साधनो को, बाल बच्चो के मोह ममत्व को, लात मार कर वे अनगार बन गए—श्रमण बन गए। ऐसी बात नही है कि भूखे घरो मे ही निकलकर साधु बनते है। बडे बडे ऐश्वर्यशाली, धर्म के दीवाने हो, जिन शासन मे दीक्षित हुए है, होते हैं। स्त्री पुरुष, बच्चे और बूढे भी जब समझ जाते है कि जन्म के साथ मरण तो अवश्यभावी है फिर यो ही राग मे तलमलाते—छटपटाते क्यो मरें ! मरे तो कुछ आत्महित का

साधन कर ऐसा मरण मरे, जिससे फिर फिर कर मरना नही पडे। ऐसा समझ कर वे "विषयान् विषवत् त्यजेत्" यानी शब्द रूपादि विपयो को विषवत् परित्याग कर देते।

**अन्त सुधरना आवश्यक**

मार्ग पर लगना और बात है, परन्तु त्याग मार्ग पर लगने के बाद मरण को अच्छी तरह समझना और उसे सुधारना एक बहुत वडी वात है। ज्ञानी सोचते हैं कि कही ऐसा न हो कि मौत बिगड जाये। अन्तकाल बिगड गया तो सारी जिन्दगी क्या आगे का जीवन भी विगडा समझना चाहिये। यही कारण है कि व्रती जीव को भी जो अतिम समय भगवद् चरणो मे, चिन्तन करते हुए प्रयाण करता है, समझना चाहिये कि उसने मार्ग को पार कर लिया है, भव-प्रपच से किनारा कर लिया।

ससार मे वे महापुरुष और महासतिया धन्य धन्य होते है जो कि साधना के पवित्र मार्ग पर लगकर, पुरुपार्थ से उसको पार लगा देते है। हम सबको उन साधको के उजागर जीवन से शिक्षा लेनी चाहिये। उनका जीवन दोनो पहलुओ से खुश रहता है। वे जितने समय तक सयमी जीवन मे, त्याग मार्ग मे रहते है, तब भी परमानन्दी बने रहते है। और जब यहा से जाते है तब भी खुशी से जाते है। उनके लिए कभी कोई रजगम की वात नही रहती। उनका जीवन तो एक परम समाधि का जीवन होता है। सामान्य साधको और भक्तो को उनके शानदार जीवन से कुछ नसीहत लेनी चाहिये। हर साधु साध्वी के जीवन से प्रत्येक श्रावक श्राविकाओ को अपने जीवन मे कुछ शिक्षा लेकर, जीवन को उच्च और आदर्श वनाने का प्रयत्न करना चाहिये।

**महासती छोटाजी के जीवन से प्रेरणा हो सच्ची श्रद्धाजलि**

ब्यावर मे सती छोटाजी और रसालाजी दोनो पुरानी सतिया थी। इनमे से छोटाजी ने सथारा कर लिया और जल्दी से उसे पूर्ण

कर स्वर्ग सिधार गयी। सथारापूर्वक उनका मरण एक महती समता की साधना है। इससे मन को एक बडी प्रेरणा मिलती है कि जीवन को त्यागपूर्ण बनाते हुए, अन्त मे ऐसा निराकुल भाव प्राप्त किया जाय। जीवन लीला का शात भाव से पटक्षेप कर लेना कोई ऐसी वैसी साधारण बात नही है। इससे बढकर साहस और जवामर्दी का काम जीवन के किसी भी क्षेत्र मे, कोई दूसरा नही है।

सतसती सघ के अग होते है। वे जितनी अधिक माला मे होते है, सासारिक जीवो को उतना ही अधिक शुभ निमित्त मिलता है। और इनकी कमी अशुभ निमित्त का सूचक है। मगर हमारे यहा साधु साध्वियो के शरीर त्याग को शोक की नजर से नही देखा जाता। इसके लिए कोई बैठक नही होती। परन्तु एक स्वर्गस्थ आत्मा के प्रति, शिक्षा लेने के लिए, उनके जीवन के सम्बन्ध मे, श्रद्धाजलि के रूप मे दो शब्द कहना ठीक रहता है।

मैं जानना चाहूगा कि उन त्यागी जनो के साथ आपका क्या सम्बन्ध है? जैसे अपने परिवार वालो से आपका आत्मीय सम्बन्ध है, ऐसे ही सत सतियो से आपका सम्बन्ध है या नही? घर की खाली जगह के लिए, आप पूर्ति की इच्छा ही नही बल्कि प्रयत्न भी करते हो। तो क्या सतीजी के रिक्त स्थान को भरने का भी मन मे ख्याल आता है या नही? आप घर की शादी व्याह के खर्चे की रकम पूर्ति के लिए कभी कसर नही रखते। परन्तु इधर सघ मे किसी आत्मा का स्वर्गवास हो गया तो उसकी पूर्ति की चिन्ता क्यो नही करते?

सघ को घर से और परिवार से भी वढकर समझोगे तब काम चलेगा। ऐसी उपेक्षा से काम होने वाला नही है। भग० महावीर की सेना मे भी, समय-समय पर श्रावक श्राविकाए भर्ती कराते रहो। इस सेना मे भर्ती होने वालो का न सिर्फ यह जन्म बल्कि भविष्य का जीवन भी सुधरेगा। अनन्त अनन्त पीढिया अमर बन जायेगी। ऐसे सोचने वाले भी होते रहे है और आगे भी होते रहेगे।

ससार का यह जन्म-मरण का चक्र चलता ही रहता है। हमको इससे शिक्षा लेनी है—

"हसके दुनिया मे मरा कोई, कोई रोके मरा।
जिन्दगी पाई मगर उसने, जो कुछ होके मरा।।"

दुकान पर बैठकर नोट गिनते मरोगे, उससे अच्छा तो माला गिनते मरना है। हाथ पैर चलते दुकान जाने का सोचने वालो को क्या काल का कुछ पता है ? एक दिन इस समस्त कारोबार को छोडकर जाना ही पडेगा, तो क्यो न होश मे ही इन्हे छोड कर अपना अन्त सुधारने का निर्णय करो। नोटो को गिनने के बजाए, भगवान् का नाम गिनने और तत्व की बात कहते सुनते रवाना होना श्रेयस्कर है। मदनगज के हलुकर्मी भाई बादरमलजी बैठे-बैठे चले गए। भावना के अनुकूल उन्होने मेरी मागलिक सुनली और फिर चले गए।

महासती छोटाजी का मरण सथारे के साथ हुआ। जिनकी आत्मा शुद्ध, सरल, एव शान्त होती है, उनका मरण शुभ होता है। आप सबको भी यह लक्ष्य बनाये रखना चाहिये कि मरण सुधरे। अगर ऐसा चाहते हैं तो इन सत सतियो से प्रेरणा लीजिए और मरने से पहले विषय कषाय की गाठो को ढीलो कर लीजिए। सतीजी के स्वर्गवास पर हम उनकी आत्मा को चिर शान्ति के लिए शुभ कामना करते है। और उनके सद्गुणो को अपना कर, साधना के मार्ग पर आगे बढ सके तो हमारा भी कल्याण हो सकेगा। सतीजी के सद्गुणो के प्रति यही हमारी श्रद्धाजलि है।

— ॐ शान्ति —

०८